अवतरण

अवतरण

‘द एडवेन्ट’ का हिन्दी अनुवाद

(भाग १ से ५)

जी.डे.केलबरमेट्न

हिंदी रूपांतरण
श्री.राजेन्द्र कुमार पाण्डेय
स्व.आर.आर.सिंग
श्री.दिपक दोबल

दैवी-माँ

परम पूज्य श्रीमाताजी निर्मला देवी

जो कुछ भी इस पुस्तक में निहित है,
हे देवी, सब आपका ही है।

फिर आपको क्या
समर्पित करूँ?

प्राक्कथन

परम पूज्य माताजी श्री निर्मलादेवी से एक अलग किस्म की अपनी पहली मुलाकात के तुरन्त बाद ही, मैंने इस पुस्तक को काठमाण्डू में लिखना शुरू कर दिया था। मैं नौजवान ही था और महावतार का एक संदेशक होने की कोई योग्यता मुझमें नहीं थी। यद्यपि, हर्स्ट ग्रीन, सर्रे, में १९७५ के अगस्त महीने के एक सुहावने दिन इस माँ तथा गुरु द्वारा सहज रूप से दी गई समाधि की आशीषपूर्ण जगमगाहट की तीव्रता तथा गहराई ने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया। मैं तुरंत ही श्रीमाताजी के प्रेम, आशा तथा आध्यात्मिक रूपांतरण के शक्तिशाली संदेश के ऐतिहासिक आयाम के प्रति आश्वस्त हो गया।

मैं एक अद्वितीय आध्यात्मिक अवतार के प्रादुर्भाव के समाचार को बताने के लिये बेताब था। मैंने इस कार्य को युवा-उत्साह के साथ किया। अपनी इस सोच में, मैं शायद भोला-भाला ही था कि इतनी गहन वास्तविकता को सीमित शब्दों में बताया जा सकता है। मेरा प्रयास लेखन-कौशल की दृष्टि से कम हो सकता है किन्तु यह सच्चा प्रयास था। यह पुस्तक बाद में एक विस्तृत, गैरसाक्षात्कारी जन के लिये पुनः लिखी गई तथा विभिन्न भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ। किंतु अंग्रेजी (अब हिंदी में रूपांतरित) का यह मूल संस्करण, जो बिना किसी सुधार के पुनः छपा है, खोज की उस मनोदशा को मुग्ध करता है जब मैंने पहली बार परमात्मा की शानदार वास्तविकता के दरवाजे को पार किया था। सहजयोग हमारे लिये जिस रूपांतरित चेतना परिदृश्य को खोलता है, उसमें मैंने निर्भीक प्रवेश किया था तथा मैं अपनी रोचक यात्रा का विवरण देना चाहता था। थोडे समय पश्चात श्रीमाताजी ने स्वयं लंदन में हस्तलिपि की समीक्षा की थी। यह स्पष्ट है कि ज्ञान उनका है और गलतियाँ मेरी हैं।

करीब तीस सालों में सहजयोग ने अपने पंखों को फैला लिया है। सौ से अधिक देशों में योगी-जन सहज ध्यान, प्रकाशित अंतदर्शन का अभ्यास करते हैं तथा वे करुणा में सक्रिय हैं। उन्हें अपने जीवन के हर पहलू, आर्थिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक में फायदा हुआ है। कुछ एक लोग जो सहज संस्कृति के उँचे नैतिक मानदंडों पर खरे नहीं उतर सके, वे आते-जाते रहे!

किन्तु अपनी संस्थापिका की कृपादृष्टि के अधीन सहजयोग का मूल आंदोलन बढ़ता रहा। हममें से कोई भी, चाहे उसने श्रीमाताजी को शिक्षाओं का पूरे मन से अनुकरण किया हो, मिले हुये उन तमाम उपहारों के प्रति अपनी कृतज्ञता को समुचित ढंग से व्यक्त नहीं कर सकता। जीवन हमारा गुरु बन गया है। हम इसका अर्थ निकाल सकते हैं। हम इसका आनन्द लेते हैं। हम स्वयं के गुरु बन गये हैं। श्रीमाताजी सभी ईमानदार सत्य-साधकों को आमंत्रित करती हैं कि वे स्वयं के जीवन की गहनतम सुंदरता को खोजें तथा यह वे प्रदान करती हैं। वे इतनी उदार हैं, वे बगैर गिने देती हैं। वे 'स्व' के संकेत की चाबी और पहुँच प्रदान करती हैं। ये पंक्तियाँ चाहे वे कितनी भी अपूर्ण क्यों न हों, दैवी-माँ के उपहार का अनुभव करने के लिये ज्यादा से ज्यादा सत्य-साधकों को आमंत्रित करें।

'सत्-चित् आनंदरूपा, शिवोऽहम शिवोऽहम''

जी.डे.केलबरमेटन, २१ अक्टूबर २००१

भूमिका

खुद को इस पुस्तक को लिखते हुये देखना, मेरे लिये वास्तव में एक बहुत अचरज की बात थी। किसी विषय पर एक दिन लिखने का विचार मेरे दिमाग में आया था: एक उपन्यास, कुछ कविताएं.... किंतु 'द एडवेन्ट' (अवतरण - हिंदी में) नहीं। मुझे मानना पड़ेगा कि परम पूज्य माताजी श्री निर्मलादेवी के आगमन तथा उनके संदेश के बारे में मुझे लिखते हुये असहज लगा और अभी भी लगता है। इसके कुछ एक कारण हैं। अंग्रेजी भाषा तथा शैली पर मेरी कमजोर पकड़, विषय की विशालता, इसकी जटिलता, किन्तु साफ बात तो यह है कि इस प्रकार के समाचार का एक अच्छा संदेशक होने में मेरी अपर्याप्तता ही सबसे बड़ी कमी है।

बिना किसी झूठी नम्रता के, मुझे सीधे तौर पर यह कहना है कि ऐसे कई लोग हैं जो चेतना की उस नई स्थिति में मुझसे कहीं आगे हैं, जिसका परिचय देना इस पुस्तक का उद्देश्य है। अपनी उत्क्रांति में वे आगे हैं और परिपक्व है। तथा इस पुस्तक के सार के रूप में मुझसे कहीं बेहतर नमूने हैं; वे कई मायनों में मेरे शिक्षक हैं। मैं यहाँ उनके मार्गदर्शन के लिये धन्यवाद तथा उनकी काबिलियत के प्रति अपने गहन आदर दोनों को व्यक्त करना चाहता हूँ। उनमें से प्रत्येक जीवंत-ज्योत है जो सचमुच प्रकाशित करती है। अध्यायों में व्यवस्थित किये गये शब्दों तथा विचारों में यह दावा नहीं किया जा सकता।

फिर भी, आध्यात्मिक जीवन में मेरी कमियों के बावजूद मैं महसूस करता हूँ कि मुझे प.पू.श्रीमाताजी के क्रांतिकारी योग का परिचय एक बड़े जन-समूह से कराना चाहिये। इस प्रयास में, मेरी प्रमुख चिंता यही है कि यह अमूल्य ज्ञान पश्चिम, पूर्व, उत्तर तथा दक्षिण के उन सभी लोगों तक पहुँच जाये जो अपने जीवन का अर्थ खोज रहे हैं। वे सब लोग जो बनावटी तथा आयोजित जिंदगी में अब बंधे नहीं रह सकते, वे सब जो सतही-संतोष से लुभाये नहीं जा सकते, एक शब्द में कहा जाये तो हजारों वर्षों पहले से शुरू हुई गहन जिज्ञासा से सत्य को खोजने वाले भाई एवं बहन। वे ही लोग हैं जो इस बात को जानने के लायक हैं कि अब वास्तव में हो क्या रहा है: मानवीय

उत्क्रान्ति में पराकाष्ठा तक पहुँचाने वाले कदम का सूत्रपात। मैंने इस जबरदस्त विकास को पश्चिम के बुद्धिजीवियों के दिमागों मे प्रस्तुत किया है। फिर भी, मुझे विश्वास है कि पूर्व के लोग भी इस पाठन को लाभदायक पायेंगे। वास्तव में, विकासशील देश, बहुत हद तक, अतिविकसित पश्चिमी संस्कृति में विद्यमान संकट की गंभीरता को हमेशा बगैर समझे 'विकसित' पश्चिमी औद्योगिक देशों के प्रतिरूप का अनुकरण करने में लगे हुये हैं।

जी.डे.केलबेरमेटन

विषय-वस्तु

प्राक्कथन

भूमिका

1 भाग एक - बीते हुये दिन 10

2 भाग दो - सहज योग : एक अनुपम खोज

1. आप व मेरे बीच 28

2. सहज योग से भेंट 36

3 भाग तीन - दैवीज्ञान रहस्योद्घाटन 63

3. मानव लघु जगत में ब्रह्माण्ड का रहस्योद्घाटन 67

4. चेतना का उपकरण 78

4 भाग चार - व्याख्या

5. धर्म के गुण 113

6. धर्म तथा धर्मसंघ 154

7. चेतना में उत्क्रान्ति 178

8. आत्मसाक्षात्कार के बाद 206

9. घुड़सवार कल्की के आने से पहले सामूहिक उद्धार 232

5 भाग पाँच - दैवी माँ 248

भाग-१

बीते हुये दिन

जब मैं अपनी स्मृतियों के झरोखे से सबसे पुरानी छवि को देखता हूँ तो पाता हूँ कि लाल ओवरकोट पहने एक छोटा सा बच्चा बर्फ पर बैठा हुआ है। चारो ओर सफेदी ही छाई हुई है। शांत वातावरण में बर्फ पड़ रही है। लेकिन मेरा सारा ध्यान तो बर्फ खाने में ही लगा हुआ है। मैंने उनी दस्ताने पहने हुये हैं। इन उनी दस्तानों से बर्फ खाने का मजा कुछ और ही है। संपूर्ण विश्व मेरी शांति के साथ लयबद्ध है।

कुछ दिनों बाद एक हादसा होता है। यह दूसरी स्मृति है। दूसरी छवि में भी बर्फ है किन्तु इसमें बर्फ को कड़क गेंदो में बदल दिया जाता है और इन्हे मुझ पर फैंका जाता है। क्या आप यकीन करेंगे? मुझे यह अनुभव बहुत कड़वा लगा। चलिये मैं आपको पूरी कहानी सुनाता हूँ। एक दिन की बात है, वह दिन एक उजला और खुशनुमा दिन था। मेरी बड़ी बहन के पास लोमडी का एक छोटा मुखौटा था और मेरे पास हाथी का एक शानदार बड़ा मुखौटा। हम गाँव के बच्चों के साथ खेलना चाहते थे। लेकिन जैसे ही हम गाँव के बीच स्थान में पहुँचे, उन्होंने इन बेहूदी कडक बर्फीली गेंदो से हम पर बमबारी कर दी। हम वहाँ से भाग गये और कहीं छुप कर रोने लगे। मेरा हाथी का मुखौटा पूरा फट गया। मैं इस दुनिया के बारे में कुछ भी नहीं जानता, लेकिन यह मुझे अच्छी नहीं लगी। भगवान का शुक्र है कि मेरी माँ बहुत मीठी और प्यारी है। मैं अपने घर वापस जाऊंगा जहाँ वह मेरा इंतजार कर रही है (जैसा मुझे लगता है) तथा मुझे ढेर सा प्यार-दुलार मिलेगा, पहनने को सूखे कपड़े और खाने को गर्म चाकलेट मिलेगी।

इस प्रकार, जीवन में कड़क बर्फीली गेंदे भी मिलीं और गर्म चाकलेट भी। मेरी कोशिश यही रही कि मैं पहली से बचूँ और दूसरी को खोजूं। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया यह नाजुक प्रयास बेहद कठिन होता गया।

जब मैं बड़ा हो रहा था तो मैंने पाया कि बड़े लोगों की मुझसे उम्मीद थी कि मैं समझदार बनूँ। अब, मैं नही जानता कि आप यह जानते हैं कि नहीं, किन्तु 'बड़ा होना' तथा 'समझदार होना' दो अलग बाते हैं।

बड़े लोग वे होते हैं जिन्हे आप हमेशा नीचे से देखते हैं। उनकी बड़ी टाँगे होती हैं तथा वे हर वक्त बड़ी-बड़ी बाते करते हैं। समझदार होने का अर्थ यह है कि आप भी उनकी तरह अगम्य हो जाओ। बड़े लोग वाकई में मददगार होते हैं। वे दरवाजा खोलते हैं, वे लिफ्ट का बटन दबाते हैं, वे बड़े कुत्तों को दूर भगाते हैं। उनके पास शानदार कारें भी होती हैं। लेकिन उनमें कोई समझदारी नहीं होती। यदि आप बुद्धिमान हो तो बड़े लोगों से आपको राहत मिल सकती है। उदाहरण के लिये क्रिसमस के दिन आप उनके द्वारा दिये गये सभी उपहारों को बैठक कक्ष में सोफे के नीचे जाकर, जहाँ से वे आपको नही देख सकते, आराम से डब्बों को खोल सकते हो। लेकिन ऐसा मौका बार-बार नहीं आता। आखिरकार, आप बड़े लोगों से तभी बर्ताव कर सकते हैं जब आप उन्हें भरोसा दिला दें कि आप भी उनकी ही तरह समझदार हो गये हैं। इसके लिये आपको ऐसा दिखाना होगा कि आप बहुत मस्त नहीं हो : बड़े लोग भी मस्त नहीं होते। वे महत्वपूर्ण होते हैं। इसके आगे आप और भी महत्वपूर्ण चीज़ों के बारे में सीखते हैं। स्कूल महत्वपूर्ण है।

स्कूल में आपकी मुलाकात दूसरे बच्चों से होती है। उनमें से कुछ बहुत अच्छे होते हैं। उनमें से कुछ पहले ही बड़े हो गये होते हैं, तथा उनमें कुछ ऐसे भी होते हैं जो बर्फीली गेंदो की जगह पत्थर फैंकते हैं।

खैर... इस बात का उतना असर नहीं पड़ता क्योंकि मैं दोपहर का खाना खाने घर आ जाता हूँ। मैं भाग्यशाली भी हूँ क्योंकि मेरे पास एक दादी हैं और एक नानी भी। मेरी दादी एक उँची छत वाले लकड़ी के घर में रहती है। वहाँ मैं उनके बिस्तर पर कूद जाता हूँ तथा हम दोनो खूब देर तक बातें करते हैं। वो दूसरे बड़े लोगों की तरह नहीं है, वह समझती है। ईस्टर के समय तो हमारे साथ बाग में आती है तथा घोसलों में अण्डे ढूँढती है। वो बहुत ही प्यारी और मीठी है। वो हर दिन 'वर्जिन मेरी' की प्रार्थना करती है तथा मैं उनकी आँखों

में प्रेम देखता हूँ। मेरी नानी का झील के पास एक आलीशान घर है। बाल्कनी से मैं हंसो को तथा डूबते सूरज को देखता हूँ। हम अच्छे दोस्त हैं। बस, एक ही बात है कि वह दैनिक समाचारों में नाश-विनाश की बातें सुनती हैं तो वह डर जाती है, मैं उन्हे गुदगुदी करता हूँ जिसके बाद वह ठीक हो जाती है। गैराज में एक बड़ी अमेरिकन कार है जिसे कोई इस्तेमाल नहीं करता: शायद ये कार वो मुझे दे देगी। बाग, झील की रहस्यमयी खुशबू से परिपूर्ण है तथा यहाँ पूर्ण शांति है।

जब मैं ग्यारह साल का हो जाता हूँ तो मेरे पिता मुझे मध्ययुगीन सोच वाले पादरियों के द्वारा चलाये जाने वाले बोर्डिंग स्कूल में डाल देते हैं। हे भगवान! सत्रह का होते-होते मैं किसी तरह इससे बाहर आ जाता हूँ। इस बीच थोडी बहुत घटनाएं घटीं।

इस 'केवल लड़कों' के स्कूल में एक सामान्य सोच थीं-लड़कियाँ। बातें कुछ ऐसी होती थीं जिससे खूब हँसी छूटती थी। कुछ पादरी जो घटिया सोच के थे, ऐसे लड़कों पर नज़र रखते थे जिनकी मित्रता में दोष था। मैं इस माहौल से शुरू में खिन्न हुआ। इसके बाद मुझे झटका लगा, फिर मैं इसका आदी हो गया। इसका संबंध, मुझे लगता है, 'बड़ा -होने' के प्रक्रिया से था। चलो.... मैं अपना होमवर्क करता हूँ, कई वर्जित पुस्तकें कक्षा के दोस्तों के जरिये मिल जाती हैं। और.....मेरी पढ़ाई ठीक-ठाक ही हुई, लेकिन इस प्रक्रिया में मैंने अनजाने में अपने चित्त को खराब करना शुरू कर दिया।

धर्म दैनिक अनुशासन से संबंधित था तथा मुझ पर भी वह आधिकारिक मुहर लगा दी गई : उबाऊ, पीड़ाकारी, कृत्रिम। मैंने इन दोनों पर कड़ी प्रतिक्रिया की तथा हर दिन सुबह होने वाली सभा के दौरान उपन्यास पढ़ना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे मुझे विद्रोही तत्वों के एक स्वीकृत नेता के रूप में पद मिल गया। सहपाठियों के एक छोटे दल के साथ हमने हर प्रकार के शरारतपूर्ण व्यवहारिक चुटकलों का आनन्द लिया। हमने अपने बीच बीते हुये दिनों की भावना उदार मन तथा चुने हुये कवियों से दर्शाई। मठ के तहखाने में रखी विशिष्ट मदिरा को चुराने के लिये रात्रि कालिन अभियान भी इसमें

शामिल थे। मध्यरात्रि की एक मोमबत्ती में सो रहे मठ की अंगूरी शराब को चखते हुये दोस्ती प्रकट करना एक बहुत रोमांचक बात है।

हमने यह भी पाया कि हमारे प्रिय लेखक, कलाकार तथा संगीतकार सभी उस समय के समाज में व्याप्त मूर्खता से खिन्न थे तथा हम भी उनकी प्रतिक्रिया से सहमत थे। अतः हम बुद्धिवाद, बाँकेपन तथा युवा-विरोध में बढ़ते गये तथा हमने गर्व से निर्णय किया कि सबसे बड़े धर्मयोद्धा निराशावादी लोग ही होते हैं। कभी-कभी हालाँकि, महामंदिर की मेहराबों में ग्रेगोरियन मंत्रों की गूँज को सुनकर मुझे विस्मय होता था: ''शायद, किसी समय ये मंत्र उन पुजारियों द्वारा गाये जाते होंगे जो आनंद से परिपूर्ण थे।'' चौदह साल की उम्र में मैंने एक साधारण सी डायरी में लिखा: ''वे लोग परमात्मा को कैसे इतना निष्प्राण बना सकते हैं? उनकी हिम्मत कैसे होती है? वह बहुत विशाल है, परमात्मा की विशालता की धुंधली झलक मैं देख सकता हूँ।''

आज के बुद्धिजीवी सत्य को जानने की अपेक्षा इसे परिभाषित करने में कहीं अधिक व्यस्त हैं। मैं सुकरात, सेनेका, विलोन, पास्कल अथवा मोन्टेग्न की पसंद करने लगा। वे चलन के अनुरूप नहीं है, किंतु मुझे लगा कि वे ईमानदार हैं।

वे लोग मेरे धर्म के प्रोफेसर की तरह अथवा मेरे दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर की तरह नहीं है: (मैं साहित्य के प्रोफेसर के संबंध में भाग्यशाली रहा) जो उन चीज़ों के बारे में बोलते हैं जो उनके आधे दिमाग ने आधी ही समझीं है। पहला भाग दूसरे वाले भाग की चतुराई देखकर दंग है। वास्तव में, मैं अपने धर्मशास्त्र के प्रोफेसर को लेकर सही नहीं हूँ: उसने सत्य पा लिया था। यह उसे एक पाकेट बाईबल की कीमत से ज्यादा महंगा नहीं पड़ा। लेकिन मुझे यह इतनी महंगी नहीं लगी कि इसे मैं खरीद लूं, इसलिये मैंने यह नहीं खरीदी।

अब मैं सोलह साल का हूँ और मैं जर्मनी में हूँ। मैं यहाँ छुट्टियाँ मनाने आया हूँ और प्यार में पगला गया हूँ। वह एक जर्मन लड़की है और मेरी जर्मन भाषा के हिसाब से ठीक-ठाक सी है, लेकिन बात यह नहीं है। मैं उसे प्यार करता हूँ। खैर... सोचा मैंने यही था। गर्मियों के स्कूल में कक्षाओं के दौरान, हम एक-दूसरों को कागजों का आदान-प्रदान करते हैं जब कि अध्यापक

ब्लैक बोर्ड पर लिख रहा होता। वह मुझे बधाई देती है कि मैं इतिहास विषय में कितना अच्छा हूँ और यह बात मुझे अच्छी लगती है; विशेष रूप से उसके मुख से। वह मुझे एक पार्टी में बुलाना चाहती है: मैं अभी तक किसी पार्टी में नहीं गया हूँ.... लेकिन इसमें जाऊंगा। अब होता यह है कि माता-पिता बीच में आ जाते हैं और मैं उसे देख नहीं पाता इसलिये मैं खा नहीं सकता, सो नहीं सकता। उसकी सहेली के माध्यम से ब्लैक फारेस्ट में एक छोटी-सी झील के नज़दीक हम छिपकर मिलते हैं। वाकई में कितना रसपूर्ण लगता है। एक दिन आधी आँखे बंद करके वह मुझसे एक चुंबन का आग्रह करती है। मैं बहुत प्रभावित होता हूँ। मुझे समझ नहीं आता कि क्या करूँ। आखिर में, मैं अपना रेनकोट निकालता हूँ और इसे उसके सिर के उपर रख देता हूँ और इसके माध्यम से मैं चुंबन लेता हूँ। उसे थोड़ा अचंभा होता है। किन्तु मैंने बातों को तर्क में ढ़ालने की महारत पहले से ही हासिल कर ली थी-मैं उसे बताता हूँ कि यह एक 'फ्रेंच ट्रिक' है। मुझे लगा कि इससे बात बनी थी। वह प्रभावित हुई और उसे बहुत खुशी हुई कि उसका फ्रेंच बायफ्रेन्ड कितना जानकार है।

ग्रीष्मकाल खत्म हो गया है। एक बार फिर कॉलेज में हूँ, बरसात तथा आँसूओं में हूँ। वैसे भी मैं कॉलेज से तंग आ गया हूँ। मेरे अध्यापकों से मेरे संवादो में धैर्य खत्म होता चला जा रहा है।

''सर, इस संसार में शैतान क्यों है?

क्योंकि हमने पाप किये।

फिर हमने पाप क्यों किये?

क्योंकि हमारा स्वभाव हमारे प्रथम माता-पिता के मूल पाप से भ्रष्ट हुआ था।

किंतु सर, मैं भला उस पाप से कैसे भ्रष्ट हो गया जो मैंने किया ही नहीं।

मानव स्वभाव इसलिए भ्रष्ट हुआ क्योंकि इसका उद्धार होना था।

सर, मुझे क्षमा करें, मुझे लगता है कि मेरा उद्धार भी उतना ही हुआ

है जितना आपका हुआ हो।

बाहर निकलो!''

मेरे दोस्तों को बाहर निकाल दिया गया। केवल रसहीन लोग ही संभवत: इस कॉलेज में फल-फूल सकते हैं। अत: प्राचार्य, जो खुद की नज़रों में एक बढ़िया आदमी था, ने मुझे स्कूल से निकाल दिया, आरोप: 'अपने साथियों पर बुरा प्रभाव।' अपने शहर में कॉलेज के तीन साल और बीतते हैं। १९६८ में परीक्षायें पास कर लीं: अब आया विश्वविद्यालय, आजादी की जिंदगी शुरू होती है।

मैंने दृढ़ता से निश्चय किया कि मैं इसे जी भर के जियूँगा।

मैंने छुट्टियों में खूब मौज की। साल्जबर्ग (आस्ट्रिया) में गरमी की छुट्टियाँ; बहुत से देशों के ढेर सारे दोस्त। मोजार्ट के संगीत का आनंद लेना तथा बारोकॅ फुव्वारे में नहाना। मुझे प्यार हो गया है, लेकिन थोड़ी बहुत लड़कियाँ से। इटली (फ्लोरन्स) में गर्मियाँ: मैं मेहमान हूँ तथा एक अकेले पढ़े बूढ़े व्यक्ति का दोस्त बन गया हूँ जो जानवरों तथा फ्रेन्सिस्को डी असीसी से प्रेम करता है। गरीब होने की वजह से वह रंग-चित्रों तथा फर्नीचर बेच रहा है ताकि बगीचे के बड़े पिंजरों में पड़े मँहगें पक्षियों को दाना खिला सके। किंतु उसे अपनी ओर से इन्हे खिलाना पड़ता है तथा कुछ सालों बाद वह थक-हार के मर जाता है। मैंने यह जानने लगा के पैसे के बोलबाले वाले समाज में जिंदगी कहीं अधिक भद्दी है जब आपके पास कौड़ी भी न हो। तथाकथित अमीर देशों में, हर आदमी अमीर नहीं है और थोड़े से ही अमीर लोग सुखी हैं। बाद में बोलग्रा में मार्क्सवाद पढ़ने के दौरान, इसे और अधिक वैज्ञानिक ढंग से समझते हुये, मेरा संदेह बिलकुल दूर हो गया कि किस प्रकार विकसित समाज हृदय विहीन लोगों की एक ऐसी भीड़ बन गया।

किंतु मैं वाकई में सौभाग्यशाली था, मेरा परिवार गरीब नहीं था। जिनेवा में मेरा फ्लैट था, मेरे पास कार थी, पैसे की कोई समस्या नहीं थी तथा उस समय मैं वह सब कर सकता था, जिसे करने की इच्छा किसी को भी

हो सकती है। मैं अपनी गर्मियों की छुट्टियों में प्रेम, रूमानियत तथा एक प्रकार के ऐतिहासिक भू-दृश्य को फैलाने की चेष्टा कर रहा था। काव्यमय घटनाओं को गढ़ने की संभावना में मेरा दृढ़ विश्वास था। अतः, मुझे प्रेम हुआ, (वैसे तब तक यह एक वयस्क शब्द बन गया था) फ्रेन्च कोर द अज्यूर में, एजियन सागर के टापू में....इत्यादि। हाँ यह जरूर है कि पूरा साल केवल गर्मियों का ही नहीं होता किंतु स्विटजरलैण्ड की ठंड में आप ढेर सारी स्किईंग कर सकते हैं: चमकती हुई सफेद बर्फ, नीला बैंगनी आसमान और स्पीड। विश्वविद्यालय के इस दौरान मैं कानून की डिग्री लेने में कामयाब हो गया था, किंतु बात यह नहीं थी। बात यह थी कि मैं कई माध्यमों के द्वारा आनंद एवं हर्ष की तीव्रता के स्वाद को खोज रहा था। मुझे उन दिनों की याद है : दोस्तों को मिलने पेरिस, ब्रसल्स अथवा लंदन जाना, नाचना-गाना तथा मेनशन और हवेलियों में पार्टी करना। फिर भी इस भँवर में, मैंने अपने भीतर के कुछ मुलभूत प्रश्नों के उत्तर जानने की गहरी जिज्ञासा का बोध कभी भी नहीं खोया। ''यह कौनसा खेल है?'' मैं कैसे खुश रह सकता हूँ? (खैर.... मैं खुश दिखाई देता हूँ, लेकिन अन्दर से नहीं हूँ), खुशी क्या है? प्रेम क्या है? सत्य क्या है? यह ऐसे प्रश्न थें जिनसे मैं पीछा नहीं छुड़ा सकता था।

कभी-कभी मैं यह भी महसूस करता था कि कोई ऐसी चीज़ है जो हमसे बहुत दूर विद्यमान है और जो पूर्ण रूप से भ्रामक होने पर भी उतनी ही जरूरी है जितनी कि ऑक्सीजन! ''हे परमात्मा, आप जहाँ कहीं भी हो, क्या आप ये नहीं देखते कि दुनिया पागल हो रही है? मैं भी पागल हो रहा हूँ। कृपा करके आप कुछ करते क्यों नहीं? यह असामान्य बात नहीं है कि मेरे कमरे की दीवारों से ये संवाद आँसुओं से शुरू होते थे और आँसूओं में खत्म होते थे।

मैं अपने जीवन से एक कविता अथवा एक रोमांस उत्पन्न करने की चेष्टा कर रहा था किन्तु मैं गलत सामग्री का प्रयोग कर रहा था; सौंदर्यबोध, जो रूपों का संसार है, सीमाओं का संसार है। सौंदर्य में चाहे वह एक मूर्ति में हो, एक विचार में अथवा एक नारी में-मैं एक प्रतिरूप के खाके को देखता था जो मेरी पहुँच के परे था। मैं प्रतिरूप को देखने के लिये खाके में खो जाता था।

यह प्रयास धीरे-धीरे बहुत निराशाजनक होता चला गया।

वैसे ही मैं देख पाया कि महान विचारकों तथा कवियों आदि का मस्तिष्क सत्य की चिनगारी से प्रकाशित था, आग की वही चिनगारी जो कला तथा साहित्य के सृजन में, विज्ञान तथा दर्शन में विद्यमान थी। किन्तु सत्य स्वयं मेरी पकड़ से बाहर था। मैं इतना ईमानदार जरूर था कि मैं यह मान सका किन्तु मैं उन लोगों के प्रति व्यंगपूर्ण हो गया जिनके पास यह ईमानदारी नहीं थी। मैंने उन्हे केवल धर्मों, जातियों, आदर्शों में ही शरण लेने में माहिर पाया, पुराने सुनहरे मुखौटों को नष्ट करके नये मुखौटों को बना पाया! ''आप यौवन के पुजारी क्यों हैं?'' मैंने तिरस्कारपूर्ण ढंग से विचार किया। ''युवा वह आशीष है जो स्वयं को नहीं जानता, यह एक अपूर्ण वचन है....'' किन्तु मैंने यह भी सोचा कि यौवन उतना ही पुराना है जितनी की भूख।''

मैं उच्च वर्ग के जिन्दगी के प्रति उस बेपरवाह रवैये से व्यथित हो गया। यूरोप के कई देशों में, मैंने इस अनुभव को साझा किया। मैं नीशे के इस कथन से सहमत हो गया, ''जो चीज़ आदमी को बेहूदा बनाती है वह यह सोच है कि आदमी व्यर्थ में जीता है।'' एवं वह कौनसी चीज़ है जिससे जीवन को अर्थ मिलता है? मुझे तो कोई भी चीज़ सार्थक नहीं लगी किन्तु मैं यह खोजता रहा कि कौनसी चीज़ सार्थक हो सकती है। कभी-कभी मैं बहस में ज्यादती कर जाता था: या तो परमात्मा है अथवा वह नहीं है; यदि वह नहीं है तो इस दुनिया का क्या फायदा! किन्तु, यदि वह है तो उसे ढूँढने में थोड़ी देर भी हो जाये तो कोई हर्ज नहीं। ज्यादातर मैंने 'परमात्मा' शब्द का इस्तेमाल नहीं किया, मैंने केवल ताज्जुब किया कि, ''क्या हो रहा है?'' ....अत: अन्य लोगों की तरह मैं भी आगे बढ़ा। मैं शुरू में विशेषत: ड्रग्स से आकर्षित नहीं हुआ। किन्तु उसी समय, जिनेवा में, मेरी एक डच मित्र थी जो गुलाब के फूलों तथा हशीश की दीवानी थी। उसने बड़े चाव से अपनी जिन्दगी के तौर-तरीकों से मुझे अवगत कराया। इस प्रकार का धुँआ मुझे रोचक जरूर लगा लेकिन अंतिम विश्लेषण में लाभदायक नहीं। इन सबके बीच मेरी उम्र के तमाम लड़के-लड़कियों के बीच मैंने एक चीज़ पाई कि 'प्यार करो और प्यार

पाओ' ही जिन्दगी को आसान करने का रास्ता है....। किन्तु यह भी खोजा कि सही संतुलन के अभाव में प्यार शान्ति और पूर्णता नहीं प्रदान करता।

सुबोधता एक मिश्रित आशीर्वाद है, सबकुछ इस बात पर निर्भर करता है कि प्रकाश क्या दिखाता है। मैं मानता था कि मैं अन्य लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक सुबोध हूँ। किन्तु जो भी इसमें कोई मौज नहीं थी। मैं समाज का दबाव महसूस करता था: अमानवीय, बोर करने वाला, क्रूर तथा मूर्ख। मैं देख सकता था कि लोग मटर के सूप में तैरने की कोशिश कर रहे थे: मनोरंजन अथवा राजनितिक मतों के पीछे दौडना, प्रेम तथा सफलता को खोजना-बिना उस यंत्रप्रणाली को समझे जो उन्हें इनके पीछे दौडाती है। फिर भी मैं स्वयं ठीक ही दौड़ रहा था; इस प्रकार मैं खुद की बेवकूफी से परेशान होता जा रहा था। मैं अपनी कहानी को बहुत आसानी से बता सकता हूँ:

मेरा जन्म १९४९ में स्विटजरलैण्ड के लोसान में एक समृद्ध, अभिजात परिवार में हुआ था। इसमें दो चीज़ें सम्मिलित थीं: मैं युद्धोपरांत पीढी से तथा एक विशिष्ट राष्ट्र के एक विशिष्ट सामाजिक स्तर से संबंधित था। ये दोनो चीज़ें कहानी का ढाँचा तैयार करती हैं। इस प्रकार के भौतिक वातावरण में आर्थिक रूप से तो मैं सुरक्षित था किंतु ये सुविधायें मुझे वह चीज़ नहीं दे पा रही थीं जिसकी मुझे तलाश थी। दूसरी ओर मैं उन सभी संभव प्रयोगों से होकर भी गुजरा जिससे युद्धोपरांत पीढ़ी गुजरी थी: इसने भी मुझे वह चीज़ प्रदान नहीं की जिसकी मुझे तलाश थी। ओह! चलो, सोते हैं। मैं कल उठूंगा। जिन्दगी ऐसे ही चलती रही। मूलरूप से मैं उस किशोर के बारे में सोच रहा था जिसने एक बार कहा था, ''ऐसा हो कि कुछ भी भूख को शांत न कर सके, यह कभी खत्म न हो, मेरी प्यास कभी न बुझे; यह और बढ़े क्योंकि भूखा और प्यासा होने पर ही मैं स्वयं को धोखा नहीं दे पाता।'' इस दौरान मैंने यह सोचा कि संसार को छोड़ना मूर्खता होगी क्योंकि व्यक्ति इसमें पूरी तरह से जुड़ा रहता है। अत: मैंने इसे स्वीकार किया, चीज़ों के बारे में हँसने की कोशिश की अथवा, हँसना सीखना शुरू किया-पहले स्वयं पर ताकि दूसरे पर हँसने का अधिकार पा सकूँ।

मैं शॉफर की इस बात से सहमत हूँ, ''आपके बेकार दिनों में सबसे बेकार दिन वह है जिस दिन आप हँसे ही नहीं। '' किन्तु मैं उसकी तरह इतना निंदक नहीं था। अतः मैंने खूब मौज-मस्ती की, संगीत का आनन्द लिया, दोस्तों से मिला। घूमा, फिरा और किताबें पढ़ी। एक बार दूसरा दिन आया, सूरज आया और डूबा, एक दिन बारिश हुई दूसरे दिन साफ आसमान। मैं सुबह दाढ़ी बनाता, मैं गाता, मैं रोता, मैं स्कूल जाता, मैं आफिस जाता, मैं बैठक जाता, मैं घर आता, मैं सोता, मैं जागता, आप समझ रहे होंगे मैं क्या कहना चाहता हूँ।

मैंने उन सामाजिक कर्मकाण्डों को भी निभाया, जिसे व्यक्ति को समाज के अन्य सदस्यों को विश्वस्त करने के लिये निभाना पड़ता है। मैंने वह सभी चीज़ें कीं जिन्हे प्रतिष्ठित लोग सम्मानजनक समझते थे: मैं उच्च वर्ग में उठा-बैठा; मैंने यूरोप तथा अमेरिका में शैक्षिक शिक्षा प्राप्त की; मैं सैन्य लेफ्टिनेन्ट बना; मैंने बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रशासन में ओहदा प्राप्त किया। मैंने वह चीज़ें भी कीं जिन्हे प्रतिष्ठान-विरोधी लोग बहुत सम्मानजनक समझते हैं। मैंने मार्क्सवाद बहुत ध्यान से पढ़ा, मैं ड्रग के अनुभवों से गुजरा, मैं बहुत से नवीन धार्मिक आंदोलनों में गया, तथा हिप्पी समुदायों में स्वच्छंदता से रहा.....वगैरह। कुल मिलाकर ये सभी प्रयोग यह बताने में काफी लाभदायक तथा रोचक सिद्ध हुये कि किस चीज़ से बचना चाहिये और किस चिज़ को अपनाना चाहिये। मैंने सभी पेड़ों के सभी फलों को हथियाने की कोशिश की, मैंने उस फल को खाने की कोशिश की जो कभी भी मेरे मुँह से निकल न सके। मेरा असफल होना अवश्यंभावी था। मैंने नहीं सोचा था कि शैतान मुझ पर हावी हो सकता क्योंकि मैं उतना ही अबोध था जितना कि वह धूर्त। मैंने 'डियर डाक्टर एन्ड मेफिसटोफलिस' की भाँति शैतान से अपना एक छोटा सा खेल खेला। मुझे लगता है कि मेरी जिज्ञासा ही मेरी प्रेरक शक्ति थी। मेरा यह मानना था कि एक युवक पूर्व के आध्यात्मिक निष्कर्षों की अनदेखी नहीं कर सकता। अतः मैंने इसके बारे में पढ़ा, तथा भारत से आयातित कुछ गुरूओं के पास भी मैं गया। मेरे हिसाब से भारतीय

दर्शनशास्त्र की शिक्षाऐं सृष्टि की उत्पत्ति, पदार्थ और आत्मा के बीच संबंध, मानव की अस्तित्वात्मक स्थिति, मुक्ति का मार्ग....इत्यादि विषयों से संबंधित कई बेहतरीन सवालों के जवाब देती हैं।

दूसरी ओर कुछ गुरूओं के पास जाने के बाद मैंने देखना शुरू किया कि वे कौनसी चालें अपने भक्तों के साथ चलते थे। यह जानकर मुझे बहुत दुःख हुआ कि उनमें ज्यादातर झूठे हैं, बहुत से भ्रष्ट हैं तथा अपने प्रति समर्पित भक्तों की उर्जा का उपयोग कर रहे थे। यह बताने की जरूरत नहीं है कि वे उनकी संपत्ति भी ले रहे थे। मुझे इन बहुत से भक्तों के प्रति खेद था, किन्तु मुझे यह भी लगा कि कुछ अन्य का नसीब यही है। उन्हें लगा था कि वे 'गुरु शॉपिंग सेंटर' में छूट वाली एक कीमत पर परमात्मा का साम्राज्य प्राप्त कर लेंगे, तथा इस बात पर उन्हें बहुत घमण्ड भी था। मैंने तो सोचा था कि कभी भगवान के निकट जाने की कोशिश करूँ, तो नम्रता रखने में ही भलाई है।

बोलोग्ना, इटली; के पुराने पत्थर हमें घूरते हैं। मुझे मध्ययुगीन गलियाँ, तोरण पथ (arcades) और पिज़्ज़ा पसन्द है। एक देश जो सौंदर्य तथा विवेकी लोगों से भरा हुआ है तथा यहाँ मैं जान रहा हूँ कि मात्र सौंदर्यबोध तथा बुद्धि कहीं नहीं ले जाते। एक सभ्यता के नाश का स्वाद खट्टा हो सकता है, बेचारा यूरोप, किन्तु जीवन अब अगली दफा कहाँ खिलेगा?

अपने अध्ययनों के माध्यम से मैं इतिहास के सत्य साधकों : अर्जुन, आखनातन, कान्त, कार्ल मार्क्स.... के निष्कर्षों की रूपरेखा बनाता हूँ। मेकेवली ओगस्टीन से तंग आ चुका है। वह कहता है, "हमें नैतिकता को भूल जाना चाहिए क्योंकि हम इसके बारे में कुछ भी नहीं जानते।" खैर.... वह पोप की ओर देख रहा है; मैं कथन समझ जाता हूँ! किन्तु फिर मनुष्य के कर्म को कौन नियंत्रित करेगा? समुदाय में लोगों को कौन समग्र करेगा? क्रामवेल की सेना से हॉब्स् भाग खड़ा होता है तथा 'आत्मरक्षा' लिखता है... ठीक है.... यह तर्कपूर्ण तो लगता है किन्तु प्रेरक नहीं। अमीरों के इंग्लैंड में लॉक 'निजी संपत्ति' की बात करता है.... यह प्रेरक लगता है, लेकिन केवल उनके लिये जो इसे जुटा सकते हैं। रुसो प्रसन्न नहीं है। लेनिन और

माओ त्से तुंग विरोधाभास देखते हैं, हाँ। लाओ-त्से तथा हीगल संश्लेषण की बात करते हैं... क्या आप वास्तविक इतिहास की बात कर रहे हैं? मार्कस् कहता है संश्लेषण हो ही नहीं सकता। किन्तु वह पातांजलि तथा जेन बौद्धवाद को नहीं जानता। रूपरेखा की चर्चा करते-करते मेरे दिमाग में बुखार हो रहा है।

१९७४ में जब मैं बाल्टीमोर (मेरीलैंड) में जॉन हापकिन्स विश्वविद्यालय में पढ़ाई कर रहा था तभी मुझे विश्वास हो गया था कि केवल एक आमूल ऐतिहासिक घटना ही व्यक्तिगत तथा सामूहिक असंतुलन के दुश्चक्र को तोड़ सकती है। किसी तरह मैं इस नतीजे तक पहुँचा कि यह घटना मानवीय चेतना के क्षेत्र में ही होगी अर्थात यह ज्ञान-मीमांसात्मक होगी। साथ ही इस घटना की ओर संकेत करने वाला समय जल्द आने वाला है। किन्तु, मैं नहीं जानता था कि कहाँ, कब, और किस प्रकार यह घटित होगा....शायद यह पहले ही घटित हो रहा हो।

यह प्रश्न इस प्रकार किया जा सकता था : बोध की क्षमता (बुद्धि से परे) किस प्रकार विकसित की जाये जो चेतना के क्षेत्र में एक उत्क्रान्ति की द्योतक हो न कि एक प्रतिक्रमण की? मूल-प्रवृत्ति की ओर लौटने से सभ्यता की समस्याऐं दूर नहीं होने वाली। क्योंकि मूल-प्रवृत्ति और सभ्यता मनुष्य के महा-विरोधाभास की एक सार्थक अभिव्यक्ति के सिवाय कुछ भी नहीं है, जो विरोधाभास के ध्रुवों की ओर मात्र आगे-पीछे जाने से सुलझने वाली नहीं है। इसके अलावा एक पश्चिमी मानव की सामान्य-मनस स्थिति बुद्धिवाद का एक बेहतर स्तर प्रस्तुत करती है, यह वह संपदा है जिसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। 'मूल प्रवृत्तीय' साधन जैसे ड्रग्ज, सेक्स तथा छद्म-रहस्यवाद एवं छद्म पाशविक प्रकार की परा-मनोविज्ञानिक जाँच-पड़ताल में आसक्ति के माध्यम से मन की बोध क्षमताओं से परे जाने के प्रयास को हम प्रतिक्रमण कह सकते हैं। आजकल के केलीफोर्निया सर्कस, नकली गुरु, झूठे पैगम्बर, विज्ञान-कथा (साइंसफिक्शन) एवं तथाकथित 'नये चर्च' इत्यादि केवल यही दर्शा रहे थे कि ज्ञान-मीमांसात्मक भेदन की आवश्यकता का समय आ गया है। हीगल की अवधारणाओं के अनुसार मैं कहूँगा कि विश्व इतिहास में

वर्तमान समय बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में परिपक्व हो रही संभाव्य-शक्ति के कार्यान्वयन का उसी तरह से है जिस तरह से उन्नीसवीं सदी का समय भौतिक जगत में क्रांति लाने का था। ऐसी संभाव्य-शक्ति के साक्ष्य धार्मिक, कलात्मक तथा साहित्य की अभिव्यक्तियों तथा बहुत विकसित समाजों में व्यवहार के निश्चित प्रतिरूपों के सतर्क विश्लेषण में पाये जा सकते हैं।

वास्तव में, सैद्धांतिक अवधारणा की चौखट तो बहुत अच्छी तरह बनाई गई थी किंतु यह एक खाली चौखट थी। लेकिन जब तक कि मुझे बोध की वास्तविक घटना का अनुभव नहीं हो जाता, ये सभी मान्यताएं मुझे कहीं नहीं ले जाने वाली थीं। इस बात का अहसास मुझे दु:खद रूप से था।

कुछ दिन ऐसे होते हैं जब मुझे अच्छा नहीं लगता। जैसे यह दिन :

''मैं दोपहर के तीन बजे से पहले अपने बिस्तर से बाहर नहीं आता क्योंकि मुझे यह नहीं मालूम कि इसके बाहर आकर मैं क्या करूंगा -

मैं नहीं जानता कि कैसे जीया जाये।
मैं नहीं जानता कि क्या करूँ।
मैं नहीं जानता कि कैसे महसूस करूँ।
मैं नहीं जानता कि मुझे सोचना चाहिये या नहीं।
मैं बस नहीं जानता।
मुझे बुरा लग रहा है। मुझे लग रहा है कि मैं भटक गया हूँ।''

मैं ऐसे दोस्तों से तंग आ गया हूँ जिनका पार्किंग मीटर 'सेक्स' पर आकर जाम हो जाता है। मुझे अपने व्यवहार पर आश्चर्य होने लगता है। कुछ दिन पहले तक मैं अन्य लोगों की भाँति सोचा करता था कि यौन-प्रेम से खुशी और परिपूर्णता के श्रेष्ठ अवसर मिलते हैं। हम सबने 'स्वच्छंद प्रेम' को स्वीकार कर लिया था; यह हमारे जीवन का एक सिद्धांत था। किंतु हममें से कितने लोग वाकई में खुश हैं? सच तो यह है कि ज्यादा नहीं! जीवन में कितनी असुरक्षा व्याप्त है। लोग किसी से प्रेम करने से डरते हैं क्योंकि वे पीड़ा से डरते हैं, जिस साथी को उन्होंने चुना है वह किसी और अच्छे साथी

के लिये उन्हें छोड़ सकता है। सही संबंध कौनसा है? मैं अपनी बहन को किसी ऐसे आदमी के साथ नहीं जाने दे सकता जो उसे थोडे समय के बाद छोड़ दे। फिर हम तितलियों की तरह बर्ताव क्यों करते हैं? यहाँ तक कि जब मैं अपनी गर्लफ्रेन्ड के साथ होता हूँ तब भी मेरी नज़र इधर-उधर दौडती रहती है। मुझे यह बेचैनी कोई खुशी नहीं देती। अत: मैं स्थिर होने का निर्णय लेता हूँ। कोशिश करता हूँ कि सेक्स के बगैर दोस्ती और प्रेम का आनन्द लूँ।

मैं विश्वविद्यालय के उन प्रोफेसरों से भी दु:खी हो गया हूँ जिन्हें पता ही नहीं कि किस चीज़ के मायने क्या हैं और किस के नहीं! शिक्षा क्षेत्र में विश्लेषणात्मक विचार के नाम पर एक नये प्रकार का लकवा कर देने वाला कुतर्क पनप गया है। विश्लेषणात्मक विचार से स्पष्ट सोचने में मदद मिलती है; तथा यह निश्चय ही एक सम्मानजनक कार्य है। किंतु यह योगदान केवल क्रमबद्ध तथा सहायक है। किसी विषय के बारे में स्पष्ट सोचना अथवा नहीं सोचना एक बात है। जिस चीज़ के बारे में आप सोच रहे हैं वह एक अलग बात है। यह सामान्य वस्तुनिष्ठता है। आप मूँगफली के बारे में स्पष्ट रूप से सोच सकते हैं। तथा विश्व के बारे में एक भ्रमपूर्ण ढंग से। यह मान लेना एक मूर्खता होगी कि मूँगफली विश्व का आधार है, लेकिन आजकल के शिक्षा-क्षेत्र में यह प्रवृत्ति आम हो गई है।

विश्वविद्यालय के ज्ञान में 'वैश्विक' नाम की कोई चीज़ नहीं है। यह विशिष्टताओं की एक व्यवस्थित अव्यवस्था है..... हर कोई बिना पूर्णता से जुड़े, अपने छोटे से क्षेत्र के संवर्धन में लगा रहता है। मैं भाग्यशाली हूँ, कि मुझे एम.ए. की डिग्री मिल गई है। जिन्दगी में मौज-मस्ती आ गई है। मुझे घूमना-फिरना पसन्द है। मैं ग्रांड कैनियन जाऊँगा और प्रशांत महासागर में तैरूँगा।

मैंने अपने 'अमरीकी' अनुभवों का चक्र पूरा कर लिया है। मैं इस अपसंस्कृति में उतनी ही गहराई में गया जहाँ तक मुझे लगा मुझे ज्यादा नुकसान नहीं है। शायद उनके पास उत्तर था जिसकी मुझे तलाश थी! एक उत्तर जरूर विद्यमान था, जिसे मैं जानता था: मैं इसे विश्व के सौंदर्य में, संतों के लेखन में, प्रेम करने में तथा प्रेम पाने में पाता था। यह जानते हुये भी, मैंने

महसूस किया कि कोई ऐसी अड़चन है जो मुझे इससे एकरूप नहीं होने दे रही। मैं कभी-कभी 'उस स्थिति' तक गहन आशीष के साथ पहुँच जाता था। किन्तु ऐसे क्षण कम अवधि के ही होते थे। बारम्बार, मैं अपने तथा वास्तविकता, मैं तथा स्वयं, तथा मैं तथा प्रेम की एकता के बीच अदृश्य दीवार को तोड़ने की कोशिश करता रहा था। क्या हम सब उसी उद्देश्य को खोज नहीं रहे हैं? सभी भाई और बहन स्वार्थ और उलझन को मिटाने की, स्वप्न और भ्रम को दूर करने की, जागृत होने की, मुक्त होने की तथा एक ऐसी जगह पहुँचने की कोशिश कर रहे हैं जहाँ हम यह कह सकें: ''हाँ, यही मैं हूँ, था और हमेशा रहूँगा। संपूर्ण विश्व मेरे आनन्द में विलीन है। मैं, तुम और हम एक हैं।''

केलीफोर्निया में, मैं मार्ग के अन्त में पहुँचा।

जितना हो सका उतना मैंने करने की कोशिश की, मैं ईमानदार था, मैं मनो-विश्लेषण तथा सामाजिक-आर्थिक संदर्भों में स्वयं का कहीं अधिक सुबुद्धि से विश्लेषण कर रहा था...। मैं स्थितियों का, दूसरों का, स्वयं का उतने खुलेपन और प्रेम से सामना कर रहा था जितना मैं कर सकता था। अंत में, मुझे समाधान तो दिखता था किंतु मैं इसे कार्यान्वित नहीं कर पा रहा था। जिस साम्राज्य की मैं खोज कर रहा था, वह मेरे बहुत नजदीक था-केवल एक बाल की दूरी-किन्तु यह निराशाजनक रूप से मेरी पकड़ से बाहर था। अप्राप्य से मेरी निकटता घोर व्यथाकारी थी। उत्तर मेरे पास था-यह मैं जानता था; मैं स्वयं को दरवाजे की ओर धकेलता था लेकिन इसे खोल नहीं पा रहा था। मैं बुरी तरह से थक गया था।

पैसेफिक पेलीडेस (लास एंजल्स) के नजदीक एक शाम की याद मुझे आती है, समुद्र तट पर मैं अकेला हूँ, ढलती शाम में, समुद्र की ओर में घुटनों के बल झुका हुआ हूँ और अपनी छोटी सी 'पैसेफिक पर प्रार्थना' बुदबुदाता हूँ: 'मेरे प्रभु, मेरे प्रेम, यह आप ही हैं जिसे मैं खोजता हूँ, यह आप ही हैं जिसे मैं चाहता हूँ, यह आप ही हैं जिसे मैं खोजता हूँ, यह आप ही हैं जिसे मैं चाहता हूँ, यह आप ही हैं जिसे मैं खोजता हूँ, यह आप ही हैं जिसे मैं चाहता

हूँ। मेरी मदद करो ताकि मैं आपसे पुन: मिल सकूँ। आप जिसमें भी मेरी मदद करने की शक्ति है, उससे पुन: मिलने में मेरी मदद करो।'

खैर.... जो बन पड़ा सो मैंने किया, किन्तु मैं जानता था कि अब मैं कुछ और नहीं कर पाऊंगा। वर्जीनिया की 'ब्लू रिज' से बोलडर क्रीक (केलीफोर्निया) के लकड़ी के वृक्षों की पहाड़ी तक मैंने सत्य-साधकों, सुंदर लोगों, खोये हुये लोगों की वेदना तथा आशा को साझा किया था। इनमें से बहुत सारे घोर अंत की ओर बढ़ रहे थे। सभी रास्तों को आजमा लिया गया था। कौन कह सकता था: ''आप गलत हो, आप सही हो?'' किसी को पता नहीं था। मैं नहीं जानता था कि अब क्या करूँ; मैं, बर्किले में लिख रहा था:

''न यहाँ,
न वहाँ,
लेकिन स्वयं के भीतर सोते हुये
वह चीज़ पाता हूँ जिसे मैं खोज रहा हूँ
तथा फिर, भी उठने के लिये
क्या मैं यहाँ रहूँ, या फिर वहाँ जाऊँ?
ओ! प्रियतम, मुझे मेरे अंधेपन से मुक्त करो।'

बर्किले में मुझे अपने एक भारतीय मित्र, एक बहुत होनहार तथा प्यारा युवक, से लंदन के समीप रहने वाले एक व्यक्ति का पता मिला। उसने मुझसे कहा, ''वे सचमुच एक माँ हैं तथा वे दैवी हैं। उन्होंने पूर्व जन्मों में सीता, राधा, वर्जिन मेरी के रूप में जन्म लिया था; वे शक्ति का अवतार हैं, जिनके आने का वचन दिया गया था तथा वे एक बार फिर अपने बच्चों के लिये आई हैं। ओह, तुम नहीं जान पाओगे.... तुम जाओ और खुद उनसे मिलो।''

''पर राजेश, तुम इस तरह की बातें कैसे कर सकते हो?''

''तुम महसूस कर सकते हो, ग्रेगोर, तुम वाकई में इसे महसूस कर सकते हो। तुम उनसे आती हुई चैतन्य लहरियों की जबरदस्त उर्जा को महसूस कर सकते हो तथा यह तुम्हारी चेतना की स्थिति को बदल सकती है!''

जब तक मैं जान पाता कि ऐसी बेवकूफी भरी बात के प्रति भावनात्मक तथा मानसिक प्रतिक्रिया से कैसे बचूँ; ''मैंने सोचा, क्यों न इसे आजमाया जाये: या तो अनुभव होगा अथवा नहीं!'' हालाँकि मेरी भावनायें तथा विचार पूरी तरह स्वच्छ नहीं थे। एक ओर, मेरे मित्र की बात की विशालता ने मेरे लिये कठिनाई उत्पन्न कर दी कि मान सकूं कि वह सही हो सकता है। हम बहुत समय से प्रतीक्षा कर रहे थे....! यह मानना लगभग नामुमकिन था कि आखिरकार, एक सच्चा दैवी-अवतार वाकई में इस विश्व में रह रहा है, खा रहा है, सो रहा है, विश्व के लिये अज्ञात तथा फिर भी इसके उद्धार के लिये तैयारी कर रहा है। दूसरी ओर, समय के लक्षण किसी जबरदस्त तथा नजदीकी चीज़ की ओर इशारा कर रहे थे। हम प्रभु ईसा-मसीह के बताये अंतिम दिनों के झूठे पैगम्बरें के बीच थे। प्रेतात्मवाद, ड्रग्ज, व्याभिचार का बढता हुआ संयोजन सामाजिक विघटन का संकेत कर रहा था। विकसित देशों में, प्रौद्योगिकी नियंत्रण से बाहर थी। विकासशील देशों में गरीबी नियंत्रण से बाहर थी; इंसान का जिंदा रहना ही मानो एक जबरदस्त चुनौती थी। यदि कभी भी दुनिया की हालत ऐसी होती जब परम उद्धारक को आना पडता तो यही वह समय था जब उसे आना था।

जैसा कि दुनिया में चल रहा घालमेल, इन्सान की वजह से विशेषत: पुरूषों का बनाया हुआ था, मुझे यह कहीं अधिक संतोषजनक लगा कि दैवी-अवतार एक नारी रूप में है (हिन्दुओं में जिसे 'दैवी माँ' 'माताजी' कहा जाता है)। यह ईसाई सिद्धांतो पर भी एक उत्साहजनक प्रकाश डालता है। अत: मुझे अपने मित्र की गुरु से मिलने का ख्याल अच्छा लगने लगा। 'यदि ऐसा ही है, तो मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ?' मैंने अपना सामान बांधा, शिकागो पहुँचा। वहाँ से ईस्ट कोस्ट होता हुआ फ्लाईट से लंदन तक पहुँचा जहाँ श्रीमाताजी रहती थीं। अमेरिका में लिखी आखिरी पंक्तियाँ आनंदपूर्ण अपेक्षाओं को प्रकट करती है:

मुझे वह दो, जिसके लिये मैं तड़प रहा हूँ,
मेरी मदद करो,

कि मैं स्वयं को
आपके हाथों में
सौंप रहा हूँ

* * *

शक्तियों को नियंत्रित करने वाली शक्ति प्रेम है।

* * *

बड़ा जोखिम, सुहाना सफर, अनजान रास्ता।

* * *

जब मैं इन बीते पच्चीस वर्षों को देखता हूँ तो मैं जरूर कहुँगा कि मैं बहुत ही भाग्यशाली रहा। मुझे शेर ने नहीं खाया, न ही मुझ पर चाकुओं और पत्थरों के वार हुये न ही मुझे सुकरात की भाँति जहर पीना पड़ा। मुझे साईबेरिया की ट्रेन भी नहीं पकड़नी पड़ी।

सबसे बढ़कर तो मैं इसलिये खुश था कि मेरी खोज विशेष रूप से मौलिक नहीं थी। मैं तो उसी प्रश्न का उत्तर खोज रहा था जिस पर बहुत सारे मठवासियों, राजाओं, कवियों, दार्शनिकों, विक्षिप्त व्यक्तियों तथा संतों ने विचार किया था। यह वादविवाद जो फेरों के कक्ष में, फतेहपुर सीकरी के अकबर के आँगन में बुद्ध-अनुयायियों की कोठरियों में गुँजा था। प्रश्न बहुत पुराने थे, वाकई में.... आज भी वैसे, जैसे कल थे, ये विचारधारा और समाज की उत्क्रांति के मूल में हैं।

क्या कोई उत्तर है भी? क्या 'उत्तर' पाया जा सकता है? जिस दिन तक मैं परम अराध्य, प्रभावशाली तथा रहस्यमय परम व्यक्तित्व प.पू.श्रीमाताजी निर्मलादेवी से मिला न था-तब तक मैं आशा, निराशा और निंदा..... से भरा हुआ एक व्यक्ति मात्र था।

भाग-२

सहज योग : एक अनुपम खोज़

''**आपकी** चेतना में नई क्रान्ति घटित होनी होगी, अन्यथा समस्त मानवीय उपलब्धियों का कोई अर्थ नहीं है। यह तो ऐसा हुआ कि किसी शादी में बिजली की सजावट की जाये और वहाँ बिजली ही न हो। जब बिजली चालू होगी तभी आप दूल्हा-दुल्हन देख पायेंगे।''

– परम पूज्य श्री माताजी निर्मला देवी

१ - आप व मेरे बीच

औसत बुद्धिजीवी की रुचि रोज़ाना उपयोग में आने वाले शब्दों में होती है। यदि उसका सामना बड़े शब्दों जैसे सृष्टि की उत्क्रांति, ब्रह्माण्ड, मनुष्य, नियति, आत्मसाक्षात्कार, ईश्वर तथा शैतान आदि शब्दों से होता है तो वह बेचैन हो जाता है। उसे लेखक के इन शब्दों के उपयोग करने के साहस पर आश्चर्य होता है। इसके अलावा यदि प.पू.माताजी के अवतार, सहजयोग, सामूहिक चेतना आदि के रहस्य के विषय में लिखा जाए तो अच्छे विचार वाला पाठक भी इस पुस्तक के लेखक को उन नापसन्द किए जाने वाले लेखकों में गिन सकता है जो उन चीज़ों के बारे में लिखते हैं जो वे स्वयं नहीं जानते। यदि हम मान लें कि पाठक निष्पक्षता के नाते लेखक की शैक्षिक परिकल्पना के विषय में विचार करने को तैयार हो जाए कि लेखक जो कह रहा है, वो वह जानता है तो यह उलझन पैदा करने वाला प्रश्न उपस्थित होता है कि वे कौन लोग हैं जो परमात्मा के साम्राज्य की बात सम्भवत: कर सकते हैं तथा जो यह भी जानते हैं कि वे क्या कह रहे हैं? मैं ईश्वर व नियति आदि शब्दों के उपयोग से परहेज नहीं करूंगा क्योंकि ये शक्तिशाली सांकेतिक शब्द मुख्य रूप से इस पुस्तक की विषय वस्तु की व्याख्या करते हैं। जहाँ तक मेरे ज्ञान का सम्बन्ध है, फिलहाल मैं 'केन उपनिषद' की पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ:

''मैं नहीं कह सकता कि मैं ब्रह्म को पूर्ण रूप से जानता हूँ, न ही यह कह सकता कि नहीं जानता हूँ। हममें वह उस ब्रह्म को ठीक से जानता है, जो इन शब्दों के भाव को समझता है : 'न ही मैं जानता हूँ कि मैं नहीं जानता हूँ'।''

यदि आप स्वयं को जिज्ञासु मानते हैं तो आपको परम सत्य प्राप्त होने पर उसके कारणों का पता लगाने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। समझ में नहीं आता मैं अपने अनुभव आपसे किस प्रकार बाँटू। यह पुस्तक इसका एक अच्छा उपकरण नहीं है, परन्तु इसके अलावा आप तक पहुँचने का दूसरा मार्ग मेरे पास नहीं है। मैं आप तक क्यों पहुँचना चाहता हूँ? मुझे लगता है आनन्द तब पूर्ण होता है, जब यह बाँटा जाए। मेरे सभी भाई एवं बहन चाहते हैं कि आप परमात्मा के आनन्द नगर में प्रवेश करें। मैं उनकी तरफ से यह पुस्तक लिख रहा हूँ। साथ ही, दूसरों को दुःख में छोडकर, मेरी अनमोल शांत आत्मा आसपास के अंधकार से घिरी होती है इसलिए मैं कभी भी 'व्यक्तिगत आत्मसाक्षात्कार नमूने' की ओर बेहद आकर्षित नहीं हुआ। अतः यह आपसे संपर्क करने का एक प्रयास है। मैं जानता हूँ कि मैं प.पू.श्री माताजी एवं सहजयोग के बारे में लिखने के योग्य नहीं हूँ, फिर भी इससे यदि आपको कुछ लाभ हो तो मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें।

मुझे मालूम है मानसिक ढांचे में सत्यता की चर्चा ही व्यर्थ है, क्योंकि वास्तविकता मानसिकता से आगे निकल जाती है, आखिरकार वास्तविकता ही, मानसिक शक्तियों सहित जो कुछ हममें स्थित है-उसका स्रोत है। सागर में बूंद समा सकती है,किन्तु बूंद में सागर नहीं समा सकता है। यह समुद्र ही दैवी प्रेम का सागर है, तो शब्द किनारों पर रह जाते हैं। अब मुझे समझ में आया है कि महान संत क्यों कहते हैं कि आत्म साक्षात्कार के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता है। पहले मैं, समुद्र से दूर, एक बूंद के समान था किन्तु अब मुझे मालूम हुआ है कि बूंद का सागर में घुलने का आनन्द क्या होता है। शास्त्रार्थ की बुद्धि, विश्लेषण करने वाला मस्तिष्क उस पवित्र प्रेम को अपनी बुद्धि के ढांचे में कैद नहीं कर सकता है, जो सब दूर फैली एकात्मता को प्राणियों की विविधताओं के रूप में संजो कर रखता है। इस पुस्तक में लिखी हुई कोई भी

चीज़ इस प्रकार की नहीं है जिसे शब्दों में लिखा जा सके, अक्षरों में समाया जा सके, न ही ध्वनि व विचारों में व्यक्त किया जा सके।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने बड़े संकोच से कलम उठाई है। इसे एक मुख्य कारण से लिखा है : इस पर विश्वास करने के लिए नहीं अपितु इसलिए कि स्वयं अनुभव को समझा जा सके। यह कार्य अनुभव करने के लिए एक विनम्र निमन्त्रण है। स्वयं को जानने की तीव्र इच्छा के बावजूद, जो गहरी चिन्ता मुझे रहती थी, वह अपने निजी उत्थान की नहीं, अपितु तमाम उत्साही एवं सच्चे साधकों के उद्धार की थी। अब जो नये युग का उदय हो रहा है, वह हमारे अस्तित्व के अर्थ को सामूहिक रूप से समझने का है। यह लेखन उस महान समझ के प्रति प्रथम विनम्र श्रद्धांजलि है। जान लीजिए कि समझ की प्रक्रिया अंधविश्वास एवं कर्मकाण्ड बिल्कुल भी नहीं है अपितु ये उसकी प्राप्ति में बाधा हैं। आत्मज्ञान के पश्चात् व्यक्ति समझ जाता है कि विश्वास और अविश्वास, सत्य से बचने के लिए उसके अहंकार की तड़पन मात्र हैं।

सर्वप्रथम, जो सत्य है-वह अपने मूल स्वभाव से सत्य ही रहेगा, चाहे हम इसे मानें या नहीं। सत्य जैसा है वैसा है; पूर्ण रूप से स्व-पोषित तथा संपूर्ण: यदि किसी देश में किसी स्थान पर एक नदी तथा एक वृक्ष है, तो यह है - भले मैंने यह देखा हो या न हो। वास्तव में जो अस्तित्व में है वह सत्य है; यह अस्तित्व का प्रकाश है। परंतु आजकल यह कहा जा रहा है कि यदि यह मैंने देखा नहीं तो यह सत्य है ही नहीं! अत: यह विद्यमान नहीं है। अगली बात जो नहीं होनी चाहिये वह यह है- ''यदि यह मेरे लिये सत्य नहीं है तो यह सत्य है ही नहीं।'' यह भयंकर भूल आजकल के सकारात्मक-मुखी दिनों में की जा रही है। यह तर्क की भूल है, ''जिसका मुझे बोध होता है वही सत्य है और जिसका बोध मुझे नहीं हुआ वह सत्य नहीं है।'' यह धारणा आजकल के बुद्धिजीवियों के चश्में से निकलने वाली भ्रांति के सिवाय कुछ नहीं है। उचित यह होगा कि अव्यय 'मेरे लिये' वाक्य के अन्त में जोड़ दिया जाये। मैं समझता हूँ ईमानदार एवं सुलझे हुये बुद्धिजीवी मुझसे सहमत होंगे।

'मेरे लिये' अव्यय पूरे वाक्य को बदल देता है और विवेकपूर्ण बुद्धि को

इसके संज्ञानात्मक संयोजन को आँकने का अवसर प्रदान करता है।

विवेकपूर्ण बुद्धि कहती है, ''ठीक है, मैंने नदी तथा वृक्ष को नहीं देखा लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे है ही नहीं, इसका केवल यह अर्थ है कि मुझे नहीं मालूम कि वे विद्यमान हैं अथवा नहीं। इसी निष्कर्ष पर इमेनुअल कान्त अपनी पुस्तक 'शुद्ध तर्क का आलोचक' (Critique of pure reason) में पहुँचे थे। ऐसे तर्क का आग्रह सुकरात, बुद्ध व लाओ-त्से ने भी किया है कि, ''तुम यह जानो कि तुम क्या जानते हो, तुम यह भी जानो कि तुम क्या नहीं जानते हो। तुम यह भी जानो कि तुम वही जानते हो जो तुम्हे मालुम है तथा तुम नहीं जानते कि क्या तुम्हे मालुम नहीं है।'' इसी तर्क ने मुझे सन्तुष्ट किया है तथा मैं सोचता हूँ कि पाठक भी इसी के सहारे आगे बढ़ सकते हैं व मुझसे सहमत होंगे। आखिरकार यही परम्परात्मक बुद्धिमता है। इस दृष्टिकोण का तर्क तथा इसका सीधा अर्थ आने वाले वाक्य में यूँ प्रकट है : सच मानिये मैं आपको जीवन की नदी के जल तथा जीवन के वृक्ष, जो पावन कुण्डलिनी का मार्ग है, के बारे में बताना चाहता हूँ। परन्तु संभवतः आप उस आन्तरिक स्थान पर नहीं पहुँचे हैं जहाँ वह स्थित है, इसलिए आप मुझ पर विश्वास नहीं करेंगे, करना भी नहीं चाहिये। फिर भी, आपको मुझे, मेरे विचार को निरस्त नहीं करना चाहिये, आप उस गुप्त स्थान तक नहीं पहुँचे हैं, आपने अपनी आत्मा को अन्दर खोजा नहीं है और यदि खोज़ा है तो क्या कह सकते हैं कि आप अपनी मंज़िल तक पहुँच पाए हैं? क्या आप विश्वास के साथ कह सकते हैं कि जहाँ तक आप पहुँचे हैं वह स्थान वही है जिसे पुराणों व धर्म ग्रन्थों ने कहा है?

इस उद्देश्य के लिये यह पुस्तक आपकी सहायता करेगी। यह बता सकती है कि इसकी विषय-वस्तु आपके लिये उपयोगी है। आप इस प्रान्त की ओर आ सकते हैं। यहाँ आप पूर्व वर्णित नदी और वृक्ष देख सकते हैं, तभी आप इस पर विश्वास कर पाएंगे। मेरा संपूर्ण प्रयत्न है कि मैं इसकी घोषणा करुं तथा आपको जगाने, उठाने एवं देवत्व प्रकटीकरण के मार्ग पर चलने के लिये निमंत्रण दूँ। साथ ही उचित दिशा भी बताऊँ। यदि आप अपने

लिए मेरी बात पर ध्यान दे सकें तो मैं वादा करता हूँ कि परमात्मा अवश्य ही आपके लिए कुछ करेगा, जैसा मुझ जैसे अयोग्य आदमी के लिये उसने किया है। किन्तु पहले स्वयं अपनी मदद करें, तभी परमात्मा आपकी मदद करेगा। कृपया मुझ पर विश्वास करें। सिर्फ आत्मसाक्षात्कार का प्रकटीकरण ही आपको पुनर्जन्म, सच्चा बाप्तिस्म (Baptism), तथा ज्ञान प्रदान करेगा। शाब्दिक दुनिया का नियम है कि जब कोई प्रस्तावना लिखी जाती है, तो स्वभावत: यह अवरोध तथा विवाद का विषय बन जाती है। किंतु यह पाठक पर ही छोड़ देना चाहिए कि वह यह मूल्यांकन करें कि यह दर्शनशास्त्र या धार्मिक घोषणा की कोई रचना नहीं है परन्तु सत्य के मार्ग पर चलने का एक दिशासूचक बोर्ड है। सभी सन्तों ने कहा है कि अधिकांश लोगों में छुपा एक जादुई बाग होता है, जिसमें ईश्वर प्रेम के फूल खिलते हैं। इस बाग में सर्वत्र सौंदर्य, ताज़गी, आनन्द, अबोधिता व प्रेम है। यहाँ नदी और पेड़ है। मैं विनम्रता से घोषित करता हूँ कि मैं उस स्थान तक पहुँच चुका हूँ। यह स्वर्ग जिसे हम अपने से बहुत दूर मानते आये हैं, वास्तव में हमारे बहुत नजदीक है। जब तक कि हममें उसे पाने की इच्छा है, यह कहीं गुम नहीं हो सकता। जिज्ञासा ही महत्वपूर्ण बिन्दु है। यह पुस्तक सत्य के सभी जिज्ञासु लोगों को समर्पित है। ईश्वर हम सबको सत्य की खोज का आशीष प्रदान करे तथा दैवी प्रेम हमारा मार्गदर्शन करे! यात्रा से हुई थकान भूल जाओ! इस विश्व में बलवती आशा और पूर्ण आनन्द का प्रादुर्भाव हो रहा है।

फिर भी यदि आपको कोई फर्क नहीं पड़ता हो तो मैं श्रीमाताजी को उद्धृत करूंगा : '' मैं आपके अन्दर भूख कैसे उत्पन्न करूं? मैंने आपके लिये स्वादिष्ट भोजन बना दिया है, परन्तु यदि आपको भूख ही नहीं होगी, तो आप यह नहीं खाएंगे और बतंगड़ बनाएंगे। जिन्हें भूख लगी है वे भोजन करना चाहेंगे।''

कृपया यह दावा न करें कि आपको इस बात से कोई फर्क नहीं पडता।

कवि वडेलेचर कहते हैं कि आप अपने अस्तित्व से सम्बन्धित मामलों से स्वयं को अछूता मानने का दावा न करें। मैं मानता हूँ कि मुक्ति का सच्चा मार्ग प्रत्येक मानव से सम्बन्धित है। वास्तव में, मैं यहाँ 'जल' और 'जीवन

वृक्ष' की चर्चा करूंगा जिसका सम्बन्ध प्रत्येक मनुष्य से है क्योंकि इसी वृक्ष की जड़ सभी में हैं। यह प्रत्येक व्यक्ति की आध्यात्मिक एवं मनोदैहिक (Psychosomatic) प्रक्रिया का मूल है। यह वक्तव्य मैं केवल वर्षों के लम्बे दीक्षामय लेखन-संकलन के कारण नहीं दे रहा हूँ अपितु व्यवहारिक एवं आन्तरिक अनुभव के आधार पर दे रहा हूँ जो मुझे तुरन्त प्राप्त हुआ है। इस अनुभव को सरल भाषा में कह सकते हैं- वर्तमान का अनुभव।

चलिए, भूतकाल एवं भविष्यकाल के बीच एक क्षैतिज रेखा की कल्पना करते हैं। भूतकाल मन के प्रति अहं वाले भाग में संग्रहित होता है तथा भविष्यकाल मन के अहं वाले भाग के बारे में चिंतित रहता है। इस रेखा पर एक ऐसा स्थान है जो कभी पकड़ में नहीं आता। इस स्थान को, 'अब' कह सकते हैं। यह 'अब' इस रेखा को भूतकाल एवं भविष्यकाल में विभाजित करता है। वर्तमान वह अदृश्य बिन्दु है जिसकी गणना समय में नहीं की जा सकती। जैसे भूतकाल (२००५) तथा भविष्यकाल (२०१५, २०२०)। फिर भी यह चिढ़ाने वाला विरोधाभास ही है कि वर्तमान ही सत्य है। भूतकाल अब है नहीं तथा भविष्य अभी आया नहीं है।

यदि हमारा ध्यान इस अदृश्य बिन्दु 'अब' में प्रवेश कर जाए तो यह भूतकाल एवं भविष्यकाल को सोखते हुए इस अदृश्य बिन्दु को बढ़ाता है। जिस प्रकार हवा गुब्बारे में प्रवेश करने पर इसे फुला कर बढ़ा देती है। चूंकि, प्रतिअहंकार (भूतकाल) और अहंकार (भविष्यकाल) नहीं रहे; विस्तृत वर्तमान की मात्रा का भरपूर आनन्द प्राप्त होता है। क्षैतिज रेखा का अदृश्य बिन्दु में प्रवेश, रेखा गणित को उस आयाम में बदलने जैसा है, जो बहु-आयाम के पार अपने आप खुलता है। यही परमात्मा का साम्राज्य है, जादुई बाग है। जो बहुत नजदीक होने पर भी बहुत दूर है। आखिर इसमें प्रवेश कैसे किया जाए?

तथाकथित रहस्यवादी लेखकों का मानना है कि ईश्वर का साम्राज्य हमारे अन्दर है, उसका द्वार हमारे अन्दर है, उसकी चाबी हमारे पास है, उस तक पहुँचने का मार्ग भी हमारे अन्दर है.... परन्तु पहले इस मार्ग को शुद्ध तो करना होगा।

अ-साक्षात्कार से पहले
का मानवी मस्तिष्क

ब-साक्षात्कार के बाद
मानवी मस्तिष्क

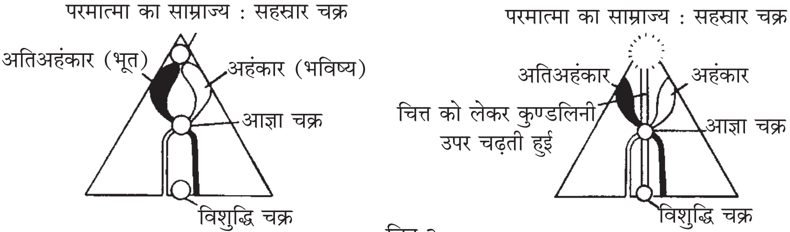

चित्र २

चित्र नं. २ - हमारे आत्म साक्षात्कार का दृश्य दिखाया गया है। आईये इसकी चर्चा करें।

मस्तिष्क का शीर्षबिन्दु जागृत देवी का स्थान है। इसे सहस्रार चक्र कहते हैं। कुण्डलिनी का इस चक्र में विलय ही परमात्मा का साम्राज्य है। श्री आदि शंकराचार्य की 'सौंदर्य लहरी' में इस चक्र को 'श्रीचक्र महामण्डल' के रूप में वर्णित किया गया है। बुद्ध ने इस चक्र को 'सहस्त्रदल कमल' कहा। इस साम्राज्य का द्वार आज्ञा चक्र है। इसे तीसरी आँख भी कहा गया है। यह कुण्डलिनी मार्ग में दोनो आँखों की भौं के बीच, थोडा उपर कपाल में, स्थित है। यह प्रभु ईसा मसीह का निवास स्थान है, जिन्होंने बुद्धि पर विजय प्राप्त की तथा बुद्ध बने। (आगे दिखाया गया चित्र-३ देखिये)।

इस द्वार की चाबी है - एक बालक की भाँति पूर्ण हृदय से समर्पण। यह गुण हृदय चक्र से प्राप्त होता है। इसके स्वामी भगवान शिव हैं। इसके बारे में प्रभु ईसा-मसीह ने कहा है, '' मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि ईश्वर के साम्राज्य में केवल वही प्रवेश करेगा जो एक बालक के समान होगा।''

यह मार्ग रीढ़ की हड्डी में सुषुम्ना नाड़ी है, जिसे 'जीवन वृक्ष' कहा गया है। यह मार्ग कुण्डलिनी शक्ति का है जो मनुष्य में अवशिष्ट (Residual) दैवी ऊर्जा के रूप में रहती है। इस सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी में अन्तराल (Gap) है। सुषुम्ना नाड़ी के बाहर इस अन्तराल का प्रकटीकरण सोलर प्लेक्सस (नाभी चक्र) और परानुकंपी तंत्रिका तंत्र (parasympathetic nervous

system) की वेगस नाड़ी (vagous nerve) के अंतराल के रूप में प्रकट होता है। इसके अलावा कुण्डलिनी का मार्ग व इस पर स्थित चक्र (सुषुम्ना नाड़ी में मन एवं आत्मा से सम्बन्धित ऊर्जा केन्द्र) प्रायः पूर्व कर्मों के भार, मानसिक तकलीफ, भूत-बाधा की पकड़, स्नायु बाधा आदि कारणों से दबे या बन्द रहते हैं। इसलिए इस मार्ग को सबसे पहले शुद्ध करना होता है। किन्तु यह कार्य साधक के द्वारा स्वयं नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसका चित्त उसकी अपनी सुषुम्ना पर पहुँच सकने में समर्थ नहीं होता है। यहाँ हमें एक सच्चे गुरु की भूमिका का महत्व समझ आता है। सच्चा गुरु जीवन के बीज को दैवी ऊर्जा की चैतन्य लहरियों से सींचता है जो उसके अस्तित्व से किरणों (ऊर्जा) के रूप में बहती हैं। जब दैवी चैतन्य लहरियाँ साधक के अस्तित्व में प्रवेश करती हैं, तब सुषुम्ना के बीच स्थित अन्तराल को भर देती हैं: यह कुण्डलिनी के उत्थान में पुल का कार्य करता है। तब इस ''जीवन के बीज़'' का ''ज़ीवन के वृक्ष'' के रूप में प्रादुर्भाव होता है। गुरु के चैतन्य के द्वारा स्वेच्छा से कुण्डलिनी तब जागृत होती है, जब वह महसूस करती है कि वह उच्च विकसित आत्मसाक्षात्कारी सत्ता द्वारा आमन्त्रित की जा रही है। तब कुण्डलिनी मध्य नाड़ी में स्थित छः चक्रों को भेदती हुई, ऊपर उठती है।

जीवन-जल वास्तव में आदि दैवी उर्जा (आदिशक्ति) से निकलने वाली ठंडी चैतन्य लहरियों की गंगा है। इसे विभिन्न धर्म ग्रन्थों ने भिन्न-भिन्न नाम से उल्लेखित किया है। जैसे पवित्र आत्मा (Holy Ghost) की आँधी, शिव की जटा से नीचे गिरती हुई पवित्र गंगा नदी, यही श्री आदि शंकराचार्य का चैतन्य भी है। आत्मसाक्षात्कार के समय साधक वास्तव में चैतन्य लहरियों को ठंडी हवा के रूप में, या बहाव के अनुसार, चैतन्य की ठंडी दरिया के रूप में अंगुलियों के अग्र भाग में, हाथों में, तत्पश्चात् संपूर्ण शरीर में बहता महसूस करता है। ईश्वर साक्षात्कार के समय जीवन-जल, अमृत के समान सहस्रार से एक अवर्णीय आनन्द की फुहार जैसा मध्य तथा स्वचालित तंत्रिका तंत्र (central and autonomous nervous system) में बहता हुआ प्रतीत होता है।

२-सहजयोग से भेंट

'' तुम सत्य को जान लोगे और
सत्य तुम्हे मुक्त कर देगा।''
(जॉन ८.३२)

''जब आवरण हट जाते हैं, तब आत्म-ज्ञान रह जाता है,
जो कि ईश्वर का ज्ञान है।
स्वयं को जानना ही, स्व का होना है, क्योंकि स्व (Self) दो नहीं होते।
अत: जानना ही आत्मस्वरूप में स्थित होना है। चेतना ही अस्तित्व है।''
(श्री रमन महर्षि)

जब न्यूटन, रदरफोर्ड अथवा आइन्स्टीन ने वैज्ञानिक सोच में प्रसिद्ध क्रांति लाने वाले उन नियमों को खोजा, तो वे केवल अब तक अज्ञात ऊर्जा के घटना रहस्य (Phenomenology) शास्त्र के असंख्य पहलुओं में कुछ पहलुओं का ही अनावरण कर रहे थे। इसके अलावा आइन्स्टीन, हेन्सेनबर्ग एवं नील्स बोर का धन्यवाद है, जिनकी कृपा से समकालीन वैज्ञानिक जानते हैं कि- प्रेक्षक अपने प्रेक्षण कर्म द्वारा प्रेक्षण की वस्तु के साथ पारस्परिक क्रिया कर रहा है : समय एवं स्थान के भीतर रहते हुए, जिसका प्रेक्षक स्वयं एक भाग है अथवा जो स्थान-समय, भौतिक जगह के द्वारा आच्छादित है, जिसका वह प्रक्षेपण कर रहा है। प्रेक्षक के दृष्टिकोण के हिसाब से इसी घटना तथ्य को दो विभिन्न, विपरीत किंतु उन मान्य प्रयोगों द्वारा पहचाना जा सकता है जो पारस्परिक क्रियाओं के दो भिन्न क्रम उत्पन्न करते हैं। यह इसलिए है क्योंकि भौतिक प्रयोग केवल घटना के विशिष्ट पहलुओं को दर्शाते हैं, सत्य की पूर्णता को नहीं, तथा पहलुओं का चुनाव वैज्ञानिक की विशिष्ट पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है । उदाहरण के लिये, भौतिक जगत की एक घटना तथ्य को न्यूटन के भौतिक शास्त्र व आइन्स्टीन के सापेक्षता के सिद्धान्त ने, तथ्यात्मक रूप से भिन्न-भिन्न रूप में समझाया है। यदि ऐसा है, तो वैज्ञानिक ज्ञान सृष्टि की प्रकृति के रहस्य पर अन्तिम सत्य प्रकट नहीं कर सकता है। यह वह ढंग भी बताता है

जिस ढंग से मनुष्य भूमंडलीय ब्रह्माण्डीय-परिस्थितिकी के साथ सम्बन्धित है, उसका हिस्सा होते हुए:ज्ञान, खोज एवं परिणाम स्वरूप उत्पन्न पारस्परिक क्रियाएं मनुष्य एवं ब्रह्माण्ड के बीच सम्बन्ध को लगातार बदलती रहती हैं।

वास्तविकता के अज्ञात नियम उन घटना तथ्यों को अभिव्यक्त करते हैं जो अस्तित्व में तो हैं पर वे अभी तक मनुष्य की चेतना में प्रविष्ट नहीं हुये हैं। अत: वे गर्भित ज्ञान हैं। इन नियमों (अज्ञात) को समझ कर, इस गर्भित ज्ञान को यथार्थ में लाने में ही मानवीय चेतना की उत्क्रांति है। शोध के उपरांत निकले परिणाम, बदलाव के नये साधनों का पता लगाने के लिए मनुष्य, वह स्वयं तथा विश्व के बीच, एक नए सम्बन्ध को विकसित करते हैं। मनुष्य विकास की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया में है क्योंकि वह ज्ञान और खोज का प्रयत्न करता रहता है। जब खोजे गये नये नियम भौतिक जगत से जुड जाते हैं तो मनुष्य अन्तत: अनुप्रयुक्त ज्ञान अर्थात गुरुत्वाकर्षण, विद्युत, परमाणु उर्जा आदि, के माध्यम से अपने लाभ के लिए उन नियमों का प्रयोग भौतिक जगत को बदलने के लिये करता है। जब नियम मनो-आत्मिक जगत के हो जाते हैं तो ज्ञान स्वयं एक अंदरूनी बदलाव उत्पन्न करता है। हमारे बोध की गुणवत्ता बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यही वास्तविकता की गुणवत्ता को यथार्थ में लाती है; यह एक जादू है, रूपांतरण है तथा सृजन है।

ईश्वर के प्रेम की शक्ति इतनी अद्‌भुत है कि हम अपने चित्त को मात्र दैवी प्रेम की ओर मोड़कर शुद्ध कर सकते हैं। वास्तव में यह वह आन्तरिक ज्ञान है जिसे श्री कृष्ण ने गीता में कहा है:

''सिर्फ एक सूर्य से
यह पूरा विश्व प्रकाशित होता है,
उसी तरह स्वयं को (आत्मा) जानने वाले से
संपूर्ण क्षेत्र प्रकाशित होता है।''

- (भगवत् गीता ३३)

परम ज्ञान वास्तव में जीवंत सत्य में प्रवेश है, उस सत्य में जो जीवंत प्रकाश है, जीवंत आनन्द है। यही वह स्थान है जहाँ हमारे प्रभु ईसा मसीह

हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

परम ज्ञान का अर्थ है परम रूपांतरण: ज्ञान-मीमांसा (Epistemology) का यह रचनात्मक आयाम मेरी गुरु श्रीमाताजी की खोज, सहजयोग में आज एक शक्तिशाली अभिव्यक्ति पा रहा है।

''अनन्त को जानने से हम अनन्त हो जाते हैं।'' हममें से बहुत लोग प्राचीन ऋषि-मुनियों के इस संदेश को जानते एवं मानते हैं। किन्तु मुझे वह अनुभव कैसे प्राप्त हो? क्या इसमें एक क्षण लगेगा अथवा हजारों जन्म? मेरे पड़ोसी का क्या होगा? ...इन प्रकार के प्रश्नों का उत्तर केवल प्रत्यक्ष अनुभव से ही मिल सकता है, जुबानी करामात से नहीं। यदि इनमें कोई सत्यता है तो सत्य को स्वयं प्रकट होने दें। यदि परिवर्तन संभव है, तो होने दें।

अगस्त १९७५ के शुरुआती दिनों की बात है। हवाईजहाज ने फिलाडेल्फिया अन्तर्राष्टीय हवाई अड्डे से उड़ान भरी है। कुछ ही घंटो के बाद मैं हीथ्रो हवाई अड्डे पर उतर जाऊँगा। सोने का बहुत मन हो रहा है, अत: मैं टालकेन की रचना 'दि टू टॉवर्स' पढ़ रहा हूँ। मुझे मित्रों से बिछुडने का अफसोस है, परन्तु मेरा सारा ध्यान प.पू.श्रीमाताजी से भेंट करने पर है।

मैं विक्टोरिया स्टेशन से ओक्सटेंड (जहाँ परम पूज्य श्रीमाताजी रहती हैं) तक की अपनी पहली यात्रा को लंबे समय तक याद रखूँगा। मैं छोटी ब्रिटिश ट्रेन के द्वितीय श्रेणी के कोच में बैठकर यात्रा कर रहा हूँ, आधा डरा हुआ हूँ व आधा प्रसन्न हूँ। मैं विचार कर रहा हूँ कि ग्रेग, या तो तुम अमृत का प्याला प्राप्त करने जा रहे हो, या पुन: उसी भ्रम के भंवर में फंस रहे हो। फोन पर उनसे बात करके बड़ा अच्छा लगा था। ट्रेन आक्सटेन्ड पहुँची, मेरे हृदय की धड़कन तेज़ होती अनुभव हुई, मैं उत्सुकता से अधिक उत्तेजित महसूस करता हूँ। स्टेशन पर जो व्यक्ति मेरी प्रतीक्षा कर रहा था वह भला, भद्र लग रहा था। सुनसान, शान्त, ग्रामीण मार्ग द्वारा प.पू.श्रीमाताजी के निवास पर पहुँचा। मैनें घंटी बजाई, द्वार खुला। प.पू.श्रीमाताजी हॉल में पधारीं; ''मेडम मेरा अभिनंदन''... कह कर मैनें फूलों द्वारा सम्मान प्रकट किया। विक्टोरिया स्टेशन पर मैंने फूल खरीद लिए थे।

जब मैं प्रथम बार प.पू.श्रीमाताजी से मिला तो संवेदनशील सा हो गया। कुछ क्षणों में ही लगा मैं चिर परिचित हूँ, मानो मैं अपने घर लौटा हूँ अथवा जैसे भटका हुआ बच्चा वापिस लौटा है। मेरा स्वागत हुआ है-अपनेपन, सादगी व प्यार से। इन भावनाओं का व्यक्त करना मुश्किल है। मैं प.पू.श्रीमाताजी को नहीं जानता हूँ, फिर भी लगा उन्हें जानता हूँ। काफी लम्बे समय पश्चात, प्रथम बार मैं पूर्ण तनावमुक्त महसूस कर रहा हूँ तथा मैंने उनसे पूर्ण विश्वास व सादगी से बात करना आरंभ किया।

वह मुझसे मेरे परिवार व स्वास्थ्य के विषय में पूछ रही हैं - मैं छोटी कमीज क्यों पहन कर आया इससे तो सर्दी लग जाएगी! मैंने उत्तर दिया, मैं कुछ खोज रहा हूँ-शायद सत्य, ऐसा मैं सोचता हूँ, किन्तु मुझे अब तक नहीं मिला, मैं खोजते हुये थक गया हूँ। वे मुस्कराईं, मुस्कुराते हुए बोलीं, ''मुझे तुम्हारी परीक्षा लेनी होगी।'' मैं खिल खिलाकर बोला, ''अवश्य परीक्षा लीजिए।'' ''यात्रा कैसी थी?'' मैंने कहा ठीक रही। हम चाय का प्याला लेते हैं। उनकी आवाज इतनी मीठी, इतनी विनम्र-मैं महसूस कर सकता हूँ, वह पूर्ण ईमानदार हैं। मैं स्नेहासक्त मातृप्रेम में सराबोर हो गया तथा उन्हें बहुत पसन्द करने लगा हूँ। हर चीज़ बहुत सरल है। लगता है सब कुछ ठीक हो जाएगा। घर शांत है, खिड़की से धूप अन्दर प्रवेश कर रही है। वह कहती हैं वे मुझे जानती हैं। मैं जानता हूँ कि वे मुझे जानती हैं: यह आश्चर्यजनक व सुन्दर है। मुझे अपने आप में महसूस होता है: कुछ पुनः अंकुरित होता हुआ: भलाई तथा आत्म गौरव, जो मैं भुला चुका था। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझमें शांति आ गई है। माताजी आप कौन हैं? उन्होंने सफेद साड़ी पहनी हुई है।

हमने घंटों बातें नहीं की। कुछ समय पश्चात मैं चेतना की नई अवस्था में प्रवेश कर गया जिसे मेरी बुद्धि ने स्वीकार कर लिया। मैंने जाना कि यह छोटा सा मस्तिष्क सत्य को नहीं समझ सकता है, किन्तु सत्य इसे जरूर समझ सकता है। यह मोटे तौर पर इस प्रकार हुआ।

प.पू.श्रीमाताजी ने मुझसे अपने सामने बैठाकर हाथ उनकी ओर फैलाने को कहा। मुझे महसूस हुआ कि वह गहरे ध्यान में हैं तथा वह अपने हाथ व बाहों

से कुछ क्रियाएं कर रही हैं। इन क्रियायों से ऐसा लगा कि प.पू. माताजी मेरी नाभि से सिर के ऊपर तक कुछ ऊपर उठाने का प्रयत्न कर रही हैं, किन्तु मेरी आँखों से मुझे कुछ भी नहीं दिखा। उनके हाव-भाव से ऐसा लगा कि उनके हाथों में कुछ अदृश्य हथियार हैं। इनसे मुझे कुछ - कुछ पारंपरिक मूर्तियों के विशिष्ट मुद्रा जैसे लगे। पूरे समय मैं उन्हें घूरता रहा। वे पवित्र सौंदर्य की, दया व मानवता की मूर्ति हैं तथा आंतरिक गौरव की अवर्णनीय चमक उनके चेहरे पर है। प्रक्रिया के दौरान थोड़ी देर बाद मैंने ठंडी हवा अपने हाथों में बहती हुई महसूस की जो चेतना की नदी के समान थी। यह हवा मेरी खुली हथेली में प्रवेश करती गई, मेरे अविश्वास के बावजूद। मुझे उस समय,पवित्र आत्मा को दर्शाने वाला रोमन शब्द 'न्यूमा'-अर्थ 'श्वास' नहीं याद था। न ही 'चैतन्य लहरी', जीवन जल या गंगा नदी के बारे में मालूम था। मुझे नहीं समझ आ रहा था, कि यह क्या हो रहा है, किन्तु इतना मालूम पड़ रहा था कि कुछ हो रहा है। समझ भी आ रहा है यह दिलचस्प है। मुझे अपनी रीढ़ की हड्डी के किनारे शरीर के अन्दर अलग–अलग स्थानों पर विचित्र अनुभूति हो रही है, ऐसा लग रहा है जैसे मेरे शरीर के कुछ अंग, जो अब तक नहीं मालूम थे, अस्तित्व में आ रहे हैं। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि प.पू.श्रीमाताजी जान रही हैं कि अन्दर क्या हो रहा है : वह कहती हैं, ''यह 'हृदय चक्र' है।'' और मुझे वाकई में, अपनी छाती में कुछ महसूस होता है। प.पू.श्रीमाताजी अपने हाथ को मेरे हृदय की पीठ की तरफ निर्देशित करती हैं - मेरे हृदय में कुछ हलका दर्द दूर हो जाता है, वह गर्दन की जड़ में प्रकट होता है: वह पुनः मुस्कुराते हुए कहती हैं, ''यह 'विशुद्धि चक्र' है।'' फिर वे एक विशिष्ट उंगली रीढ़ पर गर्दन पर रखती हैं-मेरी आँखों से चीख निकलती है व मेरे माथे पर जलन सी होती है। यहाँ वह लाल पाउडर का 'टीका' लगाती हैं जिसे भारतीय महिलाएं अपने माथे पर, जिस स्थान पर 'तीसरा नेत्र' होता है, सजाती हैं। वह समझाती हैं कि यह टीका चैतन्य-पूर्ण है तथा यह नकारात्मक चैतन्य को दूर करेगा, जिन्होंने तुम्हारे 'आज्ञा' को पकड़ रखा है। वह कहती हैं, ''इस आज्ञा चक्र पर जीजस क्राइस्ट का स्मरण करो जिन्होंने मानव को बन्धनों से मुक्त करने के लिए अपना खून दिया। धीरे-धीरे मेरे माथे का तनाव कम हो जाता है व मेरा पूरा सिर हलकेपन की चेतना से भर जाता

है। यह बहुत मृदु व आनन्ददायी अनुभूति है। जैसे ही मेरे सिर का तनाव दूर हो जाता है ऐसा लगता है सिर में शून्यता आ गई है, जो मुझे पूर्ण शांति प्रदान करती है। मुझे अनुभव होता है कि मैं पूर्णतया शान्त किन्तु जागरूक हूँ। मेरी आँखे थोड़ी भारी हो जाती है, जिन्हें मैं बंद कर लेता हूँ। किन्तु शीघ्र ही मेरी आँखों से तनाव दूर हो जाता है तथा मैं नवीन प्रकार की दृष्टि का अनुभव करता हूँ। फिर मैं आँखें खोलता हूँ तथा प.पू.श्रीमाताजी को देखता हूँ तथा आश्चर्य व आनन्द से भर जाता हूँ तथा लगता है बालक के रूप में परी-लोक में प्रवेश कर गया हूँ। कभी-कभी मेरी दृष्टि में प.पू.श्रीमाताजी की आकृति के आसपास हलके प्रकाश में स्वर्ण-कण तैरते दिखाई देते हैं। मैं स्पष्टता से देख रहा हूँ-नहीं जानता कैसे कहूँ जब वह बात करती हैं, बहुत से व्यक्तित्व उनके व्यक्तित्व से प्रकट होते हैं। वह महिला 'माता-मेरी', प्यार व ममता से भरी हुई। मानो वे मेडोना हों, जो करूणा एवं प्रेम से ओत-प्रोत हो। उनकी आँखें ज्ञान की इतनी गहराई, इतने जबरदस्त प्रेम को अभिव्यक्त करतीं हैं, कि मुझे समझ नहीं आता कि इस अमृत पान को कैसे करूँ, कैसे खुद को पूरी तरह इसमें डूबा लूँ। मुझे उनमें एक युवा महिला भी दिखाई देती है जो बहुत प्यारी है, इतनी अराध्य जिसे कोई नाम न दिया जा सके, जो एक छोटी बच्ची की तरह हँसती है। (वे अपनी आँखों से भी हँसती हैं)। किंतु उनकी हँसी 'शक्ति-कंपन' की गुंजन की तरह है। कभी वे उस युवती के समान दिखती हैं जिसके चेहरे पर दुःख के भाव हैं, जो मानो अनन्त पवित्रता के अवतार के चेहरे पर, किसी तुच्छ प्राणी को देखने पर प्रकट होते हों।

प.पू.श्रीमाताजी मृदु व प्यारी भाषा में समझा रही हैं, ''तुम्हारी कुण्डलिनी तुम्हारी अपनी माँ है तथा वह तुम्हारे पिछले जन्मों से तुम्हारे साथ है। यहाँ तक कि जब कुण्डलिनी सक्रिय नहीं रहती है तब भी उसे तुम्हारे पिछले कर्मों की जानकारी रहती है। वह तुम्हारे अच्छे व बुरे कर्मों की गवाह है।'' मुझे डर लगा। वह विषादग्रस्त होकर कहती हैं, ''तुमने गलतियाँ की हैं, चक्र खराब हो गये हैं, जिन्हें ठीक होने में समय लगेगा।'' वह महसूस करती हैं कि मैं अत्याधिक चिंतित व उत्सुक हूँ, वह तत्काल कहती हैं, ''तुम चिंता

मत करो, सब ठीक हो जाएगा।'' इस कथन का इतना अधिक प्रभाव हुआ कि, मातृ प्रेम से मेरा भय दूर हो गया। मेरी आश्चर्यचकित आँखों में पूरा कमरा स्वर्णिम गतिमान प्रकाश से भर गया; मैं आनंददायक ऊर्जा में स्नान करता महसूस कर रहा हूँ। प.पू.श्रीमाताजी कह रही हैं, ''कुण्डलिनी जाग्रत हो गई है। परानुकंपी स्नायुतंत्र सक्रिय हो रहा है। तुम्हें कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे दूसरे जन्म की प्रक्रिया सहज व स्वाभाविक है।'' मैं आनन्दित हूँ कि मुझे मानसिक रूप से कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ रहा है, क्योंकि यदि मेरा मस्तिष्क सिर्फ आराम करे, साक्षी स्वरूप रहे तो मैं अपने 'स्व-सलाह' (Suggestion - Auto suggestion) के खतरे से बच जाता हूँ। दूसरी ओर मैं यह देखकर चकित हूँ कि जो कुछ हो रहा है वह मेरे नियंत्रण में नहीं है। मैं सम्मोहन (Hypnosis) में नहीं हूँ, क्योंकि मेरी बुद्धि तर्क कर सकती है व कर रही है, 'यह क्या है, क्या यह वाकई में वही है? मेरे सामने यह व्यक्ति कौन है? जो अज्ञान उर्जा का उत्प्रेरक है तथा जिसके माध्यम से मेरे शरीर में ऊर्जा, चेतना की लहरों के रूप में प्रवेश कर रही है। मेरे कर्मों का क्या हुआ? क्या उन्होंने उन्हें समाप्त कर दिया है? क्या यह आनन्द समाप्त हो जाएगा? अचानक मुझे महसूस हुआ कि इन चैतन्य लहरियों के द्वारा मेरी चेतना पर भी प्रभाव हुआ है। मैं धीरे-धीरे उस आयाम में प्रवेश कर रहा हूँ कि कमरे में रखी प्रत्येक वस्तु परिवर्तित हो रही है, फिर भी वही है। एक आनन्ददायी शून्य मेरे अन्दर पैदा हो रहा है। मेरे मस्तिष्क की ध्वनियाँ गायब हो रही हैं-जैसे मेरे अन्दर की पूर्व अभिव्यक्त वास्तविकता में कोई चीज़, जो अधिक वास्तविक व गहरी है, खुल रही है-यह हवा, पर्दा, मेंज सब कुछ बदल रहा है। यह वह नहीं है जिसके लिए मैं संघर्ष कर रहा था। सरल-सीधी, तत्काल, स्पष्ट, आनन्ददायी-वास्तविकता, जो छिपी हुई थी और जिसे पाने का असफल प्रयत्न करता रहा, मेरे सामने आ रही है। यह तो बहुत अधिक है, मेरे लगातार संघर्ष के अंत की संभावना का सामना, मैं नहीं कर पा रहा हूँ। मैं निद्राग्रस्त महसूस कर रहा हूँ व प.पू.श्रीमाताजी की कृपा से सोने चला जाता हूँ।

जब मैं जागता हूँ तो पाता हूँ स्वादिष्ट भारतीय भोजन तैयार है, और चिंतारहित होकर मैं इसका आनन्द लेता हूँ। प.पू.श्रीमाताजी मेरी तरफ देख रही हैं, मैं उनकी कृपा व करुणा अनुभव कर रहा हूँ। वह मेरी दशा से दुखी दिखाई दीं तथा मैं उस बच्चे के समान हूँ जिसका आनन्द अपनी माँ की देखरेख में रहना है। उन्होंने कहा, ''कुछ दिनों तक मेरे पास समय है, अच्छा होगा तुम कुछ दिन और यहाँ ठहरो, इससे तुम्हारी स्थिति स्थिर हो जाएगी, अभी तुम्हारी स्थिति ठीक नहीं है।'' मुझे मालूम था कि मैं ठीक नहीं था तथा खोज के गलत रास्तों के कारण अस्त- व्यस्त था।

अगले दिनों मुझे पता लग गया कि मेरी स्थिति ज़्यादा अच्छी नहीं है। कभी-कभी मुझे चैतन्य महसूस होता, कभी नहीं होता। मेरे शरीर के विभिन्न भागों में दर्द होता तथा मस्तिष्क पुनः अशान्त हो जाता। प.पू.श्रीमाताजी ने चैतन्य लहरी-चिकित्सा के कई सत्र लिए। मैं आनन्द की स्थिति में आता तथा पुनः भ्रम की स्थिति में फिसल जाता। एक बार तंग आकर मैनें प.पू.श्रीमाताजी से कहा कि मैं पूर्णतया बेकार हूँ तथा ठीक नहीं हो सकता हूँ। प.पू.श्रीमाताजी ने मुझसे पूछा, '' अब तुम्हें कैसा लग रहा है।'' उसी क्षण मुझे लगा मैं आनन्द के अवर्णनीय अनुभव में डूब रहा हूँ तथा आनन्द मेरे पूरे शरीर में उत्तेजना रूप में प्रवेश कर रहा है। मैंने अपनी आँखें बंद कर ली। कुछ समय पश्चात प.पू.श्रीमाताजी धीरे से कहती हैं, ''तुम्हें परेशान नहीं होना चाहिए।'' परम आनन्द का जबरदस्त अनुभव आ गया है। मैं इस अनुभव से हक्का बक्का हो गया। इससे सिद्ध हो गया कि श्रीमाताजी को 'ऊर्जा-चेतना' पर अधिकार है। यदि वो चाहे तो मुझे आँख के इशारे से सातवें स्वर्ग तक उठा सकती हैं, यह आश्चर्यजनक है। 'अब मेरे सामने मुझे अपना तंत्र साफ करने के लिये संघर्ष करना है'- मैनें यह विचार स्वीकार किया। यह अच्छा है। इससे मानव स्वतंत्रता के मेरे विचार की स्वीकृति होती है: किसी तरह से मैंने इस प्रक्रिया में भाग तो लिया।

जैसे-जैसे कुण्डलिनी ऊपर उठती है मुझे आश्चर्यजनक चैतन्य के द्वारा सूचनाएं मिलती हैं। जब मैं अपने हाथ प.पू.श्रीमाताजी की तरफ फैलाता हूँ

मेरे हाथ में ठंडी लहरियाँ आती हैं तथा ये लहरियाँ विभिन्न उंगलियों में व हाथ के अन्य भागों में भिन्न-भिन्न अनुभूतियाँ प्रदान करती हैं। उंगलियों की चेतना शरीर के विभिन्न भागों से जुड़ी हुई मालूम होती है, तथा प्रत्येक उंगली व हाथ के भाग शरीर के विशिष्ट चक्रों से जुड़े हुए हैं, ऐसा मुझे अनुभव हुआ। विभिन्न अनुभूतियाँ उंगलियों में जलन व कांटों की चुभन सा दर्द, शरीर के विभिन्न चक्रों में व भागों में शारीरिक व मानसिक समस्याओं को दर्शाते हैं। इसका बेहतर आयाम यह भी है कि दूसरे व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक अवस्था की चैतन्य जानकारी प्राप्त करना।

वास्तव में, आने वालों दिनों में हाइदी पार्क में आराम करते हुए, लंदन में खरीददारी करते हुए, श्रीमाताजी से मिलने के लिए विक्टोरिया स्टेशन में ट्रेन पकडते हुए मैंने महसूस किया कि मेरी उंगलियों में अथवा शरीर में जहाँ चक्र हैं, स्थानीय चैतन्य लहरियाँ अन्य व्यक्ति की उपस्थिति से अथवा विचार से भी प्रभावित होती है। परन्तु कभी-कभी बिना कारण जाने भी महसूस होती हैं। मैं महसूस करता हूँ कि मैं जब भी चित्त दूसरे व्यक्ति पर ले जाता हूँ उसके चक्रों की अनुभूति मुझे होती है ? इसके विपरीत, प.पू.श्रीमाताजी का नौकर जो स्वयं भी आत्म साक्षात्कारी है, जब मेरी ओर हाथ फैलाता है तो मेरे प्रभावित चक्रों व अनुभूति के विषय में बता देता है; यह जानकर मुझे अजीब-सा लगा, प.पू.श्रीमाताजी ने बताया ''यह सामूहिक चेतना है। इसके कारण तुम अपने तथा अन्य लोगों के चक्रों के विषय में भी जान सकते हो।''

इस प्रकार के अनेक अनुभव मैं बता सकता हूँ। उदाहरणार्थ, लन्दन में सहजयोग की सामूहिकता में हम लोग एक भारतीय डॉक्टर की कुण्डलिनी उठा रहे थे, मुझे दाहिने हाथ की ऊंगली में दर्द हुआ, जो आज्ञा चक्र दर्शाती है। उस व्यक्ति को ताज्जुब हुआ और उसने बताया कि उसकी दाहिनी आँख काफी कमजोर है। दूसरे दिन मैं फोन से अपने मित्र से बात कर रहा था जिसे हृदय रोग है, मैनें तत्काल हृदय चक्र के बायें भाग में अनुभूति महसूस की। ये बहुत छोटे उदाहरण हैं- किन्तु लहरियों की इन अनुभूतियों सें सिर्फ शारीरिक कष्ट की ही सूचना नहीं होती है। मैं अपने स्नायुतंत्र पर अपने व मेरे आस पास वाले दूसरे

लोगों के भी चक्रों को अनुभव कर सकता हूँ। जब भी मैं नकारात्मक चैतन्य (ऊंगलियों में जलन या चुभन) महसूस करता हूँ, मेरा चैतन्य उस नकारात्मक चैतन्य के विरुद्ध कार्य करता है। अब मैं चैतन्य के मूल स्रोत से तालमेल में हूँ इसलिए मेरा शरीर इस उर्जा का उत्प्रेरक के रुप में कार्य करता है।

मैं चिंतित हूँ क्योंकि मेरी स्थिति ठीक नहीं है। मेरी पिछली गलतियों ने मेरे स्नायुतंत्र को क्षतिग्रस्त कर दिया है । फिर भी अब मैं समझता हूँ कि मैंने वे गलतियाँ क्यों की । मैं अपने आपको उस शरारती बच्चे के समान मानता हूँ, जो अपनी माँ का ध्यान आकर्षित करने के लिए घर से बाहर आकर कीचड़ में खेलने लगता है। अब मैं माँ की कृपा-दृष्टि में हूँ और इसका आनंद भी ले रहा हूँ।

प.पू.श्रीमाताजी के निवास पर ठहरने के समय मैं परेशान था (अपनी बुराईयों से, पिछली गलतियों से), साथ ही उत्थान से उल्लासित भी था। मैं उस स्थान पर पहुँच गया जिसकी मुझे काफी समय से तलाश थी: एक ज्ञानात्मक यंत्र: जो नशे की दवाईयों, बनावटी वस्तुओं पर निर्भर नहीं करता है अपितु यह एक आन्तरिक चेतना का उपकरण है, जिसने मुझे पूर्ण रूप से आध्यात्मिक एकता के सूत्र में बाँध दिया था, जिसकी पूर्व दार्शनिकों को तलाश थी। यह ज्ञान का अभिनव अविष्कार, गुप्त रहस्यों का प्रकटीकरण, महान परिवर्तन था।

अब, मन जो अभी तक स्वच्छंद रूप से इस पूरी प्रक्रिया को देख रहा था और इसका मूल्यांकन कर रहा था, के सामने एक कटु विरोधाभास प्रकट हुआ, विश्वास नहीं हो रहा था कि मैं अपने लक्ष्य तक पहुँच गया हूँ। इसका सच होना बहुत आनन्ददायी था! यह मेरे जैसे अकिंचन के साथ क्यों घटित हुआ ?

मैं एक खास परेशानी को लेकर चकित हूँ, जिसका मैं समझता हूँ इस पीढ़ी के अधिकांश बुद्धिजीवियों को सामना करना पड़ेगा: हमने हर तथ्य की खोज करने, विश्वास न करने, भटकने तथा इस हद तक विश्लेषण करने की आदत बना ली कि यह जीवन का ठर्रा बन गई है। मस्तिष्क चंचलता के कारण इसे खोजता है, उसे खोजता है तथा इस ''खोज का'' तथा काल्पनिक उड़ानों के चुम्बकीय आकर्षण का अंत नहीं होने देता है। खोज में विभिन्न असत्य नकारते

हुए, हम 'सत्य' को भी उसी प्रकार नकार देते हैं क्योंकि सत्य व असत्य में भेद नहीं कर पाते हैं। बुद्धिजीवी का अहंकार हमेशा आत्मिक संवेदना का दमन करता है: यह अहंकार मैं और मेरे बीच एक पर्दा खींचता है, यह अहंकार अफवाहों, शंकाओं, प्रश्नों, कुटिल विचार-प्रक्रियाओं, पूर्वाग्रहों तथा मूर्खताओं का एक घुटनकारी बादल फैलाना चाहता है। मैं अपने अहंकार व छिछलेपन की मूर्खता से परेशान हो गया हूँ। यद्यपि मैं जानता हूँ कि मैं सत्य के पास हूँ, परन्तु इससे अपने आप को एकरूप नहीं कर पा रहा हूँ। एक तरीके से मैं इसे अपना नहीं पा रहा। अपने अहंकार की नकारात्मकता के कारण, मैं अपने आत्मसाक्षात्कार को स्थापित करने में सबसे पिछडा व्यक्ति हूँ।

सहज योग प्राप्ति के प्रथम दिनों में, चाहे प.पू.श्रीमाताजी के घर में या दूसरे के गाँव में, मेरा मस्तिष्क काफी उत्तेजित था: मैं नहीं जानता था कि मैं कैसे सब स्वीकार करूँ, जो मेरे साथ घटित हो रहा है उसे कैसे घटनें दूँ तथा कैसे विश्राम करूँ। मैं चाहता था जो मुझ पर घटित हो रहा है, उसे समझूँ तथा नियंत्रित करूँ, जबकि मैं इसमें अपने आपको असमर्थ पाता था। प्रश्नों की लहरें एक के पश्चात् दूसरी आती रहती थीं, ''यदि यह ऐसा है तो क्या यह स्वर्ण युग का आरंभ है? हम सब जिज्ञासुओं तक कैसे पहुँचेंगे? उन्हें यह मालूम होना चाहिए। वे इसे कैसे स्वीकार करेंगे? क्या वे लोग नुकसानदेह जीवनचर्या छोड़ देंगे? क्या मैं अपने पैरों पर खड़ा होऊँगा ? क्या हम यह कर सकते हैं ?'' मेरा स्नायुतंत्र कभी कभी विक्षिप्त हो जाता था। मेरे दिमाग में संघर्ष चल रहा था, क्योंकि मैं गहरे कुसंस्कारों से भरे मस्तिष्क में जो कुछ हो रहा था, उससे समझौता नहीं कर पा रहा था: मैं नहीं जानता था कि अपने मस्तिष्क के घोड़े पर (अहंकार व प्रतिअहंकार) कैसे सवारी करूँ । किन्तु धीरे-धीरे अनुभव से निर्विचार ध्यान द्वारा नियंत्रण होना आरंभ हुआ, पहले कुछ सेकंड, कुछ दिनों पश्चात कुछ अधिक, तत्पश्चात और अधिक समय तक। इस स्थिति में , मैं शांति में एकाकार हो जाता जिसे मैं एक शब्द- ''पूर्ण आनन्द'' कह सकता हूँ। सब आवाजें, भय, मन की पीड़ाएं, आत्मा की आंतरिक तीव्रता द्वारा निगल ली गई। मैं यहाँ उपस्थित हूँ किन्तु बिना वर्तमान या भूत, आकर्षण या प्रतिकर्षण के।

मैं अपनी वास्तविक पहचान के अधिक पास पाता हूँ: मुझमें एक बहुत पुराना संसार जागता है। बाहरी विश्व से मेरा संबंध मात्र साक्षी का हो जाता है। जैसी वस्तुएं हैं उन्हें मात्र वैसा देखने का। किन्तु फिर से नीले आकाश को बादल ढक देते हैं । प.पू.श्रीमाताजी मुझे 'दैवी-उर्जा' की कार्यप्रणाली, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, दैवी-अवतारों के इतिहास के विषय में विस्तार से बताती हैं। पारदर्शी कुशाग्रता के साथ वे उत्क्रांति के उस दौर का वर्णन करती हैं जिससे हम गुजर रहे हैं तथा इसके विकल्प क्या हैं। मैं उनके शब्दों में बंध गया - उनके शब्द, बुद्धि व ज्ञान, बुद्धिमत्ता की तेज़ धार के समान थी। वे मेरे निजी प्रश्नों का भी उत्तर देतीं, साथ ही बताती कि मेरी समस्या क्या है? तथा ऐसा क्यों घट रहा है। उन्हें हमारे मस्तिष्क के संस्कार, वर्तमान समय व उसकी समस्याओं का पूरा ज्ञान है। मेरी बुद्धि उनके ज्ञान से चकित है।

प.पू.श्री माताजी के प्रति असीम श्रद्धा रखते हुए भी, भय मन में रहता है। मैंने उनकी अन्य छवि भी देखी हैं। एक शाम को प.पू.श्रीमाताजी भोजन के कमरे में कुर्सी पर बैठी थीं , श्वेत साड़ी पर लाल अंगवस्त्र (शाल) ओढ़ रखा था। काले बाल उनके कंधे पर लहरा रहे थे, आँखे बंद थीं। मैं चरणों में बैठा था। उनके जिस चेहरे को एकाग्र भाव से देख रह था - वह चेहरा पराशक्ति वाला, दैवी आभा से युक्त, न पुरुष न स्त्री, आयु से परे वाली दैवी आकृति में परिवर्तित हो गया था, मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ भाव से देख रहा था, प.पू.श्रीमाताजी कहाँ चली गईं। मेरा मस्तिष्क अनन्त शांति से भर गया।

दूसरी घटना मेरे ब्रिटेन रवाना होने के एक दिन पहले की है जो नाटकीय है। मैं प.पू.श्रीमाताजी से दूर जाने की भावना से दुखी था। मेरा मस्तिष्क अशांत था। मुझे छोड़ चुकी छायाएं (पकड़) मेरे मस्तिष्क में पुनः पकड़ बनाने के लिए संघर्ष कर रही थी।

प.पू.श्रीमाताजी उन छायाओं (पकड़) से नाखुश थीं, मैंने भयानक, डरावना फिर भी सुंदर व दैवी स्वरूप देखा। प.पू.श्रीमाताजी बैठी हुई हैं। सुनहरे श्वेत बादल हार के समान उनकी आकृति के आसपास घिरे हुए हैं । कमरे की वायु रोम-रोम में ऊर्जा का संचार कर रही है। चेहरा अंदर से आती चमक से

प्रकाशित हो रहा है यह धूप में चमकती सफेद बर्फ के समान हो गया है। उनकी तीव्र दृष्टि मुझे भेद रही है। विस्मय प्रेरक भाव से मैंने देखा कि वे आँखें गरूड़ के समान हैं। मैं डरकर नीचे कालीन की ओर देखने लगा। मेरे मस्तिष्क की छायाएं (पकड़) दूर हो चुकी थीं। मुझमें शांति व्याप्त हो गई थी। अगले दिन जब मैं प.पू.श्रीमाताजी के घर से रवाना हुआ, मेरा मस्तिष्क शांतिपूर्ण निर्विचार चेतना की स्थिति में था।

मेरी स्मृति में यह आशीषयुक्त सप्ताह जीवन का आश्चर्यजनक समय था जिसमें अनपेक्षित दैवीज्ञान (देवित्व) व खोज की घटनाएं घटित हुईं। मातृत्वपूर्ण स्नेह व प्यार के वातावरण में डूबा रहा। आशीषपूर्ण समय की यादगार से मैं समृद्ध हो गया। कभी-कभी आत्यधिक शांति होती। उदाहरण के लिए, कभी प.पू. श्री माताजी मुझसे किसी चित्र को निर्विचारिता में देखने के लिए कहतीं: मैं देखता तथा उस चित्र के चित्रकार के हृदय में जो आनन्द था वह ठंडी हवा की नदी के रूप में मेरे हृदय में उतर आता। मैं रोमांचित था। ऐसे अवसरों पर जो शांति का आनन्द महसूस होता था वह प.पू.श्रीमाताजी के निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है- ''जब मस्तिष्क की झील का पानी स्थिर होता है, तब इसमें आसपास के वातावरण की सुंदरता प्रतिबिम्बित होती है व रचनाकार का अविचलित आनन्द भी।'' फिर भी अनेक अवसरों पर मैं अपने अस्थिर मन की अक्षमता से परेशान व निराश हो जाता था कि यह मन जो एक बार सत्य देख लेता है तो क्यों यह सदा के लिये इससे एकरूप नहीं हो जाता।

अब मैं परमपूज्य माताजी से प्रथम भेंट के समय जो घटित हुआ उसे समझाने की बेहतर स्थिति में हूँ :- सहज योग में आत्मसाक्षात्कार घटित होने की घटना अर्थात 'तत्क्षण परम आनन्द' की घटना उस संत को प्राप्त होती है जिसने अपने आप को हजारों वर्षों से, अनेको जन्मों से, इसके लिए तैयार कर रखा है। किन्तु अन्य व्यक्ति जिसकी कुछ कम तपस्या है उसे आत्म साक्षात्कार के 'आनन्द का क्षण' प्राप्त करने में कुछ अधिक समय लगता है। उसे इसके पहले जन्मों में इकट्ठा हुए कुसंस्कारों से मुक्त होकर अपने आपको शुद्ध करना होगा। अन्य प्रकार के व्यक्ति जिनका यंत्र (कुण्डलिनी तंत्र), अनियमित जीवन,

नशीली दवाइयों का सेवन, भोग-विलास की अधिकता आदि के कारण क्षतिग्रस्त हो चुका है उन्हें आत्म साक्षात्कार में समस्याएं आ सकती हैं व उनकी प्रगति 'नई चेतना' प्राप्ति में कुछ अधिक धीमी रहती है। जैसा मेरे साथ हुआ, दो वर्षों तक मैं निर्विचार ध्यान की स्थिति में 'कुछ समय' तक ही रह पाता था, अधिक समय तक यह स्थिति नहीं रहती थी। कभी-कभी आत्म साक्षात्कार की 'क्षणिक अनुभूति होती है तथा इसे बढ़ाने के लिए उन्हें इच्छा शक्ति द्वारा अपनी सफाई लगातार करते रहना होता है। सहजयोग हमें सिखाता है कि इसके लिए हमें क्या करना चाहिए। साधक जिनके चक्र क्षतिग्रस्त हो गए हैं, उन्हें धैर्य पूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं - ''आपकी कुण्डलिनी धैर्यपूर्वक अपने प्रकटीकरण की प्रतीक्षा कर रही है। आपकी माता के समान, यह तुम्हारी कभी हानि नहीं करेगी। स्नेह से सर्वप्रथम आपके शरीर को स्वस्थ करेगी व चक्रों को ठीक करेगी।'' कुण्डलिनी अपना मार्ग अशुद्ध चक्रों द्वारा पूरा नहीं करती है, हमें उत्क्रांति की लय व नाजुकता को समझना चाहिए जो धीरे-धीरे हमारी चेतना को परिवर्तित कर रही है। यह प्रक्रिया स्वैच्छिक व स्वाभाविक है, अतः साधक की स्थिति व इच्छा के अनुसार ही प्रगति होती है। सहज योग का सबसे अच्छा पहलू जिसका मैं सबसे अधिक सम्मान करता हूँ: वह यह है कि यह आपको स्वतंत्र रहने देता है तथा किसी विशेष कार्य के लिए बाध्य नहीं करता।

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा प्रतिपादित नवीन (सामूहिक) चेतना सहज एवं प्रयत्नहीन है। 'प्रयत्नहीन' होने से तात्पर्य है कि घटना के समय साधक के मन को शान्त रहना है। इसे प्रयत्न, स्व-सलाह तथा कपोल-कल्पना में व्यस्त नहीं रहना है। अपितु, सत्य के अनुभव को महसूस करने के लिए खुला एवं तत्पर रहना है। यह अनुभव किसी अन्य आत्मा के अस्तित्व या ''पकड़'' से भ्रमित नहीं किया जा सकता, क्योंकि जो अनुभव हो रहा है उसे मस्तिष्क द्वारा स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है तथा उसकी वास्तविकता की पुष्टि शरीर के चैतन्य से हो जाती है। श्री माताजी प्रयत्नहीनता के विषय में बड़ा सुंदर दृष्टिकोण प्रकट करती हैं ''प्रत्येक वस्तु जो महत्वपूर्ण है वह प्रयत्नहीन है;

उदाहरण के लिए हमारे द्वारा श्वास लेना बहुत सरल व प्रयत्नहीन है। इसलिए आत्म साक्षात्कार बिना प्रयत्न के घटित होता है।'' वास्तव में यह बहुत सरल है। कुण्डलिनी स्वतः प.पू. श्री माताजी की उपस्थिति से या उनके द्वारा दिए चैतन्य से ऊपर उठ जाती है।

हर समय, एक सहज योगी एक स्वतंत्र प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। उसके पास चैतन्य लहरियों व चक्रों का ज्ञान सही समय पर कार्य करने व मार्ग चुनने में सहायता करता है। इस स्वतंत्रता के कारण आत्मसाक्षात्कार के पश्चात जो समस्याएं आती हैं उनका समाधान भी साधक को प्राप्त ज्ञान के द्वारा तत्काल हो जाता है, जो यह सिद्ध करता है कि इस उत्थान के नाटक में वह मात्र एक कलाकार है। प.पू.श्रीमाताजी अपने स्वाभाविक हास्य में कहती हैं ''सहजयोग आपकी मोटर कार चालू कर सकता है, यदि मरम्मत की जरूरत हो तो वह वर्कशाप का कार्य भी कर सकता है, किन्तु बिना मोटर कार चालू किए आप कैसे आगे बढ़ोगे? चालू करना भी प्रयत्नहीन ही तो है।''

इस घटना से आपको बेहतर ढंग से परिचित कराने के लिये अब मैं आपके समक्ष जीवन-वृक्ष को चित्र संख्या तीन में प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह जीवन-वृक्ष, चक्रों स्व उर्जा की तीन नाड़ियों से बना है जिनसे ये जुड़े हुये हैं।

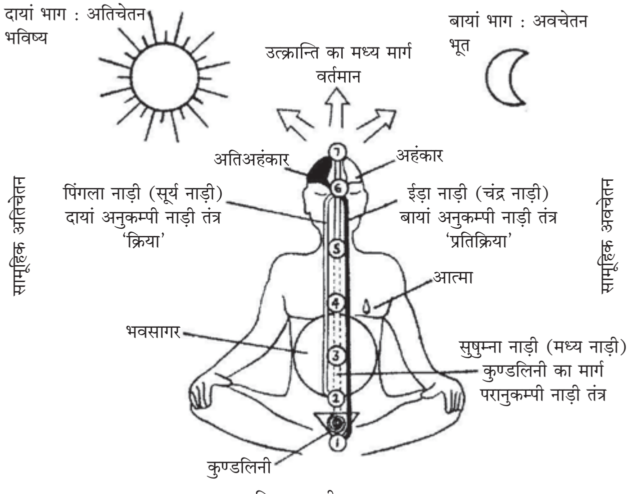

चित्र ३ : जीवन वृक्ष

चक्र	शरीर में स्थिति /स्थूल अभिव्यक्ति	शारीरिक स्तर पर प्रादुर्भाव (साधारण वर्णन)
७. सहस्रार (१००० पंखुडियाँ)	सिर के ऊपर तालू	चैतन्य लहरियाँ
६. आज्ञा (२ पंखुडियाँ)	दोनों नाड़ियों का पारगमन (कपाल पर)	पीनियल व पिट्यूटरी ग्रन्थि
५. विशुद्धि (१६ पंखुडियाँ)	सरवाइकल प्लेक्सस (Cervical plexus)	बाहें, गर्दन, मुँह, नाक, आँखें, कान, मस्तिष्क का निचला भाग
४. हृदय या अनहत (१२ पंखुडियाँ)	कार्डिएक प्लेक्सस (Cardiac plexus)	हृदय, फेफड़े
३. नाभि या मणिपुर (१० पंखुडियाँ)	सोलर प्लेक्सस (Solar plexus)	लीवर (आंशिक), पेट
२. स्वाधिष्ठान (६ पंखुडियाँ)	एरोटिक प्लेक्सस (Aortic plexus) तिल्ली (Spleen) पेन्क्रियाज, किडनी पेडू का निचला भाग	आंशिक यौन क्रिया एवं विसर्जन, लीवर (आंशिक), कमर के दोनो बाजू में
१. मूलाधार (४ पंखुडियाँ)	पेल्विक प्लेक्सस (Pelvic plexus)	यौन क्रिया, विसर्जन
मूलाधार	अनुत्रिक (Coccyx) (सुसुप्ता)-पुच्छ	परानुकंपी तंत्रिका भाग इड़ा नाड़ी का अंतिम भाग

कुण्डलिनी :- यह शक्ति मूलाधार चक्र के उपर स्थित त्रिकोणाकार अस्थि में सुप्तावस्था में अपने प्रकटीकरण की प्रतीक्षा में रहती है।

चक्र :- ये मेरुरज्जू (Spinal chord) तथा मस्तिष्क में स्थित अलग-अलग सूक्ष्म केंद्र होते हैं। वे रीढ़ की हड्डी के उपर अलग-अलग स्थानों पर

नसों के जालक (plexus) के रूप में दिखाई देते हैं तथा वे शरीर के विभिन्न अंगों तथा उनसे संबंधित क्षेत्रों के स्नायुतंत्र (Neuroendocrinal) को नियंत्रित करते हैं।

तीन नाड़ियाँ (Energy Channels) :- सात चक्रों के साथ स्वचालित तथा मध्य नाड़ी तंत्र (Central nervous system) और मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों के विशेष कार्यों की अभिव्यक्ति हैं। मस्तिष्क का अहंकार संचालित (बायाँ गोलार्द्ध) भाग, दाहिने भाग में स्थित पिंगला नाड़ी से जुड़ा होता है, जबकि प्रति अहंकार संचालित (दाहिना गोलार्द्ध) बायें भाग में स्थित इड़ा नाड़ी से जुड़ा होता है।

भवसागर :- चित्र में नाभि चक्र के चारों ओर फैला हुआ भाग, ज़ेन बौद्धों की आशीष शून्यता नहीं है। यह चेतना की स्थिति से संबंधित (भ्रम का महासागर) भवसागर है, जिसमें भ्रम व अज्ञान के कारण हम सब खोए हुए रहते हैं। इसे पार करने के लिए कुण्डलिनी को इसमें से होकर उपर उठना होता है।

दूसरे शब्दों में साधक का शारीरिक स्वास्थ्य व उसका मानसिक चरित्र, शरीर के अन्दर स्थित चक्रों व नाड़ियों की सूक्ष्म उर्जा के आदान प्रदान की संरचना पर निर्भर करता है।

चिकित्सा विज्ञान व मनोविज्ञान में एक क्रांति की आसन्नता (संभावना) को यह कहकर बेहतर ढंग से बताया जा सकता है कि एक सहजयोगी के पास इस उर्जा को जाँचने की शक्ति होती है। उदाहरण के लिये वह अपने हाथों का उपयोग उर्जा के बहु उद्देशीय प्रेषक के रूप में कर सकता है। यह सहजयोग का एक महानतम पहलू है! आप वास्तव में लोगों को ठीक करने की शक्ति अपने खुले हुये हाथों में पाते हैं क्योंकि इन हाथों से तथा आपके शरीर से दैवी-प्रेम की जबरदस्त शक्ति प्रवाहित होती है। चित्र संख्या ४ में स्पष्ट है कि हाथ किस प्रकार से मध्य मनोदैहिक तंत्र जुडे हुये हैं।

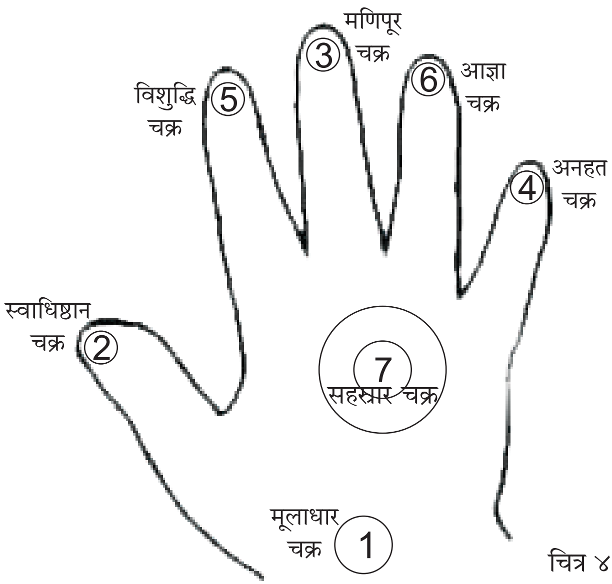

चित्र ४

यह चित्र बताता है कि किस प्रकार हाथ की प्रत्येक ऊंगली प्रत्येक च्रक की चैतन्य लहरियों को अलग-अलग प्राप्त करती है व प्रेषित करती है। यह प्रक्रिया आत्मसाक्षात्कार के पश्चात सहजयोगी को नाड़ी तंत्र द्वारा, शारीरिक संवेदनाओं के रूप में अनुभव होती है।

चक्रों के विषय में पुराने हिन्दू व तिब्बती ग्रन्थों में पढ़ना एक अलग बात है परन्तु अपने शरीर में चेतना द्वारा अनुभव करना बिल्कुल दूसरी बात है। 'चैतन्य लहरों की चेतना' की नई खोज मानव के सही गलत फैसला करने की चिरस्थायी समस्या पर नया प्रकाश ड़ालती है। क्योंकि धर्म की समग्र चेतना की अभिव्यक्ति अब भौतिक सतह पर होती है। दूसरे शब्दों में, यदि कुछ गलत है तो आप सजग हो जाते हैं। एक दिन एक व्यक्ति ने मेरी ओर देखा, उससे नजर मिलते ही मैंने आँखों में दर्द महसूस किया, अर्थात वह व्यक्ति ठीक नहीं था। दूसरे समय में अपने प्रिय भतीजे के बारे में सोच रहा था, मेरा मस्तिष्क हल्का हो गया तथा लहरियों से भर गया, जिसके द्वारा उसकी कुशलता की सूचना मिल गई।

प.पू.श्रीमाताजी इन घटनाओं का हमेशा पूर्ण स्पष्टीकरण देती हैं। जब कोई

व्यक्ति आग में उंगली रखता है तो वह तत्काल उसे हटा लेता है, क्योंकि उसका स्नायु तंत्र सूचना देते हैं कि आग जलाती है। एक सहजयोगी में आसपास के वातावरण (भावनात्मक, मानसिक, आत्मिक) के अनुसार इस प्रकार की प्रतिक्रिया विकसित हो जाती है क्योंकि मध्य तंत्रिका तंत्र तथा स्वचालित तंत्रिका तंत्र (अनुकंपी तथा परानुकंपी) कुण्डलिनी जागरण के द्वारा धर्म की आध्यात्मिक चेतना, जो कि ब्रह्माण्डीय चेतना का एक पहलू है, से समग्र हो जाते हैं।

आत्म साक्षात्कार का अर्थ कुण्डलिनी का रीढ़ की हड्डी (सुषुम्ना नाड़ी) में ऊपर उठकर भवसागर पार करते हुए मस्तिष्क के शीर्ष (ब्रह्म रंध्र) को भेदना है। इस प्रकार सर्वव्यापी आदि ऊर्जा से संबंध बन जाता है। यह ऊर्जा नवीन समग्रित (Integrated) स्नायुतंत्र द्वारा कंपन के रूप में महसूस होती है। मैंने अपने पूर्व अनुभव में कुण्डलिनी जागरण को कई बार आनन्ददायी ठंडी अनुभूति के रूप में रीढ़ के नीचे से ऊपर उठते हुए अनुभव किया। दूसरे सहज योगियों को अन्य अनुभव हुए। मेरे एक भारतीय मित्र को कुण्डलिनी द्वारा मस्तिष्क (सहस्त्रार) की झिल्ली (Fontanel membrane) भेदने की आवाज सुनाई दी। एक अन्य मित्र को सिर के ऊपर से नीचे की ओर आनन्द की अनुभूति पिघलते हुई बर्फ के समान हुई। अन्य को, जिसने आँखे बंद कर रखी थी उसने आज्ञा चक्र से फैलती हुई प्रकाश की दीर्घवृत्ताकार (Elliptic) गति देखी, जिसने पूरे सिर को प्रकाशित कर दिया था।

अब हम कुछ आत्म साक्षात्कार प्राप्त सहजयोगियों के अनुभव दे रहे हैं।

राजबाई मोदी 'दि डिवाईन मदर' नाम की पत्रिका (पेज ८-Z.S. More संपादक, मुंबई) में लिखती हैं :

''कुण्डलिनी जागरण का मेरा व्यक्तिगत अनुभव जनवरी १९७२ के प्रथम सप्ताह में हुआ। प.पू. श्रीमाताजी ने मेरे छः चक्रों को कुछ क्षण के लिए छुआ, एक शक्तिशाली उर्जा प्रत्येक चक्र से गुजरते हुई मस्तिष्क तक पहुँची। जब यह घटित हो रहा था मैं गहरे ध्यान में थी। प.पू.श्रीमाताजी ने कुछ सेकण्ड

में यह कार्य पूरा कर दिया किन्तु मैं गहरे ध्यान में पूरे शरीर में गहरे आनन्द व आनन्ददायी अनुभूति से भरी हुई थी। मेरी आँखे नहीं खुल रही थीं तथा ध्यान जारी था। मेरा शरीर अधिक गर्म था तथा मुझे लग रहा था मैं गहरे नशे में, किन्तु पूर्ण चेतना थी। २७ जनवरी १९७२ को जब मैं बोर्डी में थी मेरा ध्यान अधिक दिलचस्प था। देर रात्रि में कार्यक्रम के पश्चात हम कुछ लोग माताजी के साथ ठहरे थे। श्रीमाताजी ने मुझसे आँखे बंद करने को कहा व मेरे सहस्रार को स्पर्श किया। कुछ क्षण पश्चात उन्होंने कहा, ''पार हो गई!'' उन्होंने मुझसे सोचने को कहा, किन्तु मैं कुछ क्षण के लिए भी विचार जारी नहीं रख सकी। इसके पश्चात मैं सो गई। अगली सुबह एक वयोवृद्ध व्यक्ति को हृदय में दर्द था। मैंने चैतन्य दिया। मुझे आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने कहा, ''मुझे बेहतर लग रहा है।'' इस प्रकार यह आरंभ हुआ व अब तक चल रहा है।

आत्मसाक्षात्कार के पश्चात ऊर्जा प्रवाह की अनुभूति मुझे महसूस हुई। श्रीमाताजी ने मुझसे एक व्यक्ति को चैतन्य देने को कहा, जिसे साक्षात्कार देना था। मैंने महसूस किया ऊर्जा प्रवाह गर्म था। श्रीमाताजी ने कहा कि कुण्डलिनी जागृत हो रही है परन्तु कुछ रुकावट है, तत्पश्चात प्रवाह ठंडा हो गया। श्रीमाताजी ने हमें कहा कि अब शक्ति प्रवाह (सूर्य चन्द्र नाड़ियों द्वारा) नीचे हो रहा है अतः ठंडा कर रहा है। अचानक मैंने महसूस किया कि मुझे चैतन्य केवल एक हाथ में आ रहा है। श्रीमाताजी ने अपनी आँखे बंद की, उनके शक्ति (संकल्प) द्वारा मेरे दोनों हाथों में चैतन्य आने लगा। श्रीमाताजी ने अपनी आँखें खोलीं व पूछा कि क्या दोनों हाथों में चैतन्य आ रहा है? जब मैंने 'हाँ' कहा। तो उन्होंने मुझसे उस व्यक्ति से पूछने को कहा, क्या वह निर्विचार है। उसने सिर हिला कर हाँ कहा, परन्तु बोला कि आँखे नहीं खुल रही है। श्रीमाताजी ने उससे रुकने को कहा। दो मिनट बाद उसने अपनी आँखें खोली तथा पाया कि उसकी आँखें चमक रही थी। उसने कहा कि उसे गुलाब की तीव्र सुगन्ध महसूस हो रही थी व तीव्र प्रकाश दिखाई दिया। मैंने पूछा कि क्या वह अपनी ऊंगलियों में चैतन्य महसूस कर रहा है? उसने स्वीकृति दी। इस प्रकार आत्म साक्षात्कार व जागृति अनुभव के असंख्य उदाहरण हैं।

लन्दन का एक सहजयोगी, डेविड प.पू.श्रीमाताजी से अपनी भेंट के विषय में कहता है ''मुझे बहुत खुशी हुई। मैंने महसूस किया कि मेरे मस्तिष्क का तनाव पिघल कर दूर हो गया। जब भी श्रीमाताजी मेरी ओर देखती है मुझे ठंडक महसूस होती है।'' मरियम कहती है ''जब भी प.पू.श्रीमाताजी मेरी ओर देखती हैं मुझे चैतन्य महसूस होता है।'' लिंडसे – ''मुझे आनन्द से उड़ना जैसा महसूस हुआ। बहुत सुंदर, शांत व हृदय में अपार प्रेम महसूस हुआ।'' क्रिस्टिन – ''माताजी से मिलने के कुछ सप्ताह पूर्व ही पूर्ण आनन्द महसूस होने लगा, जिसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता। मैंने प.पू.श्रीमाताजी को पहली बार मित्र के फ्लैट में देखा, जैसे ही प.पू. श्रीमाताजी ने कमरे में प्रवेश किया, मेरी हथेलियों में झुनझुनाहट महसूस हुआ व बाद में ठंडी हवा आने लगी। मैंने पूर्ण शांति महसूस की, पूर्ण रूप से दूसरा जन्म महसूस किया, हर चीज नई थी।'' मेरा मित्र, टोनी कमरे में माताजी के चित्र के सामने ध्यान कर रहा था। अतिथि मित्र के बच्चे कमरे में आए तथा उन्होंने पूछा 'क्या कर रहे हो?' उसने मुस्कुराते हुए कहा ''इस पवित्र महिला से शक्ति ले रहा हूँ, क्या तुम भी करना चाहते हो?'' बच्चे भी बैठ गए, उन्होंने चित्र की ओर हाथ फैला दिए। कुछ समय पश्चात एक बच्ची बोली ''अरे यहाँ बहुत हवा है'' कुछ देर रुककर बोली ''इस हवा का स्विच कैसे बंद करते हैं।'' इन सब आत्मसाक्षात्कार के अनुभवों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि ये अनुभव प.पू.श्रीमाताजी से भेंट अथवा उनके नजदीक होने पर ही होते हैं। महीनों के अध्ययन व अनुभव के आधार पर मैं इस अविवादित निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प.पू.श्रीमाताजी ''कुण्डलिनी – स्वामिनी'' हैं। उनकी मातृ दृष्टि या उनके चित्र के द्वारा भी कोई भी व्यक्ति जागृति या आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर सकता है। इसके अलावा अब तक ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ है जिसने इस प्रकार कुण्डलिनी का विस्तृत व पूर्ण ज्ञान तथा अनुभव दिया हो।

''सहजयोग का अर्थ है अनायास ही हमारे चित्त की परमात्मा से एकाकारिता।'' यह इस सत्य को बताता है कि हममें जो गर्भित शक्ति जन्म से स्थित है उसे प्राकृतिक रूप से अपनी इच्छा से अभिव्यक्त होना चाहिए। जैसे

बीज से पेड़ पैदा होता है। किन्तु पेड़ जल विहीन रेगिस्तान में नहीं पैदा होता है। आत्म जागरण की प्रक्रिया का आरंभ व गति ''जीवन जल'' - दैवी प्यार की चैतन्य लहरियों द्वारा होता है जो परम पूज्य श्रीमाताजी लुटा रही हैं। सहजयोगियों में भी कुछ समय पश्चात यह चैतन्य बाँटने की क्षमता आ जाती है। ऊपर बताए ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जब श्रीमाताजी के शिष्यों द्वारा इस चैतन्य से आत्म साक्षात्कार दिया जा रहा है। बड़े-बड़े शहर दिल्ली, मुंबई, लंदन, लॉस एंजिल्स आदि इसके उदाहरण हैं। ऐसा कौन महापुरुष है जो अपने शिष्यों को यह शक्ति दे सकता है? यही विशेष बात प.पू. श्रीमाताजी के 'अवतरण' में है।

दो वर्ष बाद काठमांडू में, मैं अंतर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण के साथ काम कर रहा हूँ। मैं अपनी स्थिति का वर्णन निम्नानुसार कर सकता हूँ: मेरे मस्तिष्क की क्षमता, भला बुरा समझने तथा किसी विषय पर एकाग्र होने की शक्ति काफी बढ़ गई है। मैं अपने संस्कारों व समस्याओं को सिनेमा के पर्दे पर चित्रित छाया के समान स्पष्ट रूप से देखता हूँ तथा मैं अपने आपको उनसे जोड़कर भविष्य के लिए बुरे कर्म बंधन में नहीं पड़ता हूँ। कभी मैं देखता हूँ कि वे (संस्कार) मेरे पुराने किस संस्कार से संबंधित है। मुझमें यह शक्ति अब है कि मैं जिन विचारों को नापसंद करता हूँ उन्हें रोक सकता हूँ। मैंने बिना परेशानी के अपनी जीवन चर्या बदल दी है तथा मैं शारीरिक रूप से खुद को अधिक स्वस्थ तथा आंतरिक रूप से अधिक स्वच्छ पाता हूँ। अनुभव (प्रत्यक्षज्ञान) का विकास आंतरिक स्वच्छता के अनुपात में होता हैं। जब मुझे कोई समस्या आती है तो मैं उसे देख सकता हूँ तथा यह बहुत बड़ा लाभ है, अब मैं अपनी हर समस्या का सामना बेहतर ढंग से कर सकता हूँ।

वास्तव में अभी मैं निर्विचार चेतना में नहीं हूँ, किन्तु जब भी चाहता हूँ प्रवेश कर सकता हूँ। धीरे-धीरे किन्तु निश्चयपूर्वक यह मुझसे तथा दुनिया से मेरे संज्ञानात्मक संबंध को बदल रही है। शायद मैं इसे इस प्रकार व्यक्त कर सकूं: मैं स्वयं को उस दुनिया के सम्मुख खोल रहा हूँ जो एक भौतिक दुनिया से कहीं अधिक वास्तविक है, हालाँकि इस दुनिया में भौतिकतावाद ही छाया हुआ है, और इसे बढ़ा रहा है। यह वास्तव में एक वह विश्व है जो उस विश्व

की अपेक्षा कहीं अधिक वास्तविक है, जितना लोग इसे समझते आये हैं। यह स्वयं को सीधी स्पष्टता तथा खुली सरलता से अभिव्यक्त करता है। यह न तो विचार, न भावना, न ही संवेदना है , बल्कि ये सब सम्मिलित रूप में आनन्दपूर्ण शान्ति या और फिर भी कुछ अन्य चीज़ है । यह दूसरा विश्व जिसे मैं बहुत प्राचीन मानता हूँ, उसमें पारदर्शिता, सादगी, आनन्द, अबोधिता, ताजगी, सहजता शुद्धता व पवित्रता प्रकटित है। इसमें सुंदरता व पवित्रता का आयाम अभिव्यक्त है, जिसमें सत्य की दृढ़ता व श्रेष्ठता है। मुझे मालूम है इसे मैं खो चुका था तथा अब मैं प्राप्त कर रहा हूँ। अपनी पुरानी स्मृति की गहराई में उसका सवेरा हो रहा है, जो पूर्व में था, है और आगे भी रहेगा।

अपने साक्षात्कार के पश्चात मुझे भिन्न-भिन्न अनुभव हो रहे हैं। उदाहरण के लिए मुझे परामनोवैज्ञानिक व इंद्रियों से परे (Extra sensory perceptions) अनुभव हो रहे हैं। जैसे सोते हुए भी चेतन-क्रिया हो रही है, कभी-कभी मृत आत्माओं (Spirits) से बात करता हूँ, कभी लड़ाई होती है, कभी परियों के मधुर गीत, कभी मस्तिष्क में पवित्र संगीत गूँजता है। किन्तु मैं अपना ध्यान इन बातों की ओर नहीं देता हूँ। मुख्य बात अपनी आत्मा की अन्तःचेतना पर चित्त रखना है । मैंने अपनी कुण्डलिनी का दो बार अपार आनन्दपूर्ण अनुभव प्राप्त किया: मानो अनुकंपा व दिव्यता का झरना धीरे-धीरे सहस्रार से नीचे पूरे शरीर में बह रहा हो। इनमें से दूसरा अनुभव प.पू.श्रीमाताजी के दर्शन का है, जिसमें वे शाही मुकुट धारण किए, शाही जामुनी परिधान में, स्वर्ण सिंहासन पर विराजित तथा अपने विभिन्न हाथों में विविध शस्त्र धारण किए हुए हैं।

अभी हाल ही में मुंबई में मुझे प.पू.श्रीमाताजी के साथ कार में बैठने का सौभाग्य मिला। हम पाँच लोग सहजयोगी थे तथा समुद्र तट की ओर आश्रम के लिये एक स्थान देखने जा रहे थे। मेरी तबियत ठीक नहीं थी तथा जुकाम से बुरी तरह पीड़ित था; प.पू.श्रीमाताजी ने अपना हाथ मेरी गर्दन पर रखा। मैं बेहोश हो गया। मैं अपनी चेतना खोने ही वाला था कि मैंने अपनी रीढ़ की हड्डी के नीचे से एक जबरदस्त ठंडक अपने सिर की तरफ आती

महसूस की। मैं हँसा, हालाँकि आधा बेहोश ही था। मेरे दिल और दिमाग में केवल एक विचार आया, 'उद्धार, वे उद्धारक हैं।' उस आशीर्वादित क्षण से मेरी निर्विचार चेतना में बने रहने की क्षमता में वृद्धि हुई।

आपको मालूम है, दूसरे जन्म के पश्चात जीवन के बारे में बताना कितना मुश्किल है क्योंकि यह बहुत ही सरल है। वह जीवन जो बोरियत, असंतोष, निराशा व विभिन्न प्रकार के तनावों से ग्रसित था वह आनन्द में परिवर्तित हो जाता है, यह सब अन्दर होता है । यह आपके पास है जिसे कोई नहीं छीन सकता। इसलिए सहजयोगी अब बहुत दृढ़ अनुभव करते हैं; हम जानते हैं यह प्रेम की शक्ति है जो हमसे अपनी व दूसरों की मदद करवाती है। यह ज्ञान हृदय में एक महासागर के समान रहता है, जो गहरा व अन्तहीन तथा फिर भी शान्त है।

इन नये अनुभवों के आधार पर हम बहुत आत्मविश्वास का अनुभव करते हैं। यह एक सच्चाई है कि अब हम इस स्थिति में हैं कि वास्तविकता को हम पर्यावरण में तथा अपने अन्दर जान सकते हैं। हमें चैतन्य लहरियों के माध्यम से चीज़ों की वास्तविकता का बोध होता है। जब सामाजिक नकाब, सीधे, स्वेच्छिक व तत्काल ध्यान के द्वारा तार-तार हो गए हैं, उनका दिखावा करने की जरूरत नहीं। कोई हमारा दुरुपयोग नहीं कर सकता है। इसके आगे भी नया बोध चैतन्यमय अन्य क्रियाओं के संबंध को प्रकट करता है जो ब्रह्माण्डीय परिस्थितिकी के क्षेत्र को निर्धारित करते हैं। न सिर्फ लोग बल्कि स्थान व वस्तु, जीव जन्तु, जैव व प्राकृतिक पदार्थ-वास्तविकता का पूरा धरातल कुछ अंश तक अच्छाई व धार्मिक गुण के विषय में प्रकाश डाल सकते हैं। इन निष्कर्षों के आधार पर हम अब अंतरिक्षी युद्ध क्षेत्र, मानसिक अवरोधक (Units of psychic interferences) का स्वभाव, तथा बृहत संसार नाट्यशाला में लीलामय, निर्लिप्त साक्षी स्वरुप के अपने मार्ग को ढूंढ़ने के वास्तविक तथ्य को समझने लगे हैं। यह भी समझा जा सका है कि ज्ञान का एक उपकरण भी है जिससे मनुष्य स्वेच्छा से गलत कार्यों से बच सकता है व गलत प्रभावों से बच सकता है। अन्त में, मनुष्य इस स्थिति में पहुँच गया है कि वह सत्य का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह इतिहास का वह चरण है जिसमें मावनजाति

ब्रह्माण्डीय परिस्थितिकी में अपना सही स्थान समझेगी। इस सबसे ऊपर, जीवन पूर्ण आनन्द बन जाता है। आखिरकार यही तो महत्व की वस्तु है, ठीक है न?

मैंने पुराने ग्रन्थों के वास्तविक अर्थ समझने शुरू किए हैं। उदाहरण के लिए, प्रभु येशु ने आदिशक्ति की चैतन्य लहरियों की हवा के अनुभव के विषय में संकेत दिया है, जिसे मैं पहले नहीं समझ पाया था:

''जो मांस के रूप में जन्मा है वह मांस है, तथा जो आत्मा से जन्मा है वह आत्मा है। मैंने जो कहा है उस पर आश्चर्य मत करो। ''तुम नये रूप में जन्म लो।'' हवा जहाँ चाहती है वहाँ बहती है, तुम इसकी आवाज सुनते हो, किन्तु तुम नहीं जानते वह कहाँ से आती है तथा कहाँ जाती है, अतः यह सबके साथ होता है जो आत्मा से पैदा हुआ है।''

निकोडॉमस ने उनसे कहा 'यह कैसे हो सकता है?' (जॉन ३.६)

यह कैसे हो सकता है, यह मैं नहीं जान सकता था, जब तक चैतन्य का अनुभव नहीं किया था। यही बात उस अमरीकी व्यक्ति को कैसे समझायी जा सकती थी। और मुझे बाईबल का संदर्भ देकर पुनर्जन्म की बात कर रहा था। बेचारा! जब तक वह चैतन्य लहरियों का अनुभव नहीं कर लेता वह नहीं समझ पायेगा कि वह कह क्या रहा है।

निर्विचार चेतना में हम अपने आप (आत्मा) से संपर्क करते हैं। इसलिए निर्विचारिता का इतना महत्व है। जिस प्रकार आत्मा हमारे शारीरिक, भावनात्मक व मानसिक शरीर तक सीमित नहीं है, आत्मा का ज्ञान ब्रह्मांड सृष्टि का ज्ञान है। आत्मा के ज्ञान से, दैवी शक्ति का चैतन्य लहरियों में परिवर्तन द्वारा ही, आत्मा के अस्तित्व की अभिव्यक्ति भी होती है।

''जो स्व के इस सत्य को जानता है, इसका ध्यान करता है वह जानता है कि हर चीज़ आदि उर्जा, वायु, अग्नि, जल तथा अन्य तत्व-मन, वाणी, इच्छा, पवित्र मंत्र तथा ग्रंथ और तो और सारा ब्रह्माण्ड-इसी से जन्म लेता है।''

- (छन्दोग्य उपनिषद)

सहजयोग मानव चेतना में एक नया आयाम खोलता है; ईश्वर का साम्राज्य। सहज चेतना की अभिव्यक्ति ही, ईश्वर की ओर से मानव जाति को महान उपहार है।

वास्तव में पिछले अवतारों, गुरुओं के कथनों में अब संबंध स्थापित करना संभव हो सका है, न सिर्फ आत्मा की चाह द्वारा समझने के लिए, बल्कि अनुभव के स्पष्ट सत्य द्वारा।

''परमात्मा का साम्राज्य दिखने वाले लक्षणों के साथ नहीं आयेगा, न ही वे यह कहेंगे कि यह यहाँ है अथवा वहाँ है। स्वयं देखो कि परमात्मा का साम्राज्य तुम्हारे भीतर ही है।''

- ल्यूक (१७–२०)

अरे जागो! क्या तुम्हे मालुम नहीं कि यह वही है जिसे तुम ढूँढ़ रहे हो?

प.पू. श्रीमाताजी की सहजयोग खोज दो अर्थों में ऐतिहासिक है, प्रथम यह एक निश्चित पूर्व घोषित समय पर हुई है, तथा यह खोज भविष्य के इतिहास की धारा को आकार देगी। प.पू.श्रीमाताजी पिछले महान अवतारों के महान कार्य पूरा कर रही हैं। यह कोई संयोग नहीं है कि संस्कृत का शब्द 'स्वर्ण-युग' ही सतयुग है। हो सकता है इटली में रहने वाले ईसाई संत जोएचिम [Joachim of fiore (1145-1202)] सही हों, जिसने भविष्यवाणी की थी कि पिता के युग (भगवान कृष्ण) के बाद पुत्र का युग (जीसस क्राइस्ट-महाविष्णु) तथा इसके बाद आदि शक्ति का युग आएगा, जो ज्ञान व पूर्णता लाएंगी। वर्ष १२६० में तीसरे युग का आरंभ होगा तथा इसी में स्वर्ग का साम्राज्य पृथ्वी पर आएगा। हो सकता है समय का आकलन सही न हो, किन्तु युग का आगमन विचारणीय है।

५ मई सन १९७० को भारत में प.पू.श्रीमाताजी निर्मला देवी के अवतरण ने मानवीय दृष्टिकोण से तथा मानव जाति की भलाई के लिये यह खोजा कि किस प्रकार कुण्डलिनी जागरण की संपूर्ण विद्या प्राप्त की जाये तथा कैसे इसे एक सामूहिक घटना बनाया जाये। इस प्रकार उन्होंने सामूहिक

स्तर पर उत्क्रान्ति के लिये आवश्यक ऐतिहासिक संभावना का निर्माण किया, समाज में व्याप्त अराजकता को समाप्त करने के लिये बोध की एक नई श्रेणी प्रस्तुत की। इस प्रकार उन्होंने सीमित एवं असीमित के बीच की खाई भर दी। इस अनूठे व्यक्तित्व की अनुकंपा की बदौलत मानवजाति के सम्मुख स्वर्णयुग आरंभ हो गया है।

श्रीमाताजी से मिलने के पहले, मैं अपेक्षाओं से भरा हुआ था। एक दैवी-व्यक्तित्व के आकार तथा आचार को लेकर मेरे अपने ख्याल थे। फिर भी, ये सभी मानसिक कल्पनायें उनके बहुत ही सरल तथा अबोध स्वभाव के आगे विलीन हो गईं। मैं भूल ही गया था कि भारत में उन्हें 'आदिशक्ति' माना जाता है तथा मुझे उन्हें उस दृष्टि से देखना चाहिये। किंतु मेरे अनुभव ने धीरे-धीरे मुझे यह तथ्य स्वीकार करा दिया। अन्य हजारों लोगों के साथ मैंने उनकी परम सच्चाई तथा उनके आश्चर्यजनक आध्यात्मिक स्वभाव का प्रमाण प्राप्त किया। हमने न सिर्फ नई चेतना के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया अपितु इसे अपने आसपास फैलाने की वास्तविक तकनीक तथा शक्तियाँ भी प्राप्त कीं। हम इस प्रकार पूरी तरह विश्वस्त हैं कि प.पू.श्रीमाताजी निर्मलादेवी ही वर्तमान युग में दैवी अवतार हैं। ये शब्द सच्चे हैं। यह सत्य है। इस पुस्तक का पाँचवा भाग विशेष रूप से उनके अवतरण के महान समाचारों को समर्पित किया गया है। आप उनके स्वभाव को जानकर बहुत आश्चर्य करेंगे जब मैं सहजयोग के ज्ञान को आपके सम्मुख प्रस्तुत करूंगा, यह ज्ञान उन्होंने अपनी अनुकंपा से असंख्य सहजयोगियों को दिया है। अतः, विनम्रता के साथ मैं आपके सम्मुख दैवी-ज्ञान रहस्योद्घाटन में ये अनमोल मोती रख रहा हूँ।

भाग - ३

दैवीज्ञान रहस्योद्घाटन

''**तब** उसने मेरी आँखों में देखा और कहा, ''मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा।''

जब उसने ऐसा कहा, तब मैंने अपने शरीर में हवा का एक तीव्र झोंका आता महसूस किया। तथा मेरा संकोच खत्म हो गया।''

जीजस, मानव का पुत्र,
खलील ज़िब्रान

'सह' अर्थात् है साथ, 'ज' का अर्थ जन्म से तथा 'योग' का अर्थ होता है मिलन। सहजयोग बताता है कि प्रत्येक व्यक्ति इस क्षमता के साथ जन्म लेता है कि वह दैवी सत्ता (जो अनन्त है, सत्य है) से जुड़ सके। सहजयोग इसी क्षमता को वास्तविकता तक लाता है। अनायास ही सहज में मोक्ष प्राप्त करने की युक्ति का नाम सहजयोग है।

अपनी एक मोहक छवि में श्रीमाताजी कहती हैं कि, ''कुण्डलिनी एक अवशिष्ट दिव्य शक्ति है जो रीढ़ के अन्त में स्थित त्रिकोणाकार अस्थि में रहती है । यह आपके जीवन (Being) के बीज की अंकुरण शक्ति है । यह बीज सहजयोग द्वारा अंकुरित होता है। मैं उस माली की तरह हूँ जिसने अपने बगीचे में बीज बोये हों और वह उनमें थोड़ा पानी डालता हो। पहले केवल कुछ फूल ही निकले, किंतु पुष्पन बहार के समय सामूहिक आत्मसाक्षात्कार की सामूहिक फुलवारी निकलने लगी । यह दैवी प्यार जो मैं देती हूँ वह आपका जन्मसिद्ध अधिकार है क्योंकि यही मानवीय उत्क्रान्ति की पराकाष्ठा है जिसका वचन पवित्र ग्रंथों में दिया गया था।''

जैसा पूर्व में कहा गया है, यदि साधक उचित स्थिति में है तो प.पू.श्रीमाताजी की उपस्थिति में कुण्डलिनी उठती है क्योंकि कुण्डलिनी जानती है कि श्री माताजी कौन हैं। कुण्डलिनी तीसरे नेत्र (आज्ञा चक्र) तक बिना

कष्ट दिये पहुँच जाती है; व्यक्ति पूर्णतया शान्त व निर्विचार, किन्तु पूर्ण होश में होता है। कुण्डलिनी अन्तिम चक्र सहस्रार में तालू को भेदती हुई पहुँचती है। साधक को चैतन्य की शीतल लहरियाँ महसूस होने लगती हैं।

यह इतनी सरल प्रक्रिया है कि अविश्वसनीय सा लगता है। प.पू.श्रीमाताजी हँसते-हँसते कहती हैं – ''प्रत्येक महत्वपूर्ण चीज़ को सरल होना पड़ता है। जैसे यदि आपको सांस लेने की प्रक्रिया सीखने के लिये प्रयत्न करना पड़ता अथवा पुस्तक पढ़नी पड़ती....... तो आप जीवित नहीं रहे होते।''

एक के बाद एक मानव की पिछली अवस्थाएं, मानव के जागरूक हुए बिना घटित हुई। श्रीमाताजी कहती हैं, ''अब मानव का विकास, मानव स्थिति से आगे, मानवीय ढ़ंग से ही होगा – अर्थात् जागरूकता से ही। आप उत्क्रांति के घटित होने तथा उद्भव प्रक्रिया के प्रति जागृत रहेंगे। एक अण्डा नहीं जानता कैसे वह पक्षी में परिवर्तित हो जाता है, किन्तु मनुष्य को एक सहजयोगी के रूप में अपनी उत्क्रांति को जानना तथा अनुभव करना होगा।''

'मानवीय ढ़ंग' से प.पू.श्रीमाताजी का क्या तात्पर्य है? वैज्ञानिक अन्वेषण के क्षेत्र में, कोई भी महान खोज ब्रह्माण्डीय अचेतन द्वारा एक विशिष्ट अनुसंधानकर्ता को एक रहस्योद्घाटन प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए, विद्युत को लें। जैसे ही मनुष्य ने इसकी खोज को इस्तेमाल करना शुरू किया विद्युत उर्जा के नियमों, गुणों व उपयोगों का प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार 'सहजयोग' भी आगे बढ़ रहा है।

हमें याद रखना चाहिए कि कोई भी खोज ज्ञान की उन्नति के साथ क्रमिक रूप से तैयार होती है। इसी प्रकार हम अपने आध्यात्मिक उत्थान की शीर्ष स्थिति का सम्बन्ध उन पिछली खोजों एवं खोजकर्ताओं से करते हैं जिनके कारण हम 'सामूहिक चेतना' की अन्तिम अवस्था पर आ सकें। जब हम इस नई चेतना में प्रवेश करते हैं तो हम खोजी हुई ऊर्जा का उपयोग उसके गुणों के आधार पर करते हैं। हम उन पूर्ववर्ती खोजकर्ताओं से संबंध बना सकते हैं जो

एक मानव व्यक्तित्व के केन्द्रबिन्दु हैं तथा रीढ़ की हड्डी में विभिन्न केन्द्रों (चक्रों) में देवताओं के रूप में निवास करते हैं। ये देवता वे आयोजक हैं जो जीवन्त तत्व के प्रतिरूपों, शारीरिक प्रक्रियाओं एवं मानसिक घटनाओं को लयबद्ध करके एक मनुष्य को कार्यात्मक प्राणी बनाते हैं।

सहजयोग में पारंगत होने के बाद व्यक्ति नई चैतन्यमय चेतना का प्रयोग करने की युक्ति विकसित करता है।

मध्य उत्क्रान्ति पथ (सुषुम्ना नाड़ी) में स्थित देवताओं से वास्तव में उनके नामों का उच्चारण करके सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

जब हम किसी विशेष देवता का नाम (मंत्र) लेते हैं, तब चैतन्य लहरियों द्वारा हम शरीर के उस विशेष भाग में प्रतिक्रिया अनुभव करते हैं। जब कोई चक्र बाधित होता है, कुण्डलिनी आगे बढने से रुक जाती है तब हम उसे कभी - कभी नंगी आँखों से उस चक्र में स्पंदन करते (Pulsating) हुए भी देख सकते हैं। सम्बन्धित देवता जो उस चक्र का नियंत्रण करता है, उनका नाम (मंत्र) लेने मात्र से ही चक्र की पकड़ दूर हो जाती है। हम परमात्मा के ब्रह्मांडीय योजना के चेतन भागीदार बन जाते हैं।

आज जो भी घटित हो रहा है, उसकी भविष्यवाणी विभिन्न सभ्यताओं के धर्मग्रंथों द्वारा पहले ही की जा चुकी है। सहजयोग नए उत्क्रांतिकारी समतल में भेदन को अभिव्यक्त करता है, जिसकी मानव जाति प्रतीक्षा कर रही थी। यह ज्ञान हमें ब्रह्माण्डीय अचेतन के माध्यम से प्राप्त हुआ है। अब इसकी घोषणा करने का समय आ गया है। सहजयोग की सुन्दरता सामूहिक आत्मसाक्षात्कार में पुष्पित होती है। वैयक्तिक योगी (लघुजगत) समाज (दीर्घजगत) तक महान आदि ब्रह्मांडीय सत्ता विराट का ज्ञान प्रसारित करता है। यही दैवी रहस्योद्घाटन का चरम बिन्दु है, जो सभी पूर्ववर्ती रहस्योद्घाटनों की व्याख्या करता है, उन्हें समग्र करता है तथा उन्हें पूर्ण करता है। यह परमात्मा तथा उनकी कृति मानव के बीच सामाजिक अनुबन्ध की पूर्ति है।

बीस वर्ष पूर्व एक विद्वान ने सहज के बारे में लिखा:

''आनन्द के तादात्म्य में, एकत्व के वर्णनातीत अनुभव में व्यक्ति सहजावस्था को प्राप्त होता है। सहजावस्था अनुबन्धन से परे सत्ता की तथा विशुद्ध सहजता की स्थिति है। इन सभी पदों का अनुवाद करना वाकई में कठिन है। इनमें से प्रत्येक पद परम अद्वैत की विरोधाभासी स्थिति को व्यक्त करता है जिसकी परिणति महासुख में होती है।''

आज प.पू.श्रीमाताजी की कृपा से यह स्थिति मानव जाति के लिए खुली हुई है।

३ - मानव लघु जगत में ब्रह्माण्ड का रहस्योद्‌घाटन

''यह शरीर एक महल है और ईश्वर का घर है। इसके भीतर परमात्मा ने असीम ज्योत रखी है।''

- सदगुरू बाबा नानक

किसी अन्य वैज्ञानिक खोज की तरह, सहज योग मात्र उस ज्ञान को यथार्थ में ला रहा है, जो अब तक असंभाव्य था। तथापि, इस खोज के मूल स्वरूप का वर्तमान रूप में आया बदलाव वास्तव में एक उत्परिवर्तन है। 'मान्डूक्य उपनिषद' में कहा गया है', ''जो भी 'ॐ' को जानता है वह 'आत्मा से आत्मा' बन जाता हैं।'' 'सहज' का उद्देश्य, मात्र 'ज्ञाता' नहीं है, जैसा कि अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों में होता है:यह ज्ञाता का स्व, आत्मा है। ज्ञाता, ज्ञान का उद्देश्य तथा जानने की क्रिया बोध में घटित घटना द्वारा चेतना में अनायास ही समग्र हो जाते हैं। यह सत्य, चेतना व आनन्द का मिलन बिन्दु है।

पिछली सहस्राब्दि के दौरान यह पावन कीमियागिरी (Alchemy) की क्रिया संभव थी किन्तु जिन्होंने इसे खोजा था उन्होंने इसे अत्यन्त गोपनीयता से सुरक्षित रख लिया। अब वह समय आ गया है जब पुराने रहस्यों को मानव की बुद्धि व चेतना के समक्ष खोल दिया जाए। क्योंकि यही समय आदिशक्ति का है, जैसा इसा मसीह द्वारा घोषित किया गया था। यह सत्य है कि प्रारम्भिक ईसाईयों ने इस घटना की शीघ्र अभिव्यक्ति की अपेक्षा की थी। किन्तु वे पीटर का वचन भूल गए : '' प्रियजनों इस एक बात को मत भूलो कि ईश्वर के साम्राज्य में एक दिन हजारों वर्षों का तथा हजारों वर्षों का एक दिन होता है।''

(पीटर का दूसरा पत्र, ३.०)

दूसरे दिन (ईश्वर का) की शाम नजदीक आ रही है तथा समय आ रहा है। वे सब लोग जो पिछले जन्मों में प्रतीक्षा कर रहे थे उन्हें अब सुनना चाहिए। सहज योग ईश्वर के राज्य के ज्ञान की लम्बी खोज को उनके सम्मुख प्रकट कर रहा है।

हम जानते हैं आत्मसाक्षात्कार अर्थात् हमारा दूसरा जन्म, ही परमात्मा के साम्राज्य में प्रवेश है। इस साम्राज्य में अनेक प्रान्त हैं, जिनके बारे में हम नहीं जानते हैं। इसलिए हम आपको आमंत्रित कर रहे हैं कि आप इसमें प्रवेश करें व स्वयं पता लगाएं। इसके लिए हर एक के शरीर में एक यंत्र हैं जिसे 'कुण्डलिनी' कहते हैं, जो हमें हमारा दूसरा जन्म देती है। यह मनोशरीर यंत्र है जिसके माध्यम से स्वर्ग का साम्राज्य पृथ्वी पर लाया जा सकता है। हालांकि यह वर्णन संपूर्ण नहीं है। हमें उम्मीद है कि परम पूज्य श्रीमाताजी एक दिन हमें पुस्तक प्रदान करेंगी जिसमें मनुष्य के दूसरे जन्म व आत्मा के उत्थान की प्रक्रिया का वर्णन होगा। वे सचमुच वादा करती हैं, ''मैं तुम्हे सभी रहस्य बताऊँगी।''

हमारे क्रमिक विकास की संरचना पदार्थ की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म है तथा इसे किसी सर्जन के चाकू के सहारे नहीं समझा जा सकता, यद्यपि यह मानव शरीर के अन्दर कुछ विशिष्ट स्थानों पर स्थित है। किन्तु वे लोग जिनके पास महान अनुबोधक शक्ति है वे ध्यान में इन्हें देख पाए हैं। वर्तमान युग में इनमें से कुछ सन्तों ने कहा है कि उन्हें इसके बारे में सब कुछ मालूम है तथा उन्हें परम पूज्य श्रीमाताजी के अद्वितीय अवतरण का भी ज्ञान है।

मानवीय मनौदैहिक आध्यात्मिक यंत्र जिसे सहजयोगी अपने भीतर लहरों के बोध के माध्यम से अनुभव करके खोजता है, वह कोई 'यूं-ही' की गई रचना नहीं है। इस सम्बन्ध में हम प.पू. श्रीमाताजी की खोज का परीक्षण चैतन्य लहरियों के अनुभव से कर पाए हैं। तथा जिस सत्य का अनुभव हमने किया है उसकी जानकारी अब जनसाधारण तक पहुँचाई जा रही है। इस प्रकार हम भली-भाँति विश्वस्त हैं कि उनका यह ज्ञान प्रामाणिक एवं मौलिक है।

सभी धर्म एवं सहजयोग भी यही कहता है कि, 'ईश्वर एक है।' इसका यह अर्थ नहीं है कि वह (ईश्वर) गुड़ की डली या जिब्राल्टर की चट्टान की तरह है। यहाँ तक कि गुड़ की डली में भी हजारों कण होते हैं। जब हम कहते हैं 'ईश्वर एक ऊर्जा है', तो हमें यह याद रखना पड़ेगा कि ऊर्जा रुपान्तरशील है तथा इसका अनेक प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। बहुतायता से

अभिन्नता अलग नहीं है। मानव शरीर में लगभग साठ लाख करोड कोशिकाऐं हैं। इसमें कई अंग जैसे हृदय, मस्तिष्क, लीवर आदि हैं, जो विशिष्ट रूप में अपने कार्य करते हैं। मनुष्य अनेक कार्य करता है, अनेक छवियाँ रखता है तथा विभिन्न रिश्तों को कायम रखता है। वह एक ही समय में भाई, पिता व पुत्र हो सकता है। ईश्वर के एक होने से यह नहीं समझना चाहिए कि उसमें केवल एक गुण या पक्ष या एक ही कार्यक्षमता है। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं, ''वह जो एक है, सर्वव्यापी, सर्वकर्ता, सर्वशक्तिमान है तथा वह मनुष्य से कहीं अधिक सूक्ष्म एवं विशाल है। उसे अपने आविर्भाव में अत्यंत जटिल होते हुए भी पूर्ण समग्र होना होता है। आगे श्रीमाताजी कहतीं हैं, ''जब वह अपनी विभिन्न छवियाँ प्रकट करता है, तो सृष्टि आरंभ होती है।''

प.पू.श्रीमाताजी हमें बताती हैं कि इस भौतिक जगत की रचना से पूर्व उस एक परमात्मा ने अपने विभिन्न पक्षों को विभिन्न दैवी रूपों में प्रकट किया। इस पृथ्वी ग्रह की सबसे प्राचीन धार्मिक परम्परा आर्यों को इन दैवी रूपों के अस्तित्व का ज्ञान था। इन देवताओं के आपसी सम्बन्ध उस नमूने को प्रस्तुत करते हैं जिससे मूल दैवी उर्जा इस ब्रह्माण्ड को सृजित करती है। इसका अर्थ हुआ कि सृष्टि-उत्क्रान्ति की कार्यप्रणाली दैवी उर्जा के इन विभिन्न रूपों की पारस्परिक क्रियाओं पर निर्भर करती है। जब हम उन्हें उनकी आवश्यक एकता के अनुबोधन के माध्यम से एक साथ मानते हैं तो हम उन्हें एक महान आदि सत्ता के विभिन्न अंगों के रूप में देखते हैं। इस आदि सत्ता का दर्शन श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कराया था। इसका नाम 'विराट' दिया गया। अपनी आने वाली पुस्तक में श्रीमाताजी हमें विराट एवं संपूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के बारे में बताएंगी।

जिस प्रकार बाँसुरी में विभिन्न छेदों में वायु-प्रवाह करने पर संगीत तैयार होता है। उसी प्रकार आदिशक्ति सर्वशक्तिमान परमात्मा को उसके सात प्रमुख रूपों में प्रकट करती हैं। ये रूप परमात्मा (देवी-देवता) की अभिव्यक्ति से सुसंगत हैं तथा विभिन्न धर्मों के द्वारा इनकी आराधना की जाती है। जैसे बाँसुरी के सात छिद्र होते हुए वायु एक ही है, उसी प्रकार विराट एक हैं किंतु उसके

सात प्रमुख रूप हैं। ये सात रूप 'विराट' के सार्वभौमिक शरीर में स्थित सात चक्रों के अनुरूप हैं। किन्तु विराट एक ही है, जो आदि साक्षी तथा आदिकर्ता के बीच एकता को भी व्यक्त करता है। अन्य शब्दों में 'विराट' परमात्मा की संपूर्ण अभिव्यक्ति का द्योतक है, जिसे आदिशक्ति प्रस्तुत करती है। किन्तु मनुष्य के लिए विराट का समग्र प्रकटीकरण मानव जाति के पूर्व इतिहास में कभी भी घटित नहीं हुआ।

विराट में हर वह वस्तु समाई हुई है, जो अस्तित्व में है। उदाहरण के लिए देवता एवं अन्य उच्च कोटि के जीव विराट के अहं (सामूहिक अतिचेतन) वाले भाग में रहते हैं। इसके विपरीत नरक का स्थान विराट के प्रति अहं (सामूहिक अवचेतना) वाले भाग में है। स्वर्गदूत तथा देवदूत भी होते हैं, जो महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। हनुमानजी सामूहिक अतिचेतन को तथा भैरवनाथ जी सामूहिक अवचेतन को संभालते हैं। जिस प्रकार ब्रह्माण्डीय शरीर आदिशक्ति को प्रकट करता है, विराट की तुलना उस प्रिज्म से की जा सकती है जो प्रकाश को इन्द्रधनुष के रंगों में बदल देता है। अन्य उदाहरण के रूप में विराट को हम 'ऊर्जा प्रकट करने वाली मशीन' भी कह सकते हैं। यह मशीन ऊर्जा को खाती भी है, पचाती भी है। तथा इस उर्जा का बचा हुआ अपशिष्ट ही विराट का मल है जो कि राक्षस हैं।

एक चींटी के लिए मानव सभ्यता समझना कहीं अधिक आसान होगा, बजाय कि हम विराट के मस्तिष्क को समझ सकें। चाहे तो हम इसे सर्वव्यापी चेतना व चित्त कह सकते हैं, जो सर्वज्ञ तथा सत्य का रचयिता है। प्राचीन लोगों ने इसे सर्वशक्तिमान भाग्यविधाता कहा। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, शायद यह 'ब्रह्माण्डीय अचेतन' है।

विराट एवं ऐतिहासिक उत्क्रान्ति के मध्य संबंध मुख्यत: दो प्रकार से विकसित होता है। पहला, कुछ देवता अवतार के रूप में जन्म लें व सक्रिय रूप से मानव जाति की अगुआई करें। दूसरा, विराट की ब्रह्माण्डीय रचना समग्र रूप में प्रत्येक मानव में उसकी पूर्णता के आध्यात्मिक यंत्र के रूप में स्थापित है। इस प्रकार आत्मसाक्षात्कार हमारे अन्दर के विराट के जागरण का संकेत है।

एक आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति के शरीर में चक्र, विराट के मूल चक्रों के प्रतिबिंब के अनुरूप हैं। इन चक्रों में देवता उर्जा को संचालित एवं प्रसारित करते हैं। परम पूज्य श्रीमाताजी कहती हैं कि, 'आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से मानवीय सूक्ष्म-सृष्टि कम्प्यूटर ब्रह्माण्डीय कार्यक्रम से जुड़ जाता है।

सूचना, स्नायुतंत्र से चैतन्य के रूप में बहना शुरू हो जाती है। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव, व्यक्तित्व संरचना तथा उसकी नियति इस आन्तरिक यंत्र तथा ब्रह्माण्डीय आदिरूप के बीच सम्बन्धों पर निर्भर करती है। किन्तु साक्षात्कार के पूर्व हम इससे परिचित नहीं होते हैं । हम बेबस होकर विभिन्न मनोदशाओं तथा व्यग्र स्थितियों से गुजरते हैं, बिना यह जाने कि क्या हो रहा है तथा क्यों हो रहा है। यह इसलिए कि इस ब्रह्माण्डीय संरचना का हमारे दैनिक जीवन पर इतना जबरदस्त प्रभाव पड सकता है कि अब यह जरूरी हो गया है कि इसके बारे में बताया जाए।

चित्र 5 में विराट को एक मानवरूपी रेखाचित्र के रूप में दर्शाया गया है। यह साफ होना चाहिए कि विराट पूर्ण रूप से भौतिक आयाम से परे उस चेतना-उर्जा के स्तर पर विद्यमान है जिसे हम समझ नहीं सकते। यद्यपि चेतना को महसूस किया जा सकता है। तथा विराट का यही उद्देश्य है कि मानव जाति को इस चेतना के मार्ग पर आगे बढाया जाए। हालाँकि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को पूर्ण विराट का दर्शन कराया था, उस समय प्रभु ईसा मसीह तथा कल्की किसी एक साकार अभिव्यक्ति में प्रकट नहीं हुए थे। इस पुस्तक के लिखे जाने के समय तक कल्की का अभी प्रादुर्भाव नहीं हुआ है।

मैं दोहराना चाहुँगा कि भूतकाल में विराट के किसी चक्र अथवा केन्द्र की पूजा विविध धर्मों में की जाती रही होगी, फिर भी आदि दैवी सत्ता की संपूर्ण आकृति की समझ परम पूज्य श्रीमाताजी निर्मला देवी के आगमन से पूर्व सम्भव नहीं थी।

सूक्ष्म मानव सृष्टि (Human microcosm) के दृष्टिकोण से -

प्रत्येक चक्र मेल खाता है - १) परमात्मा के एक विशिष्ट पहलू से

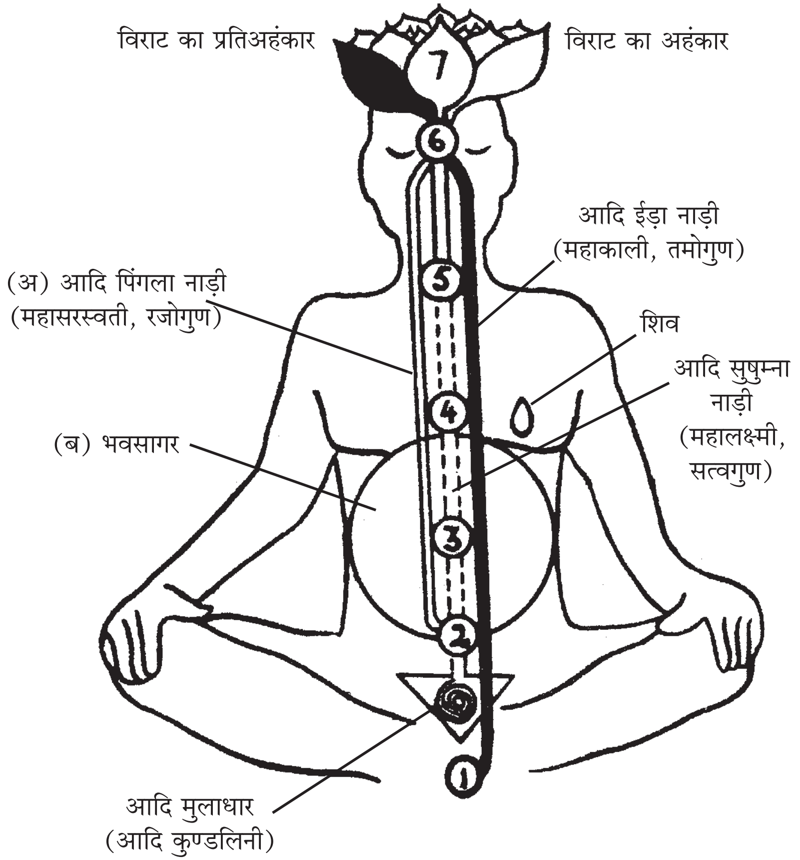

चित्र ५ विराट का एक मानवरूपी रेखाचित्र

२) मानव की व्यक्तिगत उत्क्रान्ति में विशिष्ट शारीरिक मनो-उर्जात्मक भूमिका से

३) विराट की ब्रह्माण्डीय उत्क्रान्ति के कार्यान्वयन के एक विशिष्ट स्तर से

४) प्रत्येक मानव की मूल संरचना विराट की संरचना का अनुगमन करती है। यह ब्रह्माण्डीय व सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय उत्क्रान्ति का यंत्र है।

किंतु यह पूर्ण रूप से केवल विराट में ही प्रकटित है।

विराट के चक्र	**चक्र के स्वामी**	**ईश्वर का स्वरूप**
७ सहस्रार चक्र	माताजी निर्मला देवी + श्री कल्की	साक्षात्कार, समग्रता, सामूहिक चेतना
६ आज्ञा चक्र	बाँया-श्री महावीर	स्व-अहिंसा,
	मध्य-प्रभु ईसामसीह व माता मेरी	पुनरूत्थान, क्षमा, जगत-शक्तियों पर नियंत्रण, सत्य का प्रकाश
	दायाँ-श्री गौतम बुद्ध	दूसरों के प्रति अहिंसा
५ विशुद्धि चक्र	श्री राधा+कृष्ण	ईश्वर की महानता, लीला रूपी साक्षी भाव, अन्तरात्मा, विवेक, दैवी कूटनीति
४ हृदय या अनहत चक्र	बाँया - श्री शिव-पार्वती	अस्तित्व, स्व-आनन्द
	मध्य-श्री दुर्गा	माँ की सुरक्षा, संरक्षण, आत्मविश्वास
	दायाँ-श्री सीता राम	आदर्श मानव आचरण, पिता की सुरक्षा

३ मणिपुर चक्र या नाभि चक्र	श्री लक्ष्मी-विष्णु	उत्क्रान्ति, धर्म, कुशल-क्षेम
२ स्वाधिष्ठान चक्र	श्री ब्रह्मा सरस्वती	सृजनात्मकता, सौंदर्यबोध
१ क) मूलाधार	श्री गौरी	कुण्डलिनी, कौमार्य पावनता
१ मूलाधार चक्र	श्री गणेश	अबोधिता, बचपन, विवेक, दुष्टों के प्रति क्रोध

इन चक्रों का नियन्त्रण करने वाले देवता दैवी उर्जा के 'मुख्य आयोजक' हैं।

नाड़ियाँ (Channels) -

विराट के शरीर में उर्जा की वाहिकायें पिंगला, इड़ा तथा सुषुम्ना के रूप में हैं। ये वाहिकायें आदिशक्ति की त्रिविध कार्यप्रणाली को व्यक्त करती हैं, जो विराट के स्वभाव से मेल खाती हैं। भारतीय 'ब्रह्म शास्त्र' में इन्हें त्रिगुण कहा गया है।

१. **इड़ा** - विराट की इड़ा नाड़ी का नियंत्रण आदिशक्ति का 'महाकाली' का पक्ष करता है। यह अस्तित्व शक्ति से सम्बन्धित है। इस नाड़ी का स्वभाव तमोगुणी निष्क्रिय मनोदशा है।

२. **पिंगला** - विराट की पिंगला नाड़ी का नियंत्रण आदिशक्ति का 'महासरस्वती' पक्ष करता है। यह रचनात्मक शक्ति से सम्बन्धित है। इस नाड़ी का स्वभाव सक्रिय मनोदशा है।

३. **सुषुम्ना** - विराट की सुषुम्ना नाड़ी का नियंत्रण आदिशक्ति का 'महालक्ष्मी' पक्ष करता है। यह उत्क्रान्ति शक्ति से सम्बन्धित है। इस नाड़ी का स्वभाव उत्क्रान्ति के माध्यम से रहस्योद्‌घाटन है।

मानवीय समझ की दृष्टि से हम इस प्रकार इन तीन गुणों की पहचान कर सकते हैं।

तमोगुण - महाकाली का क्षेत्र प्रत्येक परमाणु के केन्द्रक का पदार्थ में विद्युत चुम्बकीय (Electromagnetic) लहरियों का, पौधों और प्राणियों में जीवन शक्ति का तथा उच्च प्राणियों में जीवन की धड़कन का द्योतक है। मनुष्य में महाकाली का क्षेत्र इच्छा के रूप में विद्यमान है तथा यह भावनात्मक शरीर को नियंत्रित करता है। इसका विविध निरूपण अलग-अलग जगह किया गया है। जैसे ताओं की यिन (Yin), हीगल के तर्कशास्त्र की अभिधारणा, सभ्यता के स्थान पर प्रकृति; यह स्त्री रूपी विचार में नकारात्मक तथा निष्क्रिय है। मानव ने बोरोक के स्थापत्य, रूमानी साहित्य, कविता तथा संगीत में इस तत्व की अभिवृद्धि की है। इस मार्ग से परमात्मा तक चलने वाले भक्ति योग पथ का अनुगमन करते हैं।

रजो गुण - महासरस्वती का क्षेत्र विराट के उस स्वभाव को व्यक्त करता है, जो तत्व, विविध पदार्थ, नक्षत्र मंडल (Constellation) सौर मंडल एवं पृथ्वी की रचना करता है। यह मानव के मस्तिष्क का नियंत्रण करता है। यह क्षेत्र विविध रूपों में वर्णित है। जैसे ताओ का यांग (Yang), हीगल की विरोधी धारणा में प्रकृति के स्थान पर संस्कृति व सभ्यता के विचार में वर्णित है। यह पुरूष रूपी, सकारात्मक एवं सक्रिय है। मनुष्य ने शास्त्रीय संगीत, भवन निर्माण, तर्क, न्याय, सामाजिक संगठन, दर्शन शास्त्र विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में इसकी अभिवृद्धि की है। इस मार्ग पर चल कर परमात्मा तक पहुँचने वाले कर्मयोग पथ का अनुगमन करते हैं।

सतो (सत्व) गुण - महालक्ष्मी का क्षेत्र वह आयाम है जहाँ विराट ही स्वयं लक्ष्य है। यह विभिन्न अवतारों को भेजकर सृष्टि उत्क्रान्ति के पथ का मार्गदर्शन कर रहा है। विराट के चक्रों पर वास्तविक देवता विराजित हैं; उसके मध्यमार्ग सुषुम्ना नाड़ी पर। इस नाड़ी का स्वभाव है दैवी-रहस्योद्घाटन, संश्लेषण एवं समग्रता।

मानव ने इसे संतुलन, संश्लेषण व सामंजस्य की पद्धति के रूप में महसूस किया है तथा हेगल के तर्कशास्त्र में संश्लेषण में इसे समझा है।

मानवीय प्रतिभा के उन कारनामों से इस क्षेत्र की अभिवृद्धि हुई है, जो लय की पूर्णता को व्यक्त करता है। जैसे चिओप्स के पिरामिड, शाहजहाँ का ताजमहल या एक्रोपोलिस पर अथेनियम पार्थेनान। कला, दर्शन इत्यादि में पूर्णता की प्रत्येक अभिव्यक्ति इस क्षेत्र से सम्बन्धित है। इस मार्ग पर चलकर परमात्मा तक पहुँचने वाले ज्ञान योग पथ का अनुगमन करते हैं।

मानव में स्थित अवशिष्ट दैवी शक्ति कुण्डलिनी का जागरण करके सहजयोग सभी योगों को समन्वित करता है जो समग्रता का परम योग है।

मूल उर्जा के तीन विभेद विराट के संचालन के मात्र तीन तरीके ही नहीं हैं। यह स्थूल स्तर पर हमारे स्वचालित अनुकंपी नाड़ी तन्त्र के तीन पक्षों को भी नियंत्रित करते हैं : रचयिता (रजोगुण) की क्रिया द्वारा दायें अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र का, अस्तित्व शक्ति (तमोगुण) द्वारा बायें अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र का, उत्क्रान्ति शक्ति द्वारा पराअनुकंपी नाड़ी तन्त्र का।

इसके आगे सृष्टि की संपूर्ण प्रतिकृति मानव शरीर में कार्यरत है। मानव शरीर के चक्र विभिन्न स्तरों पर आदि चक्रों (विराट के) के देवताओं द्वारा प्रसारित उर्जा को परावर्तित करते हैं। साक्षात्कार से पूर्व हम कह सकते हैं कि मनुष्य के चक्रों के देवता सुप्तावस्था में है, जिससे व्यक्तित्व पूर्ण समग्र नहीं हो पाता । फिर भी चक्र बहुत महत्वपूर्ण कार्य करते हैं । वे प्राणी की उत्क्रान्ति क्षमता के संकेत पूरे नाड़ी तंत्र में ले जा कर प्रसारित करते हैं। जब अत्याधिक तनाव अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र के सम्बन्ध को चक्रों से तोड देता है तब ये संकेत तन्त्र की सुव्यवस्थित सम्बद्धता को बनाए नहीं रख पाते, तब कैन्सर जैसे रोग हो जाते हैं। आत्मसाक्षात्कार के पश्चात चक्रों के देवता जाग्रत हो जाते हैं तथा संपूर्ण मानव चेतना तंत्र (जैविक, अंतःस्रावी, आध्यात्मिक) समग्र हो जाता है। विराट की ब्रह्मांडीय संरचना तथा मानव नाड़ी तंत्र के बीच संबंध को परिकल्पनात्मक प्रस्ताव के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए तब तक कि यह प्रयोग के तौर पर आत्मसाक्षात्कार के दौरान तथा पश्चात सत्यापित न हो जाए। तत्पश्चात् यह प्रमाण दिया जा सकता है कि मंत्रों अथवा देवताओं के आव्हान का विभिन्न चक्रों पर असर पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि आपको

अपनी नाभि के आसपास दबाव महसूस होता है तो श्री विष्णु-लक्ष्मी मंत्रोच्चार से यह दबाव घटता चला जाता है और आराम मिलता है। ऐसा कई बार देखा गया है कि कुण्डलिनी भवसागर को पार नहीं कर पाती यदि आदिगुरू के पूर्व अवतरणों जैसे मोहम्मद साहब, जोरास्टर, नानक इत्यादि को नहीं माना जाता है। जब चैतन्य हमारी चेतना को ब्रह्माण्डीय कार्यक्रम से जोड देता है, तब धीरे-धीरे हमें अपने और विराट के बीच जीवंत सम्बन्ध का अनुभव होने लगता है।

विराट के आदि चक्रों पर विराजित देवता परमात्मा के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए श्री गणेश, दैवी-बाल्यावस्था की उत्कृष्ट पवित्रता हैं। श्री शिव परम सत्ता का आनन्द 'स्व' हैं। प्रभु ईसा मसीह परमात्मा के प्रकाश का सत्य हैं। हमारे शरीर में स्थित चक्रों के धीरे-धीरे और अधिक खुलने पर हम इन गुणों को अपने अन्दर विकसित करते हैं। यह दैवी प्रेम की इच्छा है कि बच्चे परमात्मा की पूर्णता के भागीदार हों। साक्षात्कार के पश्चात् हमारे अन्दर दैवी गुण प्रस्फुटित होते हैं और हम अपने मूल्यों का आनन्द लेने लगते हैं। एक साक्षात्कारी कवि ने श्रीमाताजी को लिखा, ''अब चंदन ने अपनी महक का आनन्द लेना शुरू कर दिया है।''

डेल्फी में अपोलो के मंदिर में अंकित शिक्षाओं पर सुकरात का ध्यान आकृष्ट कराया गया, ''स्वयं को जानो'', तब उन्हे मालूम हुआ कि स्वयं को जानने से वास्तव में संपूर्ण ब्रह्माण्ड को जानने की कुँजी प्राप्त हो जाती है। यह रहस्यमय अनुभव है कि सृष्टि की उत्पत्ति तथा उत्क्रान्ति का मार्गदर्शन करने वाली योजना मानव के 'अन्दर' निरूपित है।

४ - चेतना का उपकरण

''हे मित्र! यह शरीर ईश्वर की वीणा है।'' - कबीर

''अपनीताररहित वीणा बजाओ।'' - (एक ज़ेन सूक्ति)

चलिये, मानव सूक्ष्म सृष्टि (Human microcosm) की बात करते हैं। सबसे पहले हमें यह मानना चाहिए कि इसके बारे में हमारे पुराने सन्तों को आधुनिक मनुष्य से अधिक ज्ञान था। उदाहरण के लिए, ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में लिखा है :

''यह शरीर एक नगर है जिसे जीता नहीं जा सकता (अयोध्या)। इसमें नौ द्वार हैं तथा हर जगह नाड़ियाँ हैं, तथा प्राण इनके द्वारा कार्य करता है .... इनके द्वारा हम कार्य करते व जानते हैं। किन्तु इसमें सबसे मुख्य नाड़ी सुषुम्ना है जो रीढ़ की हड्डी में से मस्तिष्क तक जाती है। इस स्नायुतंत्र में जंक्शन (जालक) हैं जो शरीर के विभिन्न भागों का नियंत्रण करते हैं, इन्हें चक्र कहते हैं। आपको स्मरण रखना चाहिए कि ये चक्र रीढ़ में हैं व मस्तिष्क के उपरी भाग में हैं।''

इसी प्रकार गुरु वशिष्ठ ने श्री राम को कहा,''दो अति सूक्ष्म नाड़ियाँ होती हैं, जिन्हें इड़ा व पिंगला कहा जाता है। इस मांस के घर में इन्हें बायें एवं दायें भाग में रखा गया है तथा इनके विषय में कोई भी नहीं जानता है। शरीर के इस यंत्र में तीन जोड़े कमल हैं जिन्हें डोर द्वारा एक दूसरे के उपर रखा गया है।''

अत्यावश्यक शक्ति (प्राण) इनके द्वारा कार्य करती है। इनकी तथा इस प्रकार के अन्य वचनों की पुष्टि सहजयोग द्वारा होती है -

मानव शरीर में मुख्य रूप से तीन नाड़ियाँ होती है, जिनके द्वारा ऊर्जा प्रवाहित होती है, ये मुख्य नाड़ियाँ शरीर में आपस में जुड़ी हुई छोटी नाड़ियों

के समूह को नियंत्रित करती हैं। इन नाड़ियों को शरीरविज्ञान में तंत्रिका तंत्र/स्नायु तंत्र (Nervous System) कहा जाता है। मध्य तंत्र का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है : रीढ़ की हड्डी के भीतर सुषुम्ना के रूप में मध्य नाड़ी होती है, इस नाड़ी के स्थूल प्रादुर्भाव को परानुकंपी नाड़ी तंत्र (Para Sympathetic Nervous System) कहा जाता है। सुषुम्ना के दाहिनी ओर की नाड़ी को पिंगला नाड़ी कहते हैं जो दाहिनी अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र (Right side sympathetic nervous system) कहलाती है। सुषुम्ना के बायीं ओर इड़ा नाड़ी है जो बायीं अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र (Left side Sympathetic nervous system) कहलाती है। मध्य नाड़ी (सुषुम्ना) में हम सात केन्द्र (चक्र) पाते हैं, जो हमारे शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक व आध्यात्मिक जीवन को नियंत्रित करते हैं। ये चक्र रीढ़ की हड्डी के बाहरी भाग में जालक (Plexus) कहलाते हैं। हमारे शरीर में रीढ़ की हड्डी के अन्दर जितने चक्र और उनकी पंखुडियाँ (Petals) हैं, इसके बाहर भी उतने जालक और उपजालक हैं। चिकित्सा विज्ञान में इस व्यवस्था के बारे में बहुत सीमित जानकारी है, जिसे वे स्वचालित तंत्रिका तंत्र (Autonomic nervous system) अर्थात अपने आप काम करने वाला तंत्रिका तंत्र का एक भाग कहते हैं, जो अपने आप काम करने वाले अंगो जैसे हृदय, मांस पेशियाँ व पूरे शरीर की ग्रन्थियों से संबंधित है। यह मध्य व किनारे वाले तंत्रिका तंत्र में बँटा हुआ है। इसे दो भागों में बाँटा जा सकता है : अनुकंपी (बायाँ और दायाँ) तथा परानुकंपी। अनुकंपी का कार्य शरीर को आपातकाल के लिए तैयार करना है तथा परानुकंपी तंत्र का कार्य ऊर्जा को तैयार रखना, पुन:स्थापित करना तथा इसे संतुलित रखना है। स्वचालित नाड़ी तंत्र के अनुकंपी भाग का अस्तित्व छाती से कमर के नीचे वाले भाग तक, जबकि परानुकंपी भाग सिर पर रीढ़ के अंतिम सेक्रम भाग तक सीमित है। इस तंत्रिका तंत्र तथा मन की गतिविधि के बीच संबंध की आजकल मस्तिष्क की अन्त:स्रावी ग्रन्थियों (Neuro-Endocrinology) के माध्यम से छान-बीन की जा रही है। तंत्रिका तंत्र व आध्यात्मिक विकास के संबंध का विषय अभी तक वैज्ञानिकों को अज्ञात है। वास्तव में इसका ज्ञान, पूर्व के कुछ गिने-चुने हिन्दू

व बौद्ध संतों का विशेषाधिकार था। यह कहना मुश्किल है कि कितना अधिक या कितना कम, मध्य पूर्व के संतों को इसका ज्ञान दिया गया था। किन्तु अब हम विश्वास के साथ आशा कर सकते हैं कि मनुष्य का नया विज्ञान इस शक्तिशाली रहस्य की जटिल संपूर्णता को खोज लेगा।

पुनः श्रीमाताजी के वचन उद्धृत किये जाते हैं :

जब माता के गर्भ में भ्रूण दो से तीन माह का होता है तो चेतना की किरणों का पुंज मस्तिष्क द्वारा (सर्वव्यापी मूल ऊर्जा से निकल कर) अन्दर जा कर स्नायुतंत्र के चार पहलू वाली नाड़ियों में प्रत्यावर्तित होता है, जो इस प्रकार है :

१. परानुकंपी तंत्रिका तंत्र : सुषुम्ना नाड़ी : मध्य मार्ग

२. अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (दायाँ) : पिंगला नाड़ी : सूर्य नाड़ी

३. अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (बायाँ) : इड़ा नाड़ी : चन्द्र नाड़ी

४. मध्य तंत्रिका तंत्र : यह हमारे शरीर को भौतिक जगत से जोड़ने वाली कड़ी है।

तालू पर गिरा हुआ प्रकाश पुंज उसे केन्द्र में भेद कर सीधे रीढ़ के अन्दर गूदे (Medulla oblongata) में सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा पहुँचता है। (इस संबंध में ऐतर्य उपनिषद के पद ११ व १२ में श्री शंकराचार्य कहते हैं - ईश्वर की चेतना शरीर में सिर के उच्च भाग, 'सिर के मुकुट' से प्रवेश करती है (जहाँ से कंघी द्वारा बाल अलग-अलग किये जाते हैं ।) ''ऊर्जा, परानुकंपी तंत्रिका तंत्र को प्रकट करने के पश्चात, रीढ़ की हड्डी (मूलाधार) के अन्त में स्थित त्रिकोणात्मक हड्डी में साढ़े तीन कुंडल रूप में स्थित हो जाती है। यह अवशेष मूल ऊर्जा पारम्परिक रूप से 'कुण्डलिनी' के नाम से जानी जाती है। अपनी नीचे की ओर यात्रा में कुण्डलिनी संबंधित चक्रों में देवताओं को स्थापित करती जाती है। परानुकंपी तंत्रिका तंत्र ही वह माध्यम है जिसके द्वारा हम दिव्य ऊर्जा प्राप्त करते हैं। जैसे ही बच्चे का जन्म होता है तथा गर्भ नाल (Umbilical Chord) काटी जाती है तभी सुषुम्ना में अन्तराल बन

जाता है। जैसा पूर्व में बताया जा चुका है, यह रीढ़ के हड्डी के बाहर सूर्य जालक (Solar Plexus) व परानुकंपी तंत्रिका तंत्र के बीच वेगस नाड़ी (Vagus Nerve) का अन्तराल है।

जैसे ही बच्चा माँ के गर्भ से अलग किया जाता है उसे अलग होने का, छिन जाने का अनुभव होता है जो हमेशा उसके अवचेतन में रहता है: जन्म के समय विरोध स्वरूप रोना उसकी अलग पहचान दर्शाता है। यह उसके व्यक्तिगत अहंकार के स्थापित होने की घोषणा है। बदलते नए वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया से प्रति अहंकार विकसित होता है। तत्पश्चात, दोनों अनुकंपी तन्त्रिका नाड़ियों में जब गतिविधि आरंभ होती है, अहंकार व प्रति अहंकार गुब्बारे की तरह फूलकर मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को ढक देते हैं। मस्तिष्क में मनो ऊर्जा (Psychic energy) के कचरे के निकास के लिए कोई निकास द्वार नहीं है, यह वहाँ इकट्ठा होता रहता है। तालू की हड्डी कठोर हो जाती है व सूक्ष्म ऊर्जा पूर्णतया अलग रह जाती है। नई सूक्ष्म सृष्टि (Microcosm) जन्म लेती हैं। तब मानव अपने आप में अलग पहचान बना लेता है तथा मस्तिष्क अहंकार व प्रति अहंकार के तनाव का क्षेत्र बन जाता है।

व्यक्ति की वृद्धि के साथ रचनात्मक व मानसिक गतिविधियाँ अहंकार को (पिंगला नाड़ी के छोर पर) फुलाती हैं जबकि प्रति अहंकार (इड़ा नाड़ी के छोर पर) प्रति दिन और अधिक संस्कार (अनुबंधन) इकट्ठा करता रहता है। मनो ऊर्जा आगे व पीछे दोनों ध्रुवों के बीच भटकती रहती है, कभी-कभी संतुलन बिन्दु (आज्ञा चक्र पर) स्थिर होने का प्रयत्न करती है। किन्तु विरोधाभास, जो मनुष्य के मन को परिभाषित करते हैं, उसके व्यवहार पर स्थाई प्रभाव व काफी मात्रा में उसके आंतरिक विकास को प्रभावित करते हैं। अनेक कारणों से मन की द्वंदात्मक गति अपना संतुलन खो सकती है। इसके लक्षण हैं शीघ्र चिड़चिड़ाहट, क्रोधित होना, भय के कारण चिड़चिड़ाहट, भयभीत होना, उदास होना। जब मनो ऊर्जा चित्त के रूप में, अति अहंकार से अति प्रति अहंकार के बीच झूलती है, तब उत्पन्न इस

तनाव में व्यक्ति को अपने आपको व्यवस्थित रखना बड़ा मुश्किल होता है। यदि ये तनाव अपने चरम पर पहुँच गए हो तो स्नायु विफलता (Nervous Breakdown), उन्माद मनोविकार आदि इस प्रक्रिया की अगली सीढ़ी है। इस प्रकार यदि यह व्यवस्था (मानसिक) ध्वस्त हो जाती है तो ''मानसिक अवरोध की इकाई''अर्थात भूत-बाधा नाभि या आज्ञा चक्र में प्रवेश कर जाती हैं। सुविधा के लिए इस की गणना, संक्षेप में UPI (Unit of Psychic interference) शब्द द्वारा, जिन्हे वृहद रुप में 'दुष्ट आत्माएं, भूत, जिन कहा जा सकता है। ये मृत आत्माएं (Spirits) हमारी चेतना पर आक्रमण करती हैं। इनके अस्तित्व के बारे में बाद में चर्चा करेंगे।

मन का संतुलन बनाये रखने में वातावरण का गहरा संबंध होता है। यदि बच्चा प्रसन्न, अनुशासित, संयुक्त परिवार में पाला जाता है तो वह धार्मिक व्यक्तित्व के रूप में विकसित होता है। माता-पिता का नैतिक चरित्र, तथा एक दूसरे के प्रति प्रेम उसे ठीक प्रकार से भावनात्मक परिपक्वता प्रदान करता है। यह बालक अपने आपको सुरक्षित महसूस करता है तथा उत्क्रांति मूलक प्रक्रिया में अपनी भूमिका ठीक से निभाता है। इस प्रकार यह कहा जाता है कि पिछले जन्म के अच्छे कर्मों का उत्कृष्ट पारितोषिक धार्मिक परिवार में जन्म लेना है। वास्तव में व्यक्ति का स्वाभाविक संतुलन ही पिछले जन्मों के अनुभव का परिणाम है।

जब ऊर्जा, संतुलन बिन्दु से अधिक दूर नहीं जाती है, तो सुषुम्ना नाड़ी पर चक्र क्षतिग्रस्त नहीं होते हैं। तब साधक के जीवन में संतुलन व सामान्यता दिखाई देती है, इन परिस्थितियों में साधारण लोग संतोष में रहते हैं। दार्शनिक व वैज्ञानिकों को, सृष्टि के अचेतन से संकेत मिलने की अधिक संभावना रहती है, जो उन्हें अपने क्षेत्र में रचनात्मक विकास करने की प्रेरणा दे सकता है। कलाकार अपने कार्य में, ललित कला में सत्य की सुन्दरता दिखा सकते हैं। इन लोगों की चैतन्य लहरे ठंडी होती हैं, तथा इन्हें आत्मसाक्षात्कार शीघ्र मिल सकता है, क्योंकि इनकी सुषुम्ना नाड़ी कुण्डलिनी के जागरण के लिए तैयार है। अबोध बच्चे व युवक, जो सामान्य सद्भावपूर्ण पारिवारिक वातावरण में रह रहे हैं, इसी वर्ग में सामान्यतया आते हैं। इनका अनुकंपी

तंत्रिका तंत्र, इड़ा व पिंगला में संतुलन रखता है। जो लोग सुषुम्ना में रहते हैं, वे परिपक्व मानसिक जीवन, मानसिक तर्कों से दूर, दूसरों को मूर्ख बनाने वाली भावना से दूर रहते हैं तथा सुखी जीवन बिताते हैं। वे मानसिक व भावनात्मक खेल नहीं खेलते हैं, जो वास्तविकता से दूर होते हैं।

विराट के ब्रह्मांडीय कार्यक्रम को प्रस्तुत करने के संबंध में त्रिगुण मनोशरीर रचना की चर्चा पुनः करते हैं जिसके द्वारा दैवी ऊर्जा तीनों नाड़ियों द्वारा प्रवाहित होती है -

इड़ा नाड़ी - तमोगुण दर्शाती है (निष्क्रियता)
पिंगला नाड़ी - रजोगुण दर्शाती है (सक्रियता)
सुषुम्ना नाड़ी - सत्वगुण दर्शाती है (संतुलन)

जैसा हमने कहा है, सहजयोग साधक को तीन गुणों व उनके संबंधित योगों (भक्ति योग-समर्पण का योग, कर्म योग-क्रिया का योग व ज्ञान योग-ज्ञान का योग) से परे ले जाता है, क्योंकि इसके मूल में, सहजयोग है जो कि कुण्डलिनी योग है : अर्थात मनुष्य में स्थित दिव्य ऊर्जा का योग। यह सुषुम्ना में नई समग्र ऊर्जा को प्रवाहित करता है। कुण्डलिनी तथा वह जिसे इसने जाग्रत किया है, किसी भी गुण से परे हैं (सत्व गुण से भी परे, जो संतुलन, खुशी व बुद्धिमता की खोज करता है) क्योंकि सुप्तावस्था से जब वह जाग्रत होती है, तो वह गुणों को सम्मिलित करके उपर ऊठती है। श्री माताजी मुस्कुराकर पूछती हैं, ''क्या तुम ऐसी ऊर्जा को जानते हो जो सोचती है, व्यवस्था करती है, अनुभव करती है व प्यार करती है।'' श्री कृष्ण कहते हैं, ''मेरी तीन गुणों से युक्त माया को तोड़ना कितना कठिन है?''... अवश्य संभव है जब आदिशक्ति दखल देने का निर्णय लेती हैं।

परानुकंपी तंत्रिका तंत्र (PNS) -

''यहाँ एक विचित्र पेड़ है, जो बिना जड़ के खड़ा रहता है तथा जो बिना फूले फल देता है : इसकी डालियां नहीं हैं, पत्ते नहीं हैं, यह सर्वत्र कमल है।''

(कबीर)

ये सुषुम्ना एवं चक्र वे विषय हैं जो पूर्वी देशों की रहस्यवादी कविता के मूल प्रसंग हैं, सुषुम्ना एवं चक्र उर्जा के सूक्ष्म केन्द्र हैं जो परानुकंपी तंत्र की कार्यप्रणाली को नियंत्रित करते हैं। हम कह सकते हैं यह तंत्र, हमारा अनन्त से संपर्क का माध्यम है। यदि सुषुम्ना को कुण्डलिनी उत्थान के लिए खोला जा सके तो यह सर्व व्यापी ऊर्जा को हमारे चक्रों में भर देती है। परानुकंपी नाड़ी अपने में जीवन-शक्ति (Vitality) भर लेती है, जिसे अनुकंपी उपयोग करती है। प्रथम चक्रों का विस्तार करती है, दूसरी सिकोड़ती है। कुण्डलिनी ऊर्जा का मार्ग रीढ़ में स्थित सुषुम्ना है। सृष्टि के स्तर पर सुषुम्ना उत्क्रांति मूलक उत्थान (धर्म) का मार्ग है तथा सूक्ष्म सृष्टि के स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति में यह अंतःरचित स्थित है। यह गौतम बुद्ध द्वारा बताया गया मध्य मार्ग है जो ईसा मसीह द्वारा जिक्र किये गये आज्ञा चक्र के 'तंग द्वार' (Narrow gate) से गुजरता हुआ मस्तिष्क के शीर्ष स्थान सहस्रार तक पहुँचता है जो परमात्मा का साम्राज्य है। जैसा पहले कहा गया है, चक्र मध्य मार्ग पर स्थित हैं, जो सूक्ष्म सृष्टि मानव स्तर पर सत्व व धर्म का मार्ग हैं। यह नाड़ी ब्रह्माण्डीय पथ है जिस पर विभिन्न चक्र हैं, जिन पर अवतार विराजते हैं, जिन्हें आदिशक्ति ने सृष्टि के विकास क्रम में अलग-अलग समय पर भेजा है। यह वह मार्ग है जिसे हमने अपने आत्मिक उत्थान के लिए अपनाना होगा। यह जीवन का वृक्ष है जिसके फल केवल अधिकृत व्यक्ति ही चख सकता है, अर्थात वह व्यक्ति जिसकी कुण्डलिनी का उत्थान अधिकृत व्यक्ति द्वारा हुआ हो। वास्तव में अनाधिकृत व्यक्ति द्वारा कुण्डलिनी अथवा चक्रों से छेड़छाड़ (अज्ञान या हठ) साधक के लिये शारीरिक व आध्यात्मिक स्तर पर काफी भयंकर हो सकती हैं, चक्र फंस सकते हैं, नाड़ी क्षतिग्रस्त होकर टूट सकती है, जिससे साधक के आत्मसाक्षात्कार की संभावना समाप्त भी हो सकती है। यह इसलिए है क्योंकि बिना आत्मसाक्षात्कार प्राप्त व्यक्ति या गुरु के द्वारा कुण्डलिनी से छेड़छाड़, कुण्डलिनी की महिमा का अपमान होता है। यह देवत्व के शिष्टाचार (Protocol) के विपरीत होता है, जिससे विभिन्न चक्रों के देवता चक्र छोड़ कर जा सकते हैं। इस प्रकार के मामलों में अनाधिकृत व्यक्ति (गुरु) के लिए काला जादू (Black magic) करके UPI (भूत-

बाधा) चक्र में प्रविष्ट करना आसान होता है। इस प्रकार की गतिविधि के अतिक्रमण से सबसे अधिक प्रभावित नाभि व आज्ञा चक्र होते हैं।

जब चैतन्य लहरियों के द्वारा विधिवत आमंत्रित किया जाता है तब कुण्डलिनी, रीढ़ के अंत में त्रिकोणात्मक अस्थि में अपना निवास छोड़कर सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ऊपर उठती है। वह अपना मार्ग छः चक्रों द्वारा तय करके देवताओं को जागृत करते हुए सातवें चक्र में जाती है। चक्रों की स्थिति के अनुसार, कुण्डलिनी उपर उठने का अनुभव साधक को होता है, ऐसा पाँचो महाद्वीपों के हजारों साधकों द्वारा अनुभव किया गया है। जब नीचे वाले चक्रों में पकड़ होती है तब प.पू.श्रीमाताजी से प्रार्थना करने पर, कुण्डलिनी के उपर उठने का अनुभव नंगी आँखों से किया जा सकता है, क्योंकि कुण्डलिनी संबंधित पकड़ वाले चक्र में धड़कती है। मैंने इसे स्टैथस्कोप द्वारा हृदय की धड़कन के समान आवाज के रूप में सुना है। कभी-कभी श्रीमाताजी की कृपा से गुप्त दृष्टि द्वारा, कोई भी व्यक्ति कुण्डलिनी उठने की पूरी प्रक्रिया देख सकता है।

सहस्रार में प्रवेश के लिये कुण्डलिनी को आज्ञा चक्र पार करना होता है, यह कोई साधारण उपलब्धि नहीं हैं। आप कुण्डलिनी के उत्थान के बिना तीसरा नेत्र (आज्ञा चक्र) नहीं खोल सकते।

''मैं बताता हूँ कि संकरे द्वार के द्वारा प्रवेश करने का प्रयत्न बहुत लोग करेंगे, किन्तु नहीं कर सकेंगे'' - (ल्यूक १३.२४)

''संकरे द्वार द्वारा प्रवेश करो : क्योंकि विनाश की ओर ले जाने वाला द्वार चौड़ा है और इसका रास्ता आसान है तथा इसके द्वारा प्रवेश करने वाले बहुत हैं। जीवन की ओर ले जाने वाला द्वार संकरा है और रास्ता कठिन है तथा इसे प्राप्त करने वाले लोग कम ही हैं। - (मेथ्यू ७.१३)

यहाँ प्रभु ईसामसीह हमारे चित्त को इड़ा व पिंगला नाड़ी द्वारा प्रवेश में चेतावनी देते हैं, तथा सुषुम्ना का मार्ग प्रवेश के लिए दिखाते हैं। मस्तिष्क में शांति व निर्विचार चेतना तब तक नहीं प्राप्त हो सकती, जब तक आज्ञा चक्र

पूरी तरह नहीं खुल जाता, जो चित्त को शुद्ध करने की प्रक्रिया है। कुछ लोगों के लिए इसमें समय लग सकता है। वास्तव में यह चक्र, प्रभु जीजस के द्वारा नियंत्रित होकर बहुत संवेदनशील है। यह सहस्रार के पवित्र नगर में, जो मनुष्य के अंदर ईश्वर का सम्राज्य है, किसी भी प्रकार की अशांति को पहुँचने नहीं देता।

आत्मसाक्षात्कार का क्षण- जब कुण्डलिनी मस्तिष्क के शीर्ष तालू वाले भाग ब्रह्मरंध्र को भेदती है, तब प.पू.श्रीमाताजी इसे ईश्वर द्वारा बाप्तिस्मा (Baptism) करना कहती हैं। इसे कुछ सहजयोगी अनुभव कर पाते हैं। कुछ अन्य सहजयोगियों ने, सहस्रार से ऊर्जा इड़ा व पिंगला नाड़ियाँ द्वारा नीचे आने का अनुभव किया है। अधिकतर लोगों को निर्विचारिता महसूस होती है। भौतिक स्तर पर चैतन्य लहरियों का महसूस होना मध्य तंत्रिका तंत्र का आध्यात्मिक चेतना के मिलन को दर्शाता है। इस प्रकार व्यक्तिगत आत्मा का संबंध सृष्टि के चेतन, जिसे ब्रह्माण्ड का अचेतन (परमात्मा) कहते है, से होता है। यही ब्रह्माण्डीय अचेतन (Universal unconscious) विराट का मस्तिष्क है, जिसने अर्जुन से कहा, ''यह पूरी सृष्टि मेरे अदृश्य स्वरुप में व्याप्त है, मैं सभी प्राणियों को धारण करता हूँ, कोई मुझे धारण नहीं करता है।'' (भगवद् गीता ९)

निर्विचारिता, रिक्तता, जेन (Zen) की शून्यता (Void) हमें सृष्टीय अचेतन तक पहुँचाती है। चीनी ज़ेन के पिता बोधिधर्मा, ''वू-शिन (No-mind)'' अचेतन के विषय में कहते हैं -

''यह एक खगोलीय ढोल के समान है, जो सभी प्राणियों को शिक्षित तथा अनुशासित करने के लिये, अपने आप बिना किसी प्रयत्न के बगैर हिले-डुले, विभिन्न प्रकार की निराली ध्वनि निकालता है। यह एक इच्छा पूर्ण करने वाले रत्न के समान है, जो अपने किसी जागरूक प्रयास के बिना ही, सहजता से विविध रूपों की रचना करता है। यह ऐसा है मानो अचेतन मेरे चेतन मन के माध्यम से कार्य कर रहा हो, इसको वास्तविकता का सत्य स्वरूप समझा रहा हो, यह विवेक है, यह त्रिगुण शरीर का स्वामी है, यह

परम स्वतंत्रता से कार्य करता है......अचेतन ही सच्चा मन है, सच्चा मन ही अचेतन है...।

हमें अपने सभी कार्यों में मात्र अचेतन के प्रति जाग्रत होना है - यही अनुशासन का मार्ग है, दूसरा अन्य कोई रास्ता नहीं है। इस प्रकार हम जानते हैं कि जब अचेतन से साक्षात्कार हो जाता है तो दूसरी चीज़ें कष्ट देना बंद कर देती हैं।

निर्विचार चेतना प्राप्ति, सृष्टि के अचेतन से लीन होने की प्रथम सीढ़ी है। निर्विचार चेतना से साधक अगली सीढ़ी, निर्विकल्प (संदेह हीन) चेतना में तथा चेतना की अन्य अलग सीढ़ियों में जाता है, जिनको मेरे लिए व्यक्त करना संभव नहीं है। क्या हम अब परानुकंपी तंत्र के कुण्डलिनी जागरण का संज्ञानात्मक अर्थ समझ सकते हैं?

मानव ने परमात्मा तथा स्वयं के बारे में वहाँ तक धारणायें बनाई जहाँ तक कि वह अचेतन से बोध प्राप्त कर सका। सी.जी.जुंग मानते हैं कि मानव जाति ने हमेशा से ही अपने भगवान तथा शैतान बनाये हैं तथा विचार-प्रणाली का महत्वपूर्ण आधार बनाने वाले आदि रूपों को निर्मित किया है, '' ये सभी विचार जो श्रेष्ठ रूप में शक्तिशाली हैं तथा इनके बिना मानव, मानव नहीं रह जाता।'' यह वही अचेतन है जिससे हम रचनात्मक प्रेरणा, अंतरात्मा, सत्य की अन्तर्दृष्टि इत्यादि प्राप्त करते हैं। संदेश हमें स्वप्न में भी प्रकट होते हैं। मानव इसी अन्तर्दृष्टि से छिपे हुये मार्गदर्शन का अनुसरण कर सकता है। किन्तु जैसा एरिक फ्राम्न देखते हैं, आधुनिक मानव अपनी अंतरात्मा की आवाज को दबाता चला जा रहा है तथा इस प्रकार उसमें अच्छे-बुरे का फर्क करने का विवेक खत्म हो रहा है।

इसलिए हमें अपने अंदर सृष्टीय अचेतन के प्रति सतर्क होना होगा। व्यक्तिगत अचेतन वास्तव में सृष्टीय अचेतन का हिस्सा है और हमारे मूलाधार में सुसुप्त कुण्डलिनी रूप में निरूपित है। कुण्डलिनी जागरण का परानुकंपी तंत्र जाग्रत होने और फलस्वरुप व्यक्तिगत चेतना व सृष्टीय अचेतन से संबंध बनने के द्वारा मनुष्य के तर्कयुक्त ज्ञान की सीमा टूटती है; सीधा प्राप्त

अनुभव, बुद्धि द्वारा प्राप्त मत (सलाह) को हटा देता है। प.पू.श्रीमाताजी के शब्दों में, ''अचेतन में भेदन द्वारा सीमित मानव चेतना व वास्तविकता के बीच बंधन टूट जाते हैं।''

वास्तव में, आत्मसाक्षात्कार के पश्चात मध्य तंत्रिका तंत्र, स्वचालित प्रणाली के प्रति जागरुक हो जाता है। यहाँ 'स्व' का अर्थ प.पू.श्रीमाताजी द्वारा दिया गया है, ''अपना अर्थात आत्मा का, जो सृष्टीय अचेतन (परमात्मा) से एक रूप होना है। ''

आत्मसाक्षात्कार के पश्चात, पहली बार अचेतन की तरफ छलांग लगाने से, आंतरिक आत्मिक चेतना शारीरिक अनुभूतियों के रुप में अपने को व्यक्त करती हैं। आदिशक्ति की हवा अचेतन के संदेश देती है। सनासनाहट, हलकी जलन, अंगुली के पोर में चेतना शून्यता (Numbing) भी अपने संदेश देते हैं। किन्तु इन संदेशों का क्या अर्थ है? ''जो इनका मतलब जानता है, उसे इन्हें विसंकेत (Decode) करना होगा'' - ऐसा प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं। हो सकता है मानव जाति में अवतार लेकर, परमात्मा इन संकेतों के अर्थ का ज्ञान मनुष्यों को प्रदान करे ताकि जाना जा सके कि वास्तव में परमात्मा का मानव के लिये क्या निर्देश है।

मनुष्य के लिए इस शक्तिशाली घटना का उपयोग, गलत कार्यों के लिए संभव नहीं है। वास्तव में आत्मसाक्षात्कार साधक की इच्छा, परन्तु अपने आप से होता है तथा परानुकंपी ऊर्जा के गतिमान होने से होता है। यह गतिमान तभी संभव है, जब साधक में अपेक्षित अच्छाई या धार्मिक संतुलन हो, जो उसे सुषुम्ना के मध्य मार्ग पर रखता है। दुष्ट व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने में 'तकनीकी' रुप से असमर्थ रहता है। इसके अलावा जब हम इसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करते हैं, परिश्रम करते हैं, तब हम अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (इड़ा या पिंगला) पर कार्य करते हैं, इसलिए इस मार्ग द्वारा हम इसे प्राप्त नहीं कर सकते हैं। अब हम बेहतर ढंग से समझ पाते हैं कि परमात्मा की कृपा की पारंपरिक धारणा समर्पण, सहजता, सुलभता इत्यादि गुणों पर क्यों जोर देती है। हमारी प.पू.श्रीमाताजी लिखती हैं, ''यह एक ऐसी

उपलब्धि है, जिसमें हम अनुभव करते हैं कि मनुष्यों के मन को वास्तविकता तक नहीं लाया जा सकता, किन्तु वास्तविकता ही अपने प्रेम के महासागर में मनुष्यों के मन को घेरती है।'' इस गुप्त ज्ञान को संत, हर युग के महापुरुष, कबीर, क्रास के संत जॉन, गजाली, रामकृष्ण भली भाँति जानते थे। केकगार्ड इसे निम्न तरह से कहते हैं :-

''उत्थान के लिए प्रयास करने वाले व्यक्ति को किसके जैसा बनना चाहिए, केवल भगवान के जैसा, लेकिन यदि वह व्यक्ति अपने अहं में अपने आप में ही कुछ है या कुछ बनना चाहता है तो यही उसकी व ईश्वर की दूरी को रोकने के लिए पर्याप्त है।'' जब सागर पूरा प्रयास तथा शक्ति लगाता है तब आकाश का चित्र प्रतिबिंबित नहीं कर पाता। जब सागर शांत और गहरा होता है तब आकाश का चित्र इसकी शून्यता में डूबता जाता है।

जब कोई समुद्र के समान गहरा व शांत होता है, तब वह निर्विचारिता के शून्य में स्नान कर सकता है, जो कि स्वयं में अपना प्रत्यक्ष ज्ञान है। किन्तु आनन्द की स्थिति में चित्त-शक्ति केवल सुषुम्ना पर होनी चाहिए, इधर उधर नहीं जानी चाहिए। अपने आप को इस स्थिति में बनाए रखना अत्यन्त कठिन कार्य है, जिसे ज़ेन सन्त रिंजई जीजन (मृत्यु ८६७) अपनी पुस्तक 'रिंजी रोकु' (रिनजेन की वाणी) में कहते हैं -

''आदरणीय संवेदनशील महानुभावों, साधकों के लिए यहाँ वास्तव में एक बिन्दु है, जिस पर उन्हें पूरे हृदय से चित्त स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि यहाँ श्वास की हवा जाने का भी स्थान नहीं है। यह बिजली की चमक या चकमक पत्थर की चिंगारी के समान है। आँख झपते ही पूरी चीज़ निकल जाती है। यदि साधक की आँखे ठीक से स्थिर नहीं है, तो समझो सब कुछ गया। जैसे ही बुद्धि लगाई, यह फिसल जाता है। जैसे ही विचार आया, यह अपनी पीठ तुम्हारी ओर कर लेता है।''

वास्तव में सहजयोग में प.पू.श्रीमाताजी की कृपा फलीभूत हुई है, अन्यथा किसी भी शताब्दी में केवल कुछ लोग ही साक्षात्कार प्राप्त कर सके

हैं। ये लोग अत्यंत ऊँचे लोग थे, जिन्हें बड़ा कड़ा संघर्ष बार-बार इड़ा व पिंगला नाड़ी पर करना पड़ा। किन्तु क्या अधिक संख्या में लोग इनके पीछे चल सकते थे? फिर भी लोग सत्य के प्रति उदासीन हैं? क्या वे सच्ची प्रसन्नता व शांति नहीं तलाश रहे हैं?

खेद है कोई भी शांति पाने के लिए सफलतापूर्वक प्रयत्न नहीं कर सका, फिर भी यह शांति ही है जिसे हम सब खोज रहे हैं। न ही मानव इस दशा में है कि वह अनन्त का हिस्सा बन सके, फिर भी वह इसे प्राप्त करने को इच्छुक है। आज हम यह कहने की स्थिति में हैं कि यह विरोधाभास, मानव-मन-शरीर की रचना के स्तर पर सफलतापूर्वक हल किया जा सकता है, क्योंकि दिव्य प्रेम, मनुष्य को वर्तमान दुविधा से मुक्ति दिला रहा है। हमारा यह दावा अनगिनत अवसरों पर प्राप्त अनुभव, निरीक्षण व निष्कर्षों पर आधारित है। हमारा अनुभव दो मुख्य तथ्य दर्शाता है -

१) परानुकंपी तंत्र में वह गर्भित शान्ति है जो चेतना का रूपांतरण कर सके।

२) इस क्षमता का वास्तविकरण साधक पर चैतन्य लहरियों की बौछार करके किया जा सकता है।

इन पंक्तियों के लिखे जाने के समय तक मुझे आशा है कि बहुत से पाठक , अपने आप इस प्रस्ताव की पुष्टि करने की स्थिति में होंगे। इस अनुभव को समझने के लिए अनुकंपी तंत्रिका तंत्र के कार्य करने का ढंग समझने से सुविधा रहेगी।

अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (SNS) -

''मन एक स्वचालित नियमन व्यवस्था है। ऐसी कोई भी संतुलन या स्वनियंत्रण प्रणाली (Auto regulating) बिना विपरीत शक्ति के संभव नहीं है, जो एक दूसरे को विपरीत दिशा में संतुलित कर सके।

- (सी.जी.युंग)

अनुकंपी तंत्रिका तंत्र - वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अपना कार्यक्रम बनाते हैं, कार्यक्रमित भी होते हैं न केवल अपने दैनिक जीवन के

साथ-साथ अपितु क्रमिक जन्म व मृत्यु के जन्म-जन्मांतर दौर में भी। हमारी अनुकंपी तंत्रिका तंत्र की स्थिति के अनुसार ही हमारी नियति अपना आकार, रुप लेती है। जब हम अपने SNS पर नियंत्रण करते हैं तो उसी रुप या उसी मात्रा में अपने आगे केजीवन या जीवनों पर नियंत्रण कर सकते हैं। फिर भी SNS की तीन आयामों-समय, स्थान व आकस्मिकता (Casualty) में ही उत्क्रांति नहीं होती है। यह परमात्मा तक नहीं पहुँच सकता, आत्म प्रकाशन इसकी पहुँच से परे है, क्योंकि इसकी क्रिया (पिंगला) तथा प्रतिक्रिया (इड़ा) के माध्यम से उत्क्रांति होती है। इनकी (इड़ा व पिंगला) की गति मानसिक-कचरा, धुंआ या भाप उत्पन्न करती है, जो दोनों नाड़ियों के अंत में अहंकार व प्रति अहंकार के गुब्बारे फुला देती है। ये गुब्बारे फूलते हैं तथा मस्तिष्क के शीर्ष पर आपस में मिलते हैं तथा हमें सीमित ''मैं-पन'' के दायरे में फंसा लेते हैं। आकृति ६ देखें।

(अ) दाहिना अनुकंपी नाड़ी तंत्र - यह सुषुम्ना के दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी (सूर्य नाड़ी) की ऊर्जा का उपयोग करता है। यह सक्रिय चेतना की आकस्मिक जरुरतों की ऊर्जा की आपूर्ति करता है और मस्तिष्क के बायें गोलार्द्ध में अहंकार की पराकाष्ठा में पहुँचता है। जब हमारा चित्त दाहिनी नाड़ी पर होता है, तो हम विचार, योजना, प्रबंध, भविष्य आदि में फंस जाते हैं। जब यह नाड़ी अधिक तनाव में होती है, तब मस्तिष्क पर दबाव बढ़ जाता है। इससे पता चलता है कि क्यों बुद्धिजीवियों, नोकरशाहों, तकनीशियनों आदि को मानसिक थकान या अशांति होती है। अहंकार का गुब्बारा फूल जाता है। मृत्यु के पश्चात विशेष मामलों में-जो मानव प्रवृत्तियां पिंगला नाड़ी में अत्याधिक फंसी रहती है, स्वर्ग के सात स्तर में पहुँचती हैं, जहाँ सामूहिक अति अहंकार होता है (विराट का अहंकार)। यहाँ अदृश्य संत रहते हैं, किन्तु ये उत्क्रांति के अन्तिम छोर होते हैं, अर्थात सर्वोच्च सत्ता से पूर्ण मिलन इस मार्ग से नहीं हो सकता है। निकृष्ट मामलों में, मृत्यु के पश्चात राजसिक प्रकृति वाले व्यक्ति अहंकारी राक्षस, वास्तविक शैतान बनते हैं, अर्थात जो अपने सभी मनुष्यों पर अनाधिकृत शक्ति से शासन करना चाहते हैं, बहुत से

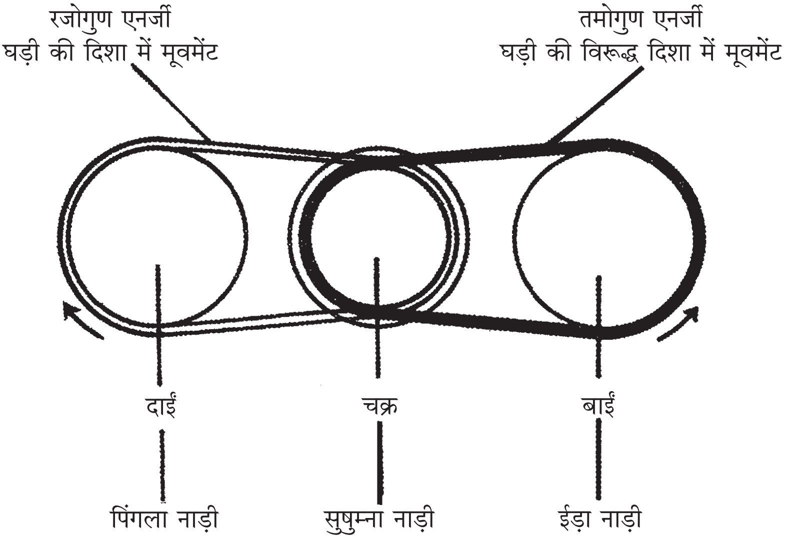

चित्र ६ - चित्र की अनुप्रस्थकार (क्रास सेक्शन) गति

तथाकथित हठयोगी जो शरीर पर अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं, तथा राजयोगी जो मस्तिष्क पर अधिकार करना चाहते हैं, रजोगुण के वशीभूत होते हैं। निःसंदेह, हमें इस प्रकार के बड़े अहंकार वाले मिथ्या योगी नहीं बनना है। अहंकार प्रत्येक व्यक्ति के मन में होता है तथा इसके द्वारा उत्पन्न समस्याएं प्रत्येक व्यक्ति में होती हैं, यदि वह इनसे सचेत न हो। अहंकार को नियंत्रित करना सरल नहीं है, क्योंकि यह अपने आपको अच्छी तरह से छिपा लेता है। अहंकार से प्रभावित मन में काफी बड़ी अपेक्षाएं बनाने की प्रवृत्ति दर्शित होती है, निर्णय दूसरों पर थोपने की प्रवृत्ति हो जाती है। वास्तव में यह हम सब में सामान्य बात है। विशेष रूप से मनोविश्लेषण क्षेत्र में, जिस पर एडलर ने अपनी खोज केन्द्रित की है तथा उसकी खोजों के निष्कर्ष प्रसिद्ध सिद्धांत हैं - 'इच्छा से शक्ति'।

(ब) बायाँ अनुकंपी तंत्रिका तंत्र - यह सुषुम्ना के बाईं ओर इड़ा नाड़ी (चंद्र नाड़ी) की ऊर्जा का उपयोग करता है। इस नाड़ी का कार्यक्षेत्र, मन के अवचेतन के जीवन के अनुसार होता है तथा यह मस्तिष्क के दाहिने

गोलार्द्ध में प्रति अहंकार के गुब्बारे के समान फूलता है, जहाँ पिछले अनुभव संग्रहित होते हैं। जब हमारा चित्त बाईं ओर जाता है हम भावनाओं, भूतकाल, स्मृतियाँ द्वारा प्रभावित स्वभाव आदि में फंसते हैं। जब इस नाड़ी पर अधिक कार्य किया जाता है, भावनात्मक शरीर पर दबाव बढ़ जाता है, तथा प्रति अहंकार के माध्यम से मस्तिष्क सभी प्रकार के संस्कारों (आदतें), अच्छे मनोवैज्ञानिक मामलों से लेकर, अधिकार जमाने तक के लिए खुल जाता है। फूले प्रति अहंकार से मन अनुबंधित हो जाता है, इससे अशांति, भावनात्मक तनाव आदि उत्पन्न होते हैं। निकृष्ट मामलों में, तमोगुण से अत्यन्त प्रभावित प्रकृति वाले, मृत्यु के पश्चात नर्क की सात परतों में, सामूहिक प्रति अहंकार (विराट के प्रति अहंकार) के क्षेत्र में पहुँचते हैं, जहाँ राक्षस व कलुषित आत्माएं (प्रेत) रहती हैं।

आजकल यौन व आत्मसाक्षात्कार के आपसी संबंध के विषय में, अधिकतर पश्चिमी लोगों में भ्रम की स्थिति है। इस प्रकार का मनो-जीवन प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड के चिन्तन का विषय रहा है तथा इसके बारे में अधिक जानकारी इरोज व थांन्टोज के सिद्धांतों में मिलेगी, जो मानव संस्कार के विचारों की प्रधानता बताते हैं। औसत मन आदत बनने के झुकाव द्वारा प्रतिअहंकार के प्रभाव को प्रदर्शित करता है।

जब तक सुषुम्ना नाड़ी बंद रहती है, अनुकंपी तंत्र की ऊर्जा परानुकंपी तंत्र से नहीं मिल सकती है तथा हमारा चित्त जो इस ऊर्जा के साथ लिप्त रहता है, वह भी सुषुम्ना नाड़ी में नहीं पहुँच सकता है। चित्त दायें से बायें व बायें से दायें अंडाकार गति, अंतहीन रुप से करता रहता है। (चित्र-६)

ब्रह्माण्डीय द्वैत का सिद्धांत, बहुत सी विचार प्रणालियों द्वारा अनुभवित, दो वैकल्पिक दीर्घवृत के बोध को प्रकट करता है।

सत्व कला का धार्मिक जीवन द्वारा अभ्यास, इस गति को कुछ हद तक संतुलन करने का प्रयास है। इस तरह चित्त को उस बिन्दु (आज्ञा चक्र) पर एकाग्र किया जाता है जहाँ दोनों दीर्घवृत्त मिलते हैं। चित्त की बांई तथा दांई गति का एक वैकल्पिक स्वरुप इस जंक्शन पर ही, सुषुम्ना नाड़ी के रूप में

उर्ध्वाकार आयाम (लंब रूप) में स्थित है जिससे चित्त ऊपर जा सकता है। यह तपस्या, जो प्राचीन काल में ऋषियों द्वारा की जाती थी अत्यंत कठिन थी, किन्तु वास्तव में कुण्डलिनी जागरण की सबसे श्रेष्ठतम दशा प्रस्तुत करती थी।

हम जैसे सामान्य व्यक्ति में जब (SNS) अनुकंपी तंत्रिका तंत्र की एक नाड़ी अधिक कार्य करने से खाली हो जाती है, तब प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरी (SNS) नाड़ी भी प्रभावित होती है। मनोऊर्जा के आगे-पीछे लगातार गति करने से, मनुष्य गुणों (रज, तम) का शिकार हो जाता है। यही बात सिद्धार्थ गौतम को सितार वादक ने बताई थी कि ''सितार के तार अधिक ढीले या अधिक कसे हुए होने से सही संगीत नहीं पैदा होता है।'' - यही वाक्य गौतम बुद्ध के आत्मसाक्षात्कार का कारण बना। जब हमारे तार अधिक कसे होते हैं - (पिंगला नाड़ी के अधिक कार्य करने से) तब हम उन्हें अधिक ढीला कर देते हैं (इड़ा से अधिक कार्य लेकर) और क्रम बदलने पर उल्टा करते रहते है। यही क्रिया जन्म-जन्मांतर तक चल सकती है, किन्तु यह एक जीवन में भी सिद्ध की जा सकती है।

सी.जी.युंग ने सही निष्कर्ष निकाला कि मनो-जीवन, विरोधों के नियंत्रक कार्य से या विरोधाभास से नियंत्रित होता है, जिसे हरक्लीट्स ने कहा, ''हर चीज़ एक दूसरे के विपरीत होती है।'' यही तथ्य ब्रह्मांडीय व ऐतिहासिक स्तर पर ताओ के यिंग-यांग के ब्रह्मांड शास्त्र तथा हेगेलिएन व मार्क्सवादी तर्क शास्त्र में प्रकट होता है। युंग ने सोचा कि उसने फ्रायड व एडलर के विरोधाभास का हल ढूंढ़ लिया है, जिसने उसे बहुत परेशान कर दिया था, क्योंकि उसे लगता था कि विपरीत सिद्धांतों के बावजूद ये दोनों सही थे।

विरोधाभास वास्तव में, विराट के ब्रह्मांडीय स्तर पर रजोगुण व तमोगुण (मनुष्य ने जैसा विरोधाभास पदार्थ में अनुभव किया) में व सूक्ष्म मानव जगत स्तर पर, इड़ा व पिंगला नाड़ी के रूप में हैं। हमारे आर्थिक सिद्धांत, सृष्टि में अनुभव किए विरोधाभासी नियमों के आधार पर विकसित हुए। हमारे

मनोवैज्ञानिक सिद्धांत भी, सूक्ष्म सृष्टि के विरोधाभासी नियमों के अनुभव से ही विकसित हुए।

हम सब सहमत हैं कि विरोधाभास स्वाभाविक है, किन्तु यह भी कोई आवश्यक नहीं है कि जो स्वाभाविक है वह मानव के विकास के लिए अच्छा ही हो।

विरोधाभास के प्रति सचेत होना अच्छा है, किन्तु उन पर विजय प्राप्त करना और भी अधिक अच्छा है। क्या आपके तार अधिक कसे हैं? इन्हें अधिक ढीला मत कीजिए। किन्तु सही तालमेल कैसे रखा जाए? सहज में ये प्रश्न कुछ यूँ होता: दायीं व बांयी नाड़ियों में, ऊर्जा की आगे-पीछे की स्थायी गति कैसे नियंत्रित की जाए? इसके साथ ही, अहंकार व प्रति अहंकार की क्रिया व प्रतिक्रिया को कैसे नियंत्रित किया जा सके जिससे चेतना आत्मा की ओर झुक सके? इस प्रश्न का उत्तर सैद्धांतिक या बुद्धि के स्तर पर नहीं खोजा जा सकता क्योंकि वजह यह है कि इसमें परानुकंपी तंत्रिका तंत्र की ऊर्जा (कुण्डलिनी) के जागरण का समावेश है। हम इसका जागरण पढ़कर या विचार करके नहीं कर सकते हैं। यह सबसे प्राचीन पहेली व पुरातन प्रश्न है। इसने मनुष्य की हमेशा की खोज को वास्तविकता में बदल दिया है। हम अपने अन्दर सहज धर्म की लय को स्थापित किये बिना समाज में इसे लागू नहीं कर सकते।

सामान्य मानसिक स्थिति - सामान्य मनुष्य की वह स्थिति है जिसमें चेतना अहंकार व प्रति अहंकार से ढ़ंकी रहती है। यह अधिकतर अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (SNS) पर निर्भर करती है व इसलिए मनुष्य आंशिक रुप से बाहरी हालातों के प्रभाव के अनुसार क्रिया व प्रतिक्रिया करता है।

निरर्थक मामले से प्रचंड मामले के मध्य में हम मानसिक बाधायें पाते हैं तथा देखते हैं कि मन-विकृति सीमा पार करती है। उत्क्रांति की दृष्टि से सामान्य मानसिक स्थिति में, चेतना का केवल एक स्तर मनुष्य के लिए खुला है, यद्यपि इसी स्तर में अधिकतर मनुष्यों की चेतना अनुभूति विकसित हो रही

है, किन्तु केवल इस सतह के अस्तित्व को ही मानना गलत होगा। हम गैर-विरोधाभास का तार्किक सिद्धांत मनोविज्ञान में लागू नहीं कर सकते हैं : मनुष्य (एक अवस्था में) 'अ' है इसलिए वह मनुष्य (उस अवस्था में) 'ब' नहीं है, क्योंकि मानव-मन बहुआयामी रेखागणित में उन गहराईयों में घूमता है, जहाँ मनुष्य एक समय हो सकता है व नहीं भी हो सकता है। अंततोगत्वा में निर्विचार अवस्था में रेखागणित स्वयं समाप्त हो जाता है। वास्तव में मन का रेखागणित, मन व भावना का क्षेत्र, सामान्य मानसिक अवस्था (SPS) का क्षेत्र है, अर्थात अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (SNS) की गतिविधि द्वारा परिभाषित क्षेत्र। चेतना के इस स्तर से परे जाने का मतलब है तर्क व आकृति से परे जाना।

सामान्य मानसिक स्थिति (SPS) के प्रति अहंकार दृष्टिकोण से, मैं एक शक्तिशाली घटना से प्रभावित हुआ हूँ जो मेरी नहीं है, मैं एक ही समय, हो सकता हूँ, नहीं भी हो सकता हूँ, अर्थात, मैं अपने आप से, अपनी सच्ची पहचान से, आनन्द, सत्य व चेतना से विरक्त हो गया हूँ। इसलिए SPS विरक्ति की स्थिति है और अस्तित्ववादी शास्त्र मनुष्य की हालत को इस विरक्ति के संदर्भ में परिभाषित करता है। वास्तव में विरक्ति की स्थिति स्पष्ट रुप से मानसिक अवरोधों के प्रविष्ट होने से बिगड़ गई है। मानव-जाति मुख्य रुप से SNS (अनुकंपी तंत्रिका तंत्र) के द्वारा कार्य करना छोड़ नहीं सकती तथा यह तंत्र मानसिक बाधाओं (U.P.I.) से रक्षा अपने आप नहीं कर सकता। वह विरक्ति की उस स्थिति में है, जो अपने आप को भी पहचान नहीं पाती क्योंकि उसे परिस्थितियों की जानकारी नहीं है। अक्सर उसने सात्विक विवेक शक्ति प्राप्त नहीं की है, जो वियोग तथा घुसपैठियों से पहचान तोड़ सकें। यदि कोई, 'असामान्य' महसूस करता है तो इसका कारण है कि मानव मन जिन तत्वों से प्रभावित होता है, वे इस समझ से परे हैं; कोई कह सकता हैं कि SPS स्थिति सामान्य है, जबकि वह असामान्य है। इस प्रकार हम मानव पीड़ा की जड़ समझ सकते हैं। आजकल असामान्यता इतनी अधिक हो गई है कि लगता है नर्क की नालियाँ शहरों में गंदगी फैला रही है : चरित्रहीनता, हिंसा इत्यादि।

वर्तमान मनोविश्लेषण, सभी प्रकार की अशांति से प्रभावित वर्तमान मानव के मन की समस्याओं से परिचित है। इससे पता चलता है कि मन को डराने वाले कुछ तत्व जिसे वह सामूहिक अवचेतन कहते हैं, से व्यक्तिगत अवचेतन में अतिक्रमण कर सकते हैं। यहाँ से ये तत्व उन परिस्थितियों को बनाते हैं जो मन को अशान्त करती हैं, वे व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित करती हैं व अवसाद, भय, लड़ाई - झगड़े, उन्माद, असामान्य आपसी तनाव आदि उत्पन्न कर सकती हैं।

खेद है, मनोविश्लेषण अधिक दूर तक नहीं जा सकता है, यह केवल लक्षण पहचान कर आंशिक राहत प्रदान कर सकता है। इसके पास वास्तविक रूप से मानसिक बाधा (U.P.I.) पहचानने का कोई साधन नहीं है। जो मानसिक बाधा को ही रोग-उत्पत्ति कारक मान ले। शास्त्रीय मनश्चिकित्सा साधारणतया व्यक्ति के चेतन मन को गतिमान करती है जिससे अवचेतन में स्थित पीड़ादायक तत्व की पहचान हो-तथा इस प्रकार उसे भगाया जा सके। इस तकनीक को मानसिक धारणाओं का अध्ययन कहा जाता है, जिसमें स्वप्नों के विश्लेषण से मानसिक रोगी अपनी कष्टदायक स्थिति की वाणी में प्रकट कर पाता है (वाणी विश्लेषण)। इससे व्यक्ति को उसकी भूत-बाधा से पुरानी पहचान छुडा लेने का एक अवसर मिलता है। मन के चेतन वाले भाग का यह विवेकसम्मत कार्य वास्तव में मनस-मुक्ति कार्य है, जहाँ कुछ मामलों में व्यक्ति में मौजूद मानसिक बाधा को निकाल दिया जाता है।

यह स्थापित प्रक्रिया ठीक है, किन्तु इसमें निम्न कमियाँ हैं -

१) एक बार रोगी का ध्यान गलत पहचान से अलग कर दिया जाता है, तब उसका क्या होगा? उसको दूसरी गलत पहचान में जाने से रोकने का क्या साधन है?

२) कष्ट देने वाली व रहस्यमय संवेदनाओं को मानसिक बाधा को कम नहीं किया जा सकता, जो इसका कारण है। इस प्रकार की मानसिक बाधा (U.P.I.) की पहचान नहीं की गई है, क्योंकि यह रोगी के मस्तिष्क से संबंधित नहीं हैं। एक सामान्य परजीवी से डरना नहीं चाहिए, किन्तु इसे बाहर

फेंक देना चाहिए।

३) चैतन्यित लहरों के ध्यान के बगैर, U.P.I. का, उसके प्रवेश के समय, सामना नही किया जा सकता। चिकित्सा विज्ञान से मदद मिलने में देर हो जाती है, तब तक यह मस्तिष्क में जड़ जमा लेता है, जो सब प्रकार की अशांति का कारण है। मनोरोग चिकित्सा इन लक्षणों से बदल जाती है। किन्तु कष्टों को दूर करना ही रोक थाम की कार्रवाई है।

४) मध्य नाड़ी सुषुम्ना पर स्थित चक्रों को खोले बगैर तथा निर्विचारिता बढाये बगैर हम उस दृढ़ आधार को खो देते हैं, जहाँ से हम विवेक शक्ति को प्रक्षेपित कर पाते, जब मानसिक बाधा शरीर में रहती है, तब साधक (मरीज) की संवेदना U.P.I. के माध्यम से एक तीव्र शारीरिक, मानसिक संवेदना अनुभव करता है। ऐसी हालत में साधक तथा इस परजीवी मानसिक बाधा के बीच के भ्रम को दूर करना काफी मुश्किल है, क्योंकि व्यक्ति सुषुम्ना से दूर हो जाता है।

५) आधुनिक विज्ञान अस्तित्व के आयाम के स्वभाव में विश्वास नहीं करता है। यह सभी अज्ञात को ''अवचेतन'' की टोकरी में डाल देता है। यह पूरा भ्रम है। जिसे सहजयोग की चेतना से हम निम्न अनुसार जान सकते हैं -

१) सृष्टीय अचेतन (Universal unconscious) (परमात्मा) अर्थात ईश्वर के शुद्ध मन तक निर्विचार चेतना की पवित्रता के द्वारा पहुँचा जाता है।

२) सामूहिक अवचेतन (Collective subconscious) मानव के प्रति अहंकार को प्रभावित करता है।

३) सामूहिक अति चेतन (Collective Supra Conscious) मानव के अहंकार को प्रभावित करता है।

एक बार आप इस नाटक दृश्य को जान लेते हो तो यह भी जान लेते हो कि कौन अभिनेता है? क्या खेल है तथा इसमें आपकी क्या भूमिका है? इसे

खेलना आनन्द से परिपूर्ण है। हमारे मनोरोग विशेषज्ञों ने सामान्य मानसिक स्थिति के प्रति अहं (अवचेतन) पक्ष का ही मुख्य रुप से खोज की है। अब समय आ गया है कि हम अपना ध्यान इसके अहं (अतिचेतन) पक्ष की ओर दें क्योंकि पश्चिमी देशों का पूरा व्यवहार ढांचा इसी पर निर्भर है।

अहंकार पिंगला नाड़ी के उप उत्पाद के रुप में विद्यमान रहता है। जब यह गतिविधि सफल हो जाती है तो अहंकार मस्तिष्क के शीर्ष चक्र बढ़ जाता है। संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि अहं अपने आप से ही ग्रसित हो जाता है। इस स्थिति में मस्तिष्क को मानसिक अतिक्रमण का भय नहीं रहता किंतु आत्म प्रवंचना का भय जरुर रहता है; अहं का कार्य आपको वास्तविकता से दूर रखना है। यह मन की आकाशगंगा में स्वयं को सृष्टि का केन्द्र मानता है। यहाँ तक ईश्वर के अस्तित्व व उसकी शक्ति को भी चुनौती देता है।

एक अहंकारी वस्तुओं को सही रुप से नहीं देख सकता है, क्योंकि उसकी बुद्धि में विवेक की कमी होती है। वह नए शब्द रचता है, अपने कार्य को उचित ठहराने के लिए नए सिद्धांत बनाता है। इससे नए नस्लवाद, कट्टरवाद, धार्मिक रूढवाद आदि का जन्म होता है। अहंकारी व्यक्ति सब प्रकार की बुराईयाँ इकट्ठी कर लेता है, दुराचारी व क्रूर हो जाता है, महिलाओं की पवित्रता भंग करता है, इसमें गर्व महसूस करता है और कहता है कि इसमें 'क्या बुरा है? मैं इसे पसंद करता हूँ।' वह मुक्ति, स्वतंत्रता तथा उपलब्धि की बात करता है, किन्तु स्वार्थ अपनी वासना और लालच का गुलाम बन जाता है। वह प्रतिस्पर्धी हो जाता है। अपनी सामाजिक छवि उजली रखता है, जबकि दूसरी ओर दूसरों को धोखा देना, कष्ट देना व दबाना इत्यादि कार्य करता है।

यदि अहंकार बहुत प्रभावशाली व सफल हो जाता है तो यह प्रभुत्व जमाने वाली सूक्ष्म तरंगो को उत्पन्न करना शुरू कर देता है जो उन लोगों पर असर डालती है जो मानसिक ध्रुव के ठीक विपरीत भाग अर्थात प्रति अहं से ग्रसित होते हैं। ये लोग क्लब आदि बना लेते हैं जिसकी शुरुआत कॉकटेल पार्टी से होती है तथा अंत आतंकवाद व नाजीवाद से होता है। अति अहंकार तथा अति प्रतिअहंकार का मिलन एक सामूहिक दैत्य का रुप लेता है। किंतु

मानव सामूहिकता को खतरे में डालने के लिए इतनी दूर जाने की जरूरत नहीं है। एक अहंकारी व्यक्ति गर्व से समाज के उन कानूनों को तोडता है, जो परिवार व समाज की एकता को कायम रखते हैं। वह योजना बनाता है, शिक्षा देता है, पुस्तक लिखता है, फिल्म बनाता है, जिसका प्रति अहंकारी मानव समुदाय अनुकरण करता है; जन समुदाय का ध्यान उत्क्रांति के मध्य मार्ग से दूर हट जाता है।

जिन लोगों का चित्त पिंगला नाड़ी के दाहिने भाग से आगे के क्षेत्र में पार हो जाता है, वह सामूहिक अति चेतन में प्रवेश कर जाता है। वहाँ पर वे अति अहंकारी मृत आत्माओं (UPI) के कब्जें में आ जाते हैं। इनके समर्थन से ये और भी अधिक सूक्ष्म व प्रभावी हो जाते हैं।

जो लोग बाई नाड़ी से पीडित हैं उन्हें ठीक करना आसान है। इसकी वजह है कि ये लोग अस्वस्थ, परेशान, उन्मादी होते हैं तथा अपनी तकलीफों से शीघ्र मुक्ति पाना चाहते हैं। किन्तु अहंकारी व्यक्तियों को ठीक नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्हें लगता है उनमें कुछ भी गलत नहीं है। वे दूसरों को उन्मादी, बीमार एवं दुखी करते हैं लेकिन खुद मजे में रहते हैं।

मैं इस विषय पर कुछ और कहना चाहूंगा -

१. एक्यूपंचर ने SNS (अनुकंपी तंत्रिका तंत्र) में ऊर्जा प्रवाहित करने वाली नाड़ियों के नेटवर्क की पहचान कर ली है तथा वे इसी सीमित आधार पर काम करते हैं। किंतु एक सहजयोगी की भांति, एक्यूपंचर जानकार PNS (परानुकंपी तंत्रिका तंत्र) के मूल तक नहीं पहुँच सकता जो कि जीवन शक्ति तंत्र है।

२. सहजयोग से कैन्सर का इलाज होता है। SNS की अति क्रियाशीलता की वजह से चक्र PNS से अलग हो जाता है। जैसा कि हमने कहा है कि शरीर की कोशिकायें चक्र के देवताओं द्वारा जीवन-संदेश को समझ नहीं पाती। चक्र लगातार उर्जा देते रहते हैं, किन्तु बिना PNS के नियंत्रण किये यह ऊर्जा विनाशक हो जाती है तथा कैन्सर कोशिकाओं की

वृद्धि व इनका परिवर्तन आरंभ कर देती है। चक्र विज्ञान खराब चक्र को पुनः सुषुम्ना में उसके मूल स्थान पर पुनर्स्थापित करके रोग के मूल कारण को दूर कर सकता है।

३. सूक्ष्म शरीर में चक्रों की स्थिति, स्थूल शरीर में हार्मोन उत्पन्न करने वाले अवयवों के अनुसार (पीनियल, पिट्यूटरी, थायराइड, थाइमस, एड्रिनिल, ओवरी आदि) होती है। पश्चिमी चिकित्सा शास्त्र, चक्रों की जीवात्मक अर्थ की संभावना को निरस्त करता है क्योंकि यह परिसंचरण तन्त्र, स्नायु अथवा लसीका वाहिका के जाल को खोज नहीं पाये हैं जो इन चक्रों के बिंदुओं को एक साथ जोड़ता हो। किन्तु सहजयोग में हम पाते हैं कि इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना नाड़ियाँ इन सभी केन्द्रों को जोड़ती है तथा उनमें उतनी केन्द्रीभूत नाड़ियाँ होती हैं जितने चक्र हैं। हर चक्र के लिए विशिष्ट नाड़ी है। सहज चिकित्सा तकनीक इस सूक्ष्म समग्र नाड़ी तंत्र के माध्यम से कार्य करती है। सहज तकनीक का इन ग्रन्थियों तथा इनके द्वारा नियंत्रित क्रियाओं पर नियंत्रणात्मक प्रभाव होता है ।

उपरोक्त अंश को निम्न टिप्पणी के साथ पढ़ना चाहिए -

आप परमात्मा का अनुभव प्रयोगशाला के परीक्षण द्वारा नहीं कर सकते हैं। यह टेस्ट ट्यूब में नहीं बहा करता। सहज विज्ञान, पारम्परिक विज्ञान द्वारा न तो सिद्ध किया जा सकता है न ही इसका खंडन किया जा सकता है क्योंकि यह चक्र के वैज्ञानिक परीक्षण की स्थितियाँ नियंत्रित नहीं कर सकता है। वास्तव में व्यक्ति को कुण्डलिनी व चक्र के देवी-देवताओं का आदर करना होता है। सहजयोग के बारे में जानने के लिए, साधक को सबसे पहले आत्मसाक्षात्कार लेना चाहिए। इसके पश्चात वह धीरे-धीरे पाता है कि आत्मसाक्षात्कार के पश्चात उसका शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य अच्छा हो गया है। गुण (रज, तम) व्यक्ति को भ्रमित करना व उलझाना बंद कर देते हैं : सामूहिक अवचेतन व व्यक्तिगत अहंकार के बीच अब बाईं SNS भयानक नहीं रही। इसमें महाकाली (इडा की नियंत्रक देवी) का आशीर्वाद है। साधक दैवी सृष्टि पर निर्भर जीवन्त शरीर में प्रवेश करता है। दाहिनी SNS

अब अहंकार को फुलाने का प्रयत्न नहीं करती। बल्कि महासरस्वती के आशीर्वाद को प्रवाहित करती है, साथ में साधक की रचनात्मकता प्रकट होती है तथा इस दिव्य शक्ति के साथ परिचय दृढ़ हो जाता है।

कुण्डलिनी -

सहजयोग व अन्य योगों में अन्तर यह है कि सहजयोग सभी योगों की पराकाष्ठा है क्योंकि यह वास्तविक कुण्डलिनी के जागरण का योग है। गंभीर साधक को, पूर्वी देशों के रहस्यवाद के किसी संत के पास जाकर पूछना चाहिए; वह यही कहेगा कि परम योग कुण्डलिनी योग है। यह इसलिए महान नहीं है कि यह किसी प्रकार के योग को छोडता है, किन्तु इसलिए है कि यह सबको जोडता है व उनसे परे जाता है। गुरु वशिष्ठ कहते हैं ''कुण्डलिनी परम ज्ञान का पीठ है'' कुण्डलिनी हममें जन्मजात है और यह समय आने पर स्वयं को सहजता में ही प्रकट करती है।

मानव शरीर में दैवी ऊर्जा की उपस्थिति की चेतना को पुराने समय के ऋषि व संत सबसे उँचा ज्ञान मानते थे। इसका अत्यन्त आदर के साथ सम्मान किया जाता था तथा आम लोगों से कठोरतापूर्वक इस ज्ञान को गुप्त रखा गया था। कुण्डलिनी, इसका मार्ग व चक्र की महिमा का वर्णन पूर्वी देशों में रहस्यवाद के दीक्षात्मक ग्रन्थों में व कला तथा वास्तुकला (स्थापत्य) के असंख्य स्मारकों में मिलता है। मनुष्य को मिला यह महानतम ज्ञान है जो दीक्षा के पुरातन मार्ग का ध्येय था तथा इसमें कुण्डलिनी को, पवित्र अग्नि या सर्प द्वारा तथा इसके मार्ग को वृक्ष या सीढी द्वारा दर्शाया गया है। मोजेस ने इसे जलती हुई झाड़ियों में देखा और ईसाई इसे पवित्र आत्मा कहते हैं, तथा पेन्टेकास्ट इसके प्रकटन को देवदूत के सिर पर अग्नि की लौ (Tongue) के रुप में पूजा करते हैं। यह काफी संभव है कि प्राचीन मिश्र व दक्षिण अमेरिका के पादरियों को, कुण्डलिनी तंत्र के विशेष रुप की जानकारी हो गई हो, जिससे उनको काफी सिद्धियाँ प्राप्त हो गई, किन्तु यह नहीं लगता कि वे स्वयं कुण्डलिनी के मूल तक पहुँचे थे। बुद्ध धर्म के महायान या वज्र संप्रदाय के महा आचार्यों ने खोजा कि मनुष्य की मुक्ति का मार्ग, मनुष्य में

स्वयं के अंदर है, जो गहन गोपनीय है, जिसे उन्होंने अपने अन्दर सुरक्षित रखा तथा इसके ज्ञान को केवल कुछ योग्य शिष्यों को ही दिया। चंद लामाओं अथवा तांत्रिकों के संप्रदाय भ्रष्ट किये गुप्त ज्ञान से, इस परम्परा के मूल पर कोई असर नहीं पड़ता। कुण्डलिनी के प्रतीक बहुत सी प्राचीन विरासतों में मिलते हैं जैसे पारे का सर्प, जो (लोहे से सोना बनाने वाले) कीमियाई संदर्भ में मानसिक रुपान्तरण की प्रक्रिया का संकेत है। ज्ञानी लोगों ने सर्प को मेरुदण्ड (Spinal chord) तथा मेरुदण्ड बल्ब का प्रतिनिधि बताने वाला समझा। हम कुण्डलिनी को जानने का प्रयत्न निम्नानुसार कर सकते हैं :

प्राथमिक दैवी उर्जा (आदिशक्ति) अपने अस्तित्व के प्रथम स्तर में,अपने आपको प्रकट नहीं करती है, विराट में सुरक्षित रखती है जब तक कि जगत में प्रकट होने का समय नहीं आ जाता। यह 'सुप्त' दैवी ऊर्जा आदि कुण्डलिनी है, विराट की मूल कुण्डलिनी। आदि कुण्डलिनी श्री गणेश की माता गौरी का साकार रुप है। वह कुमारी दैवी की प्रदीप्त अबोधिता है। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं कि ब्रह्माण्डीय उत्क्रान्ति के विभिन्न अवसरों पर, कुण्डलिनी एक चक्र से दूसरे चक्र में आगे बढती रही है। जब वह किसी चक्र में पहुँचती है, तो उस चक्र के देवी-देवता जाग्रत हो जाते हैं व उत्क्रान्ति का बड़ा कदम गतिमान होता है। इस भौतिक जगत के अस्तित्व के स्तर में, दिव्य कुण्डलिनी शक्ति का अस्तित्व भी उसी तरह हममें से प्रत्येक में सुप्तावस्था में छिपा है। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं,''कुण्डलिनी शक्ति, दैवी माँ-भगवती की इच्छा शक्ति का मूर्त रुप है और वह माता भगवती की इच्छा शक्ति या संकल्प शक्ति से जाग्रत होती है।''

अब हम वर्तमान मानव की संज्ञानात्मक योग्यता स्तर के संदर्भ में कुण्डलिनी का संबंध मानव उत्क्रान्ति से जोडते हैं।

एक पशु सहज रुप से कार्य करता है, किन्तु उसे उस शक्ति की जानकारी नहीं है जो उसे यह स्वभाव देती है। मनुष्य केवल सहजरुप से कार्य नहीं करता है क्योंकि वह तर्क के आधार पर, रजोगुण की प्रक्रिया के अनुसार

अपना कार्यक्रम बनाता है, जबकि पशु तमोगुण के आधीन हैं। मानव की वर्तमान स्थिति मन के विकास की स्थिति है जिसका उद्देश्य मनुष्य के संज्ञानात्मक तंत्र को चेतना का अनुभव करने के लिए तैयार करना था। मानव की स्थिति एक पृथक स्थिति है; एक अंडा स्थिति : मानव अपने आपको एक स्वायत्त, आत्मनिर्भर सत्ता समझता है। यह कदम चेतना की दृश्य घटना में मनुष्य को अपने अहंकार का आभास कराने के लिए आवश्यक था। अहंकार का आभास करना वास्तव में प्रति अहंकार अनुबंधन के प्रतिरोध के लिए वाकई में जरुरी है। अहं-मानव, अंडा मानव एक माया है, किन्तु यह जरुरी है क्योंकि इसी माया के माध्यम से 'मैं' (I-ness), स्व (Self) के बोध के लिए उपकरण पूर्ण होता है। इस बीच, ऐतिहासिक मंच पर मानव स्वयं को राजा समझ कर भौतिक जगत में अपने साम्राज्य को स्थापित करता रहा है। वह शक्ति व प्रभुता में आगे बढ़ता है, एक मालिक की तरह उत्क्रान्ति में हस्तक्षेप करता है, रचना व विनाश में भागीदार होता है तथा जगत का कर्ता-धर्ता बन जाता है।

अंड स्थिति, उस स्थिति को दर्शाती है जहाँ कुण्डलिनी की ऊर्जा, रीढ़ के अंतिम भाग में त्रिकोणाकार अस्थि में सुरक्षित रहती है। मनुष्य का मानसिक जीवन व संज्ञानात्मक विभाग संबंधी गतिविधि, दायीं व बायीं अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (रजोगुण, तमोगुण) पर तथा उन दोनों के संतुलन पर पहुँचने की संभावना पर निर्भर करती है (सत्व गुण)।

अब मानव की पृथक पहचान की स्थिति; उसकी विभाजित चेतना, दु:खी चेतना की स्थिति भी है: हेगल का आत्मा का दृष्य प्रपंच विज्ञान (Hegal's Phenomenology of spirit)। जब तक मनुष्य अंडे के खोल के अंदर रहता है, वह अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आनन्द लेता है। किन्तु बहुत आश्चर्य नहीं कि शीघ्र ही अलग अंडे की सीमा (सीमित स्वतंत्रता) का बोध होता है। मनुष्य की बढ़ती जागरुकता उसमें ईर्षा व क्रोध पैदा करती है। मनुष्य को सीमित प्राणी होने का बोध होने के साथ ही उसे अपने अंदर व बाहर असीमित आयाम का बोध भी होता है तथा यह भी बोध होता है कि

वह पृथक-खोल से कहीं अधिक है। यद्यपि वह यह नहीं जानता है कि सीमित और असीमित को कैसे मिलाया जाए। यह आत्म तत्व विज्ञान (Meta physics) की बहस 'मानव स्वभाव का तत्व' व उसकी 'नियति के उद्देश्य'- का मूल है। इसके अलावा अहंकार मानव की स्वतंत्रता- यह या वह में, 'अच्छाई' व 'बुराई' में-चुनाव करने की भी दृष्टिगत होती है। जब इस स्वतंत्रता में अज्ञानता जुड़ जाती है, तो संसार में गलतियाँ, पाप एवं पीड़ाएं प्रकट होती हैं। मानव के मूल स्वभाव पर की जाने वाली यह लंबी बहस है ; संसार में शैतान विद्यमान होने की समस्या।

अंत में इस बढती हुई चेतना गुणों से परे, आत्म तत्व के विरोधाभास से परे व नैतिक गलतियों से परे, नैसर्गिक साम्य की इच्छा रखती है। अंड मानव की स्थिति में मनुष्य न तो सहज है, न ही अन्दर व बाहर से स्वयं पूर्ण रूप से समग्र हुआ है तथा उसके कार्य सामाजिक अन्याय पैदा करते हैं। इसलिए विकसित मानव अहंकार के मायाजाल, अलगाववाद, विरोधाभास व अज्ञान से मुक्त होना चाहता है। चेतना की उत्क्रांति ने हजारो वर्षों का समय लिया है, किंतु इसकी पूर्णता इस कलियुग (भगवान कृष्ण की मृत्यु से अब तक) में हुई है। इस पूर्णता में महान अवतार का आगमन हुआ है जिसने हमें पूर्व में की गई भविष्यवाणी का ज्ञान दिया है ताकि हम दृढ़ विश्वासी बन सकें। प.पू.श्रीमाताजी निर्मला देवी कुण्डलिनी के ज्ञान को प्रायोगिक रूप से बताने आई हैं। हमारे लिए सीमित व अनन्त के सहज संश्लेषण का आयाम खोलने तथा पूर्ण अवतारों का कार्य पूर्ण करने आई हैं। वास्तव में, मस्तिष्क के ऊपर तालू में ब्रह्मरंध्र का कुण्डलिनी द्वारा भेदन, अंड-खोल को खोलने का कार्य है: नये मानव, नये आदम ने जन्म लिया है। कहा जा सकता है कि कुण्डलिनी का तात्कालिक व प्रयोगात्मक ज्ञान, जो सहजयोग का संदेश है, ब्रह्माण्ड के इतिहास का नवीन चक्र है। इसे दृढता पूर्वक पुन: कहा जा सकता है कि दुनिया को अचम्भित करने वाला यह कथन असंख्य लोगों के अनुभवों पर आधारित है।

कुण्डलिनी की उर्ध्व गति क्रिया का वर्णन :-

कुण्डलिनी की तुलना उस रस्सी से की जा सकती है जो अनेक डोरों से

बनी है। वह अपने कुण्डल खोलकर प्रत्येक चक्र को छेदती हुई ऊपर चढती है। कुण्डलिनी की मोटाई (डोरों की संख्या) ऊपर चढने पर कम होती जाती है यदि ऊपरी चक्र खुले नहीं होते या चक्र में जो स्थान छेदना है वह सिकुडा या संकुचित रहता है। वास्तव में यदि नीचे वाले चक्र पूर्ण रुप से खुले हैं तो कुण्डलिनी पूर्ण रुप से ऊपर चढती है किन्तु यदि ऊपर के चक्र पूर्ण रुप से खुले नहीं है तो केवल कुछ डोरे ही सहस्रार तक पहुँच पाते हैं। कुण्डलिनी अपना मार्ग बल पूर्वक ऊपर नहीं बनाती; वह चक्र की आवश्यकता अनुसार उसका पोषण करती है, चक्र के संकुचन व उसके कारण देवताओं के हटने के कारण उत्पन्न हुई बीमारी का इलाज करती है। वह देवताओं को जगाती है, जाग्रत देवता उसके उत्थान का मार्ग खोलते हैं। यदि नीचे वाले चक्र नहीं खुले हैं तो हमें परेशानी होती है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी देशों के साधकों के साथ परेशानी यह है कि सेक्स के बारे में नैतिक आदेश की पूर्ण अनदेखी करते हैं, ''अपनी पवित्रता का आदर करो।'' सबसे निचले मूलाधार चक्र के स्वामी श्री गणेश हैं जो कि दैवी बालक की अबोधिता का साकार रुप हैं (श्री गणेश ने बाद में जीसस क्राइस्ट के रुप में अवतार लिया)। जब हम असंतुलित सेक्स व्यवहार में लग जाते हैं, जब हमारा चित्त काम-आसक्त हो जाता है (गंदी फिल्में देखना, अश्लील साहित्य पढना, अनैतिक सेक्स की कल्पना करना आदि), तब हम अपनी कुण्डलिनी के मूल मार्ग को नुकसान पहुँचाते हैं। यह पाया गया है कि बहुत से पश्चिमी युवाओं में, मूलाधार चक्र क्षतिग्रस्त है, कुण्डलिनी उत्थान की शक्ति काफी कमजोर होती है तथा चैतन्य चेतना की संवेदनशीलता काफी कमजोर होती है। यह भी पाया गया है कि इन परेशानियों को ठीक किया जा सकता है। यदि हमारी स्थिति इस प्रकार की है तो हमें एक साधारण अबोध व्यक्ति की तुलना में दुगना विश्वास व संरक्षण करना होगा। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि हमारी उन्नति की गति कम होगी व हमें हर प्रकार की शंका का मुकाबला करना होगा। इस प्रक्रिया के दौरान हमें अपनी बुद्धि के उपद्रव को रोकना होगा जो पिछले अधार्मिक कार्यों के कारण मलिन हो गई हैं। भले ही यह बहुत कठिन प्रतीत हो किन्तु आत्म नियंत्रण अब सम्भव है क्योंकि कुण्डलिनी ने हमारी सहायता करना

शुरू कर दिया है।

कुण्डलिनी जागरण का वर्णन (कुछ अधिक विकसित साधकों में आत्मसाक्षात्कार क्षण भर में हो जाता है व हमेशा स्थापित रहता है)। जब कुण्डलिनी नीचे वाले चक्रों में बिना अधिक कठिनाई को झेले उपर जाती हैं तब यह आज्ञा चक्र में पहुँचती है तथा वहाँ मस्तिष्क की निचले परत में बादल के समान फैल जाती है, जिससे मधुर भारीपन या नींद आने जैसा अनुभव होता है। हम कह सकते हैं कि माँ हमें पहले सुलाती है।

दूसरा अनुभव तब होता है जब कुण्डलिनी की जीवन शक्ति पिघलकर इड़ा व पिंगला नाड़ियों पर आती है, ऐसा लगता है जैसे जीवन शक्ति के बादल आनन्द की वर्षा कर रहे हों। दोनों नाड़ियाँ इसे मणिपुर (नाभि) चक्र तक लाती है तथा कुण्डलिनी की शक्ति की नई लहर में शामिल हो जाती है। अचानक ऐसा लगता है जैसे सिर का पूरा भार कहीं चला गया है तथा सिर में काफी हल्कापन लगता है। इसके बाद त्रिगुण शक्ति (महालक्ष्मी, महासरस्वती व महाकाली) सुषुम्ना में उत्पन्न होती है व आज्ञा चक्र खोल देती है। आज्ञा चक्र पार होने के बाद निर्विचार चेतना उत्पन्न होती है। साधक आँखों की पुतलियों में फैलाव अनुभव करते हैं व मस्तिष्क स्वच्छ हो जाता है। अधिक विकसित साधकों ने इस स्थिति में ईसा मसीह का प्रकाश अपने अन्दर अनुभव किया है। सहस्त्रार की शान्ति का अनुभव होता है। सहस्त्रार पर कुण्डलिनी की शक्ति इकट्ठा होती है। जैसे ही ब्रह्मरंध्र खुलता है तनाव में कमी महसूस होती है। इस महान क्षण में साधक चैतन्य लहरियों की ठंडी हवा का अनुभव करता है। यही आत्मसाक्षात्कार है। कुछ ऐसे लोग हैं जो जाग्रत हो गए हैं उनमें इलाज करने की कुछ क्षमता भी है, किन्तु वे निर्विचार चेतना में नहीं रह सकते, उस चरम स्थिति में करीब एक मिनट या कुछ अधिक ही रह सकते हैं। कुण्डलिनी की सिर के ऊपर रिसने की प्रक्रिया समय के साथ समाप्त होती है और साधक अंत में गहरी चेतना की स्थिति में पहुँच जाता है जिसे हम संदेह रहित चेतना या निर्विकल्प चेतना कहते हैं। कुछ लोगों को इसका अनुभव शीघ्र व स्थाई उत्थान का होता है। अन्य को जैसे बर्फ की दो

गेंद हाथों पर रखकर पिघलने जैसा लगता है और आत्मा में ठंडक स्थापित हुई महसूस होती है। फिर भी साधक को अपने स्वयं के आत्म साक्षात्कार की समझ हमेशा उतनी स्पष्ट नहीं होती। यदि विशुद्धि चक्र सिकुडा हुआ (क्षतिग्रस्त) होता है तो आत्म साक्षात्कार के बावजूद भी उस व्यक्ति को चैतन्य लहरियाँ महसूस नहीं होती।

इस 'चेतना का उपकरण' वाले अध्याय का रेखाचित्र के माध्यम से सार रुप संक्षेपण करना अधिक उपयोगी होगा।

आत्मसाक्षात्कार के पश्चात नए संसार का द्वार खुलता है। प.पू.माताजी के कथनानुसार जैसे ही हमारा चित्त हमारी आंतरिक चेतना पर जाता है, हम इसे प्रत्येक व्यक्ति की कुण्डलिनी पर ले जा सकते हैं। जिस प्रकार गले की माला का डोरा प्रत्येक मनके में से गुजरता है, उसी प्रकार आंतरिक चेतना (कुण्डलिनी) भी प्रत्येक व्यक्ति में से गुजरती है, इस प्रकार सामूहिक चेतना प्राप्त होती है। मैंने मुम्बई व देहली में अन्य सहजयोगियों के साथ इस सत्य का अनुभव किया है। जब हम लोग (सहजयोगी) सब साथ होते हैं हमारी चेतना की तीव्रता गहरी होती है, मैं नहीं जानता यह कैसे होता है, किन्तु इतना जानता हूँ कि जब हम सामूहिक ध्यान करते हैं तब हम लोग अधिक ऊर्जा विकसित करते हैं। चैतन्य लहरियों के क्षेत्र में हम चेतना उत्पन्न करते तथा एक दूसरे को इस जागृत चेतना की गहराई में खींचते हैं; युवा व वृद्ध, न्यायाधीश व बच्चे, गृहिणी व विद्यार्थी हर व्यक्ति इस आनन्ददायक अनुभव का लाभ ले रहा है। हम लोग प्रेम के उस समुद्र में स्नान कर रहे हैं जिसकी हमें काफी लम्बे समय से प्रतीक्षा थी। कितना अद्‌भुत है। अब विश्व बन्धुत्व, प्रेम की केवल बातें ही नहीं रही; यह अब सत्य बन गया है, 'हमारी चेतना का अंग बन गया है!' अभी केवल कुछ हजार सहजयोगी ही हैं क्योंकि प.पू.श्रीमाताजी ने सामूहिक मुक्ति की प्रक्रिया केवल कुछ वर्ष पूर्व ही आरम्भ की है। इसके अलावा जीवन्त प्रक्रिया का प्रादुर्भाव होने में कुछ समय लगता है। सामूहिक चेतना व इसकी अपरिमित ऊर्जा के प्रसार से नवीन चेतना का प्रसार बहुत तीव्र होने की आशा है, बावजूद इसके कि वातावरण दूषित

प्रभाव से संतृप्त हो चुका है।

क - आत्मसाक्षात्कार के पहले :-

१) आत्मसाक्षात्कार के पूर्व, चेतना स्तर (वर्तमान का भोक्ता) बड़ी संकरी डोरी है जिसे उपरोक्त चित्र में सुषुम्ना नाड़ी द्वारा दिखाया गया है। साधक का चित्त अहंकार उत्पादक पूर्व चेतना स्तर के विचारों तथा प्रतिअहंकार उत्पादक अवचेतन स्तर की मनोदशाओं में व्याप्त हो जाता है।

२) ब्रह्माण्डीय अचेतन से चेतना की कोई सीधी कड़ी नहीं है। कुण्डलिनी सुप्तावस्था में है।

३) चक्रों के स्वामी/देवता, पूर्ण रुप से क्रियाशील नहीं हैं। चेतना का कोई संबंध नहीं है, फलस्वरुप व्यक्तित्व समग्र नहीं किया जा सकता है।

४) चेतना मस्तिष्क के अंडे में फंसी हुई है (अहंकार व प्रति अहंकार)।

ख - आत्मसाक्षात्कार के बाद :

१) चेतना का स्थान, चेतन मस्तिष्क में बढ़ गया है। अहंकार व प्रति अहंकार धीरे-धीरे नीचे आ गए हैं व इड़ा व पिंगला नाड़ियों द्वारा वापिस शोषित कर लिए गये हैं।

२) उठी हुई कुण्डलिनी ने अचेतन से सीधा संबंध बना लिया है। यह चैतन्य लहरियों के बहाव रुप में प्रकट होती हैं।

३) चक्रों में देवता जाग्रत हो गए हैं। वे विराट के आदि देवताओं को प्रतिबिम्बित करते हैं व हमारी चेतना को जरुरत के अनुसार व्यवस्थित करते हैं। वे उठी हुई कुण्डलिनी द्वारा आपस में जुड़ गए हैं, इसलिए व्यक्तित्व समग्र हो गया है। वे आदिशक्ति के संदेशों को समझ कर उसी अनुसार कार्य करते हैं। वे दूसरे मानव प्राणियों को चेतना तंत्र के रुप में देखते हैं। वे आत्मिक वृद्धि का निर्देशन करते हैं।

४) सामूहिक चेतना प्राप्त हो जाती है। कुण्डलिनी के आन्तरिक उत्थान की घटना से चित्त अंदर खिंच जाता है।

५) एक पूर्ण परिपक्व आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति में चक्रों के देवता, अपने चक्रों से ऊपर उठकर सहस्रार में अपना स्थान ग्रहण करते हैं। यह संपूर्ण दिव्य समग्रता की अवस्था है।

इसके अलावा, सहजयोग की असलियत का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि विशेष परिस्थितियों में हर सहजयोगी कुण्डलिनी उठाकर आत्मसाक्षात्कार दे सकता है। इस प्रकार साधक की अपनी आत्म शक्ति अभिव्यक्त होना शुरू हो जाती है।

हमें यह जानना होगा कि ईश्वर के जगमगाते क्षेत्र में, हम मात्र बौद्धिक उत्सुकता के द्वारा प्रयत्न करके नहीं पहुँच सकते हैं, या मानवीय प्रयत्न करके भी नहीं पहुँच सकते हैं-यह कुण्डलिनी के स्वभाव का परिणाम है, हम इसे बाँध नहीं सकते। बल्कि हम केवल अपने आपको कुण्डलिनी के प्रति उसी प्रकार समर्पित कर सकते हैं जिस प्रकार भगवान गणेश अपनी पवित्र (गौरी) माँ को समर्पित रहते हैं। मैं इसे दोहरा रहा हूँ कि कुण्डलिनी गुणों से परे है इसलिए हमारे नियंत्रण से भी परे है। इसलिए सहजयोग उन योगों से श्रेष्ठ है जो अहंकार वाले मस्तिष्क का, अहंकार नष्ट करके उस पर नियंत्रण करने का प्रयत्न करते हैं। कुण्डलिनी विनाश नहीं करती है किन्तु विजय प्राप्त करती है; ऊपर उठाती है। यहाँ हमें निम्न बातों को स्पष्ट रुप से समझना चाहिए।

कुण्डलिनी के द्वारा अहंकार के खोल को तोड़ना ही मुक्ति है, किन्तु मात्र अहंकार तोड़ना ही काफी नहीं हैं, क्योंकि इसके टूटने के साथ ही व्यक्ति के मन को सुरक्षा देने वाला कवच भी चला जाता है। तब व्यक्ति अति चेतन पर प्रभुत्व रखने वाली अदृश्य शक्तियों के अधिकार में अथवा अवचेतन की मृत आत्माओं तथा प्रति अहं के माध्यम से कार्य करने वाली अन्य शक्तियों के प्रभाव में जा सकता है। (इस मोड पर अनुबंधता कुछ डरावने दृश्य प्रकट करती है)। इसलिए सच्ची मुक्ति केवल अहंकार (पिंगला नाड़ी का रजोगुण) तथा प्रति अहं (ईड़ा नाड़ी का तमोगुण) से मुक्त होने पर ही मिलती है। यह केवल कुण्डलिनी जागरण द्वारा मध्य मार्ग शुद्ध होने के बाद ही सम्भव है। अन्य तथाकथित मुक्ति दूसरी प्रकार की दासता की तरफ ले जाती है जिसमें

'गलत एकरुपता' की प्रणाली में केवल एक ही परिवर्तन होता है और वह है इसका उद्देश्य। झूठे गुरु जो नये ढंग का ध्यान सिखाते हैं या लोकोत्तर अनुभव की ओर प्रेरित करते हैं, तो वे साधक की प्रति अहं की भूमिका के प्रति उसकी अनभिज्ञता का लाभ उठाते हैं। ये झूठे गुरु जब दुष्ट व शक्तिशाली हो जाते हैं तो वे प्रति अहं के द्वारा साधक के मन में प्रवेश कर सकते हैं। यही कारण है कि वे साधक को अहंकार पर विजय पाने को कहते हैं क्योंकि शक्तिशाली अहंकार उनके काम में बाधा ड़ालता है।

स्वयं से एकरूपता तभी सम्भव है जब कुण्डलिनी सातवें चक्र में स्थिर हो जाए। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया जा सकता है।

प.पू.श्रीमाताजी हमें बताती हैं कि आदि साक्षी के तीन रुप- सर्वशक्तिमान परमात्मा (सदाशिव), आदि उर्जा (आदिशक्ति), ईश्वर पुत्र (श्री गणेश)-सभी मनुष्यों के सूक्ष्म शरीर में स्थित हैं।

आदिशक्ति - आदिशक्ति का आविर्भाव मनुष्य में उस समय होता है जब कुण्डलिनी उसके मूल स्थान रीढ़ के नीचे वाले भाग से जागृत होकर सहस्रार में प्रकट होती है। इस स्थिति को आत्मसाक्षात्कार कहते हैं। आदिशक्ति के कुण्डलिनी रुप का सहस्रार में प्रकटीकरण। प्रभु ईसा मसीह कहते हैं, 'परमात्मा का साम्राज्य कैसा है तथा मैं इसकी तुलना किससे करुँ? यह सरसों के बीज के समान है जिसे मनुष्य ने अपने बाग में बो दिया। यह बड़ा होकर वृक्ष बन गया तथा पक्षियों ने इसकी ड़ालियों में घोसले बना लिये।' (ल्यूक १३-१८)। मनो शरीर एवं आत्मा के (आध्यात्मिक) उपकरण का आविर्भाव कुण्डलिनी के उत्थान द्वारा होता है। और फिर वह कहते हैं, 'परमात्मा के साम्राज्य की तुलना कैसे करूँ? यह खमीर के समान है जिसे एक महिला ने लिया और तीन मुठ्ठी आटे में छिपा दिया, वह पूरा खमीर बन गया।' (ल्यूक १३-२०)। शक्ति-कुण्डलिनी की सम्भाव्यता और वास्तविकता की वैकल्पित अवस्थायें इस कथन की सच्चाई है।

बाल ईश्वर (गणेश) - ॐ जीवन का भोजन है, जो मनुष्य के

अन्दर ही अभिव्यक्त है। वह मूलाधार चक्र में श्री गणेश के रुप में रहते हैं, तथा वहाँ से माता कुण्डलिनी के शिष्टाचार की रक्षा करते हैं। उनका उत्कृष्ट रुप प्रभु ईसा मसीह के रूप में आज्ञा चक्र में हैं, जहाँ वह स्वर्ग (सहस्रार) के द्वार की देखभाल करते हैं। मनुष्य में उनका आविर्भाव तब होता है, जब उपर चढ़ती हुई कुण्डलिनी आज्ञा चक्र पर पहुँचती है। वे मन (बुद्धि) को पूर्ण शुद्ध एवं प्रकाशित करते हैं।

सर्वशक्तिमान परमात्मा - साक्षी भाव में स्थित मनुष्य में आत्मा स्वरूप उस समय प्रकट होता है जब शक्ति सहस्रार पर विराजित होती है एवं शिव से मिल जाती है। शिव ही आत्मा है जो भगवान शिव के प्रतिबिंब रुप में मनुष्य के हृदय में अनहत चक्र के बाएं भाग में विद्यमान है। मस्तिष्क का तालू क्षेत्र ईश्वर का साम्राज्य है। हम कह सकते हैं कि यह वह स्वर्गीय स्थान है जहाँ पर व्यक्ति परमात्मा से मिलने के पूर्व विश्राम करता है। परमात्मा सहस्रार से परे हैं तथा उन तक तालू से ब्रह्मरंध्र को भेदकर ही पहुँचा जा सकता है। जब मनुष्य का चित्त सर्वशक्तिमान ईश्वर के समक्ष पहुँचता है तब हृदय में प्रतिबिंबित आत्मा प्रकाशित हो जाती हैं तथा शीतल चैतन्य लहरियाँ बहाती है।

तत्पश्चात्, साक्षी और उर्जा आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति के सहस्रार पर उस ब्रह्मांण्डीय लीला को पूर्ण करते हैं जो सृष्टि प्रारंभ होने के समय शुरू हुई थी। सृष्टि के भीतर ही यह परमात्मा की आत्म-पहचान का खेल है। हम सभी हममें सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित हैं।

भाग-४

व्याख्या

५- धर्म के गुण

सुषुम्ना एवं सभी चक्रों को कुण्डलिनी जागरण हेतु सजाना एवं सम्मानित रखना चाहिए। इसलिए सभी सन्त व धर्मग्रन्थ कहते हैं कि इस मार्ग को तैयार करने के लिए धार्मिक एवं सदाचारी जीवन बिताना चाहिए। पूरी दुनिया के सभी सहजयोगी सद्गुरुओं, पैगम्बरों एवं संतों को नमन करते हैं।

जब कुण्डलिनी अपने उत्थान के समय हमारी चेतना को रूपान्तरित करती है, तब हमारे संज्ञानात्मक विभाग एक नए आयाम में विलय हो जाते हैं; भौतिक, भावनात्मक, मानसिक, आत्मिक गतिविधियाँ आदिशक्ति के नैसर्गिक बल के द्वारा संश्लेषित हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में, हम एक अनूठे समग्र उपकरण के माध्यम से अपनी अंगुलियों में और यहाँ तक कि पैरों की अंगुलियों में भी चैतन्य लहरियाँ महसूस करते हैं। व्यक्ति की स्थिति के अनुसार शरीर के किसी एक भाग में भी इन्हे महसूस किया जाता है। संपूर्ण मानव शरीर रुपांतरण का एक मंदिर बन जाता है।

सुषुम्ना - महालक्ष्मी ऊर्जा की नाड़ी है। यह भगवान विष्णु के उत्क्रांति मूलक पथ का प्रतिनिधित्व करती है। भगवान विष्णु परमात्मा के रक्षाकारी पहलू हैं जो धर्म के मूर्तरुप हैं। इसलिए सहस्रार का खुलना सहज धर्म-चेतना व्यक्त करता है। साथ ही, उपयुक्त वर्णित समग्रता की वजह से धर्म जागृत मध्य नाड़ी तन्त्र के माध्यम से शारीरिक स्तर भी महसूस होता है। इसलिए जैसे ही नये द्विज योगी का सामना नकारात्मक लहरियों से होता है, वह उनके बारे में शारीरिक संवेदनाओं द्वारा सचेत हो जाता है।

एक वरिष्ठ सिविल अधिकारी प.पू.श्री माताजी के पास आत्मसाक्षात्कार के लिए गया। हमारे बहुत प्रयत्न करने के बावजूद भी

उसकी कुण्डलिनी नाभि चक्र (भगवान विष्णु का निवास) से आगे नहीं बढ़ पा रही थी। इस बीच कमरे में मौजूद अन्य सहजयोगियों के पेट में दर्द होने लगा। कुछ देर बाद वहाँ के स्थानीय लोगों से पता चला कि उस अधिकारी ने सरकारी धन का भ्रष्ट उपयोग किया था। नाभि चक्र श्री लक्ष्मी जी का चक्र है जो धार्मिक लोगों को धन सम्पत्ति एवं राहत प्रदान करती हैं व अधार्मिक लोगों को विपरीत फल देती है। उसके चक्र ने उसके द्वारा किए गलत कार्यों को रिकार्ड कर लिया था। एक अन्य अवसर पर, हमने पाया कि एक सुन्दर कलाकृति से गर्म चैतन्य लहरियाँ आ रही थीं। हम कुछ समझ नहीं पा रहे थे। बाद में पता चला कि उस कलाकार ने अपने पिता की हत्या की थी। एक व्यक्ति जो अपनी पत्नी से छिपाकर उसे धोखा दे रहा था, उसका नाभि चक्र एवं दायाँ हृदय चक्र (आदर्श पति एवं पिता श्री राम का स्थान) बुरी तरह से पकड़ा हुआ था।

दूसरों की कुण्डलिनी जागृत करने के एवं हमारे चक्रों की चेतना के अनुभव से यह पता चला है कि कुछ विशेष पाप विशिष्ट चक्रों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए :

१) मूलाधार चक्र - सेक्स के बारे में समुचित समझ न होने के कारण यह चक्र अशांत रहता है तथा इस वजह से चेतना-ऊर्जा की स्थिति भी कमजोर रहती है। इस संबंध में चित्त को ठीक रास्ते पर पुनः लाना एक लंबा काम हो सकता है किन्तु अंत में बहुत लाभकारी सिद्ध होता है। दायाँ मूलाधार उस समय पकड़ता है जब कब्ज रहती हो या यौन-दमन किया जाये जैसा शुद्धाचारवाद में होता है।

२) स्वाधिष्ठान चक्र - यह चक्र अधिकतर तब पकड़ता है जब हमारी गतिविधियाँ अधिकतर अहंकार से बुरी तरह प्रभावित होती हों। इसके कारण कमर में दर्द महसूस होता है। कुछ मामलों में यह चक्र यौन के दुर्व्यवहार के कारण पूरी तरह टूट जाता है। दाहिना भाग अधिक योजना बनाने एवं अधिक कार्य करने से प्रभावित होता है। कलाकार अधिकतर इस चक्र से प्रभावित रहते हैं क्योंकि वे अपनी रचनात्मक ऊर्जा का उपयोग सीमा से अधिक करते

हैं। अधिक मानसिक गतिविधियों के कारण उत्पन्न असंतुलन से मधुमेह हो जाता है। आलसी स्वभाव वाले लोग इस चक्र में कमजोर होते हैं।

३) मणिपुर (नाभि) चक्र - यह चक्र खमीर उठे पेय पदार्थों, कुछ विशेष प्रकार के मीट तथा ड्रग्स से भारी एवं अशांत हो जाता है। यह पैसों को लेकर गलत कार्य करने, भौतिक पदार्थों के संग्रहण करने या फिर हमारी जीवन शैली में कुछ मूलभूत कमी विद्यमान होने के कारण भी प्रभावित होता है। दाईं नाभि एवं स्वाधिष्ठान पर अत्याधिक तनाव पडने से लीवर में परेशानी शुरु हो जाती है। लीवर के मरीजों में चित्त एवं चेतना अशांत रहती है।

४) हृदय चक्र - यह चक्र तनावों में भारी हो जाता है विशेष रुप से जब पिता के संबंध में पारिवारिक अथवा माँ के संबंध में भावनात्मक अथवा अन्य समस्या हो। जब यह चक्र पकड़ता है तो व्यक्ति असुरक्षित महसूस करता है। शारीरिक अस्तित्व को लेकर कोई आशंका हो अथवा अति क्रियाशीलता तब बायां भाग पकड़ता है। जब आदर्श मानवीय व्यवहार का सम्मान नहीं किया जाता है। (जैसे पिता-पुत्र, पति-पत्नी, आदर्श नागरिकता) तो दायाँ चक्र पकड़ा जाता है। अत्याधिक अशांति से ब्रेस्ट कैंसर व हार्ट अटैक इत्यादि होते हैं।

५) विशुद्धि चक्र - यह चक्र किसी भी रूप में विचारों, शब्दों या कर्मों में आत्म सम्मान की कमी, नकारात्मकता, गलत व्यक्ति के सामने झुकने, गलत रूप से शासन करने से या शासित होने से, धूम्रपान करने से भी पकड़ता है। इसके कारण गले, कान आदि में दर्द हो सकता है।

६) आज्ञा चक्र - यह सबसे संवेदनशील चक्र है तथा थोड़ी सी भी अशुद्धता से कुण्डलिनी को सहस्त्रार में पहुँचने से रोक देता है। यह विशेष रुप से अनियमित विचार-तरंगों, आँखों के गलत उपयोग तथा मानसिक व भावनात्मक खेल खेलने से भी पकड़ता है। यह अधिक पढ़ने, अधिक टीवी देखने, क्षमा न कर सकने एवं क्षमा न माँगने के कारण तथा शैतानी गुरुओं के द्वारा स्पर्श किये जाने से भी प्रभावित होता है। आज्ञा चक्र दृष्टि नसों तथा पिनियल व पिट्यूटरी ग्रंथियों पर भी नियंत्रण करता है। आँखों पर नियंत्रण से

चित्त नियंत्रित होता है। उदाहरण के लिये जब हम बाहर सड़क पर घूमते हैं तो हमें पागलों की तरह हर गुजरने वाले व्यक्ति को नहीं देखना चाहिए। साधक को आज्ञा को शुद्ध रखने के लिए स्थिर चित्त रखना चाहिए, इस प्रक्रिया में वर्षों लग सकते हैं। आज्ञा चक्र की प्रतिक्रियाओं से माथे व सिर के पिछले भाग में जलन हो सकती है। सिरदर्द भी हो सकता है। इससे हमारी दृष्टि प्रभावित होती है; यदि मामला किसी UPI का हो, तो व्यक्ति अंधा भी हो सकता है।

७) सहस्रार चक्र - जटिल सहस्र दल कमल, सूक्ष्म रुप में सभी चक्रों को समाहित करता है। यह विशेष रुप से उस समय जाम एवं कष्टमय हो जाता है जब व्यक्ति सत्य को प्राप्त करने के बाद भी इसके प्रति समर्पित नहीं होता। सहस्रार पर कट्टरपंथी पकड़े जाते हैं। साथ ही वे लोग जो आध्यात्मिकता के बारे में अपनी मानसिक धारणाओं, ढांचों तथा विचारों से चिपके हुये रहते हैं।

चक्रों के बहुत क्रमचय एवं संयोजन (permutation & combination) होते हैं - किन्तु इस पुस्तक में इसकी विस्तृत विवेचना संभव नहीं है।

विभिन्न चैतन्य लहरियों द्वारा प्राप्त जानकारियों से मनुष्य अन्त: प्रेरणा में बेहतर तथा सही व गलत के बारे में सहजता से जागरुक हो रहा है: अब समय आ गया है कि वह अच्छे व बुरे ज्ञान के वृक्ष के फल का स्वाद चख ले। हमारे प्रयोगों ने व्यवहार में दृढ़ता लाने के लिए कुछ मार्गदर्शन दिये हैं -

- जो व्यक्ति बहुत अधिक कार्य करता है या बहुत सुस्त है, उसे मध्य में आ जाना चाहिए व अति को छोड़ देना चाहिए।

- जो व्यक्ति धन, संपत्ति-उसकी देखरेख की बहुत चिंता करता है या जो इन्हे व्यर्थ मानता है वो कभी संतुष्ट नहीं रह सकता।

- जो व्यक्ति अपना चित्त सफलता, प्रसिद्धि, बाहरी दिखावे पर अधिक रखता है, उसमें बनावटीपन अधिक रहता है। उसमें बुद्धिमत्ता एवं गंभीरता कम होती है।

- जो व्यक्ति बहुत अधिक विचार करता है या योजना बनाता है वह उन्मादग्रस्त हो जाता है तथा दैवी सत्ता के साथ एकलय नहीं हो पाता।

- जो व्यक्ति अनैतिक जीवन जीता है वह दैवी-गुणों का बोध खो देता है। इस संसार में महिलाओं को माँ अथवा बहन के रुप में (अपनी पत्नी को छोडकर) मानने से पूर्ण अबोधिता एवं सहज आनंद प्राप्त होता है।

- जो व्यक्ति धार्मिक रुप से संकुचित है उसे सभी महान धर्मों व महान अवतरणों में विश्वास रखना होगा।

- आत्मसाक्षात्कार की स्थिति में धर्म का अर्थ यह है-जहाँ धर्म ही अंतरात्मा है। हांलाकि इस स्थिति तक पहुँचने से पूर्व यह जरूरी है कि हम धर्म के प्रति जागरुक हों तथा इसके अनुसार ही हमारा नैतिक आचरण हो ताकि परानुकम्पी उपकरण कुण्डलिनी जागरण के योग्य बन सके।

सुषुम्ना नाड़ी के खुलने से पूर्व हमें धार्मिक, नैतिक व संतुलित जीवन यापन बहुत महत्वपूर्ण लगता है, ताकि हमारा चित्त इड़ा या पिंगला नाड़ी से बहुत दूर न जा सके। अन्यथा इससे यह खतरा उत्पन्न होता है कि सुषुम्ना के समान, ये दोनों नाड़ियाँ (इड़ा व पिंगला) मनुष्य के उत्क्रान्तिमूलक पथ की पूर्णता प्रकट नहीं करती हैं। तीन मुख्य ऊर्जा नाड़ियाँ इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना जो मानव के सूक्ष्म ब्रह्मांडीय मनोशरीर में बनी हुई है, वे ब्रह्मांडीय स्तर पर अस्तित्व की विभिन्न परतों के साथ जुड़ी हुई हैं। इसलिए यदि हम पिंगला नाड़ी में जरुरत से ज़्यादा लिप्त रहें तो हमारी मृत्यु के पश्चात सामूहिक अति चेतना हमें आकर्षित अपनी ओर करेगा। यदि हम इड़ा नाड़ी के प्रति अधिक जुड़ाव रखते हों तो मृत्यु के पश्चात हम सामूहिक अवचेतन की ओर आकर्षित होंगे। मनुष्य के लिए ये दोनों क्षेत्र विकास की दृष्टि से अंतिम छोर हैं, जो पृथ्वी पर आशंकित रुप से एक दुख भरी जिंदगी जीने के लिये दुबारा जन्म लेने की ओर ले जाते हैं। दूसरी ओर, यदि मनुष्य इन क्षेत्रों से नीचे वाले आयामों में फँस जाता है तो वह नर्क में जा सकता है या फिर एक भूत के रुप में पृथ्वी पर आ सकता है। सिर्फ सुषुम्ना ही ईश्वर के साम्राज्य में ले जाती है। जैसा पूर्व में कहा गया है कि इड़ा नाड़ी की अति में हमें पूर्ण रुप से

अनुबंधित, बाधित लोग मिलेंगे। पिंगला नाड़ी की अति में सताने वाले, अहंकारी राक्षस प्रकट होते हैं।

इसलिए, अन्य संतों की तरह श्री माताजी ने भी कहा है कि अति को छोड़ देना चाहिए। आत्मसंयम से हम मध्य नाड़ी के करीब रहते हैं। जो व्यक्ति अपना चित्त मध्य नाड़ी से दूर नहीं ले जाता है उसमें अबोधिता व सहजता के गुण रहते हैं। श्री गणेश अबोधिता के स्वामी होने के साथ-साथ विवेक के स्वामी भी हैं, ''मनुष्य पर शासन करना हो या स्वर्ग में सेवा करनी हो, संत आत्मसंयम से काम लेते हैं। संयम से ही ''ताओं'' तक शीघ्रता से पहुँचा जा सकता है।'' लाओत्से आगे कहते हैं कि धर्म ही वह है जिससे व्यक्ति मानसिक बाधा (UPI) से सुरक्षित रहता है।

''ताओ (धर्म) को विश्व पर शासन करने दो
कोई भी प्रेत अपनी दुष्ट शक्ति का उपयोग नहीं करेगा
इसलिए नहीं कि प्रेतों की शक्ति नहीं रहेगी,
किन्तु उनकी शक्ति मनुष्य की हानि नहीं कर सकेगी।''

जब हम अपना चित्त मध्य नाड़ी से दूर दांये या बांये ले जाते हैं और चाहते हैं कि धर्म से मुक्ति पा लें, तब उर्जा की गति मध्य नाड़ी के चक्रों में बाधा उत्पन्न करती है। जब चित्त एक दिशा में बहुत दूर चला जाता है तब जीवन में शारीरिक और मानसिक बिखराव उत्पन्न हो जाता है। यदि एक नाड़ी से दूसरी नाड़ी में चित्त अति हड़बड़ी में जाता रहे तो मानव चेतना का कोमल फूल मुरझा जाता है; तंत्र भ्रमित हो जाता है। लोगों को विभिन्न रोग हो जाते हैं। बहुत लोगों की मानसिक उर्जा अनुकंपी तंत्रिका तंत्र में दायें से बायें व बायें से दायें लगातार दोलन करती है। इस क्रिया से प्रतिअहंकार में वैकल्पिक अनुबंधन होता है व पिंगला नाड़ी में अहंकार का दबाव बढ़ता है। जब लोलक (पेंडुलम) की गति भयानक हो जाती है, तो लोग अपने जीवन की ऊर्जा को विरोधाभासी व अनियंत्रित मानसिक प्रक्रियाओं (जैसे आत्म-तर्कसंगति तथा दोष भावना के विकल्प, अभिमान और निराशा आदि) में खर्च कर देते हैं। इससे टूटे-फूटे चक्र मानसिक बाधा (UPI) के प्रवेश के लिए

खुल जाते हैं और कैन्सर जैसे रोग होने की आशंका हो जाती है।

प्राचीन यूनानी सौंदर्य शास्त्र व नीति शास्त्र के आदर्श ने हर तरह की अति करने से बचने के लिये कहा है तथा गुप्त उर्जामय नियमों को अभिव्यक्त करने वाली सांस्कृतिक समझबूझ पर जोर दिया। धार्मिक लोगों में वाकई में बहुत कम संभावना होती है कि वे माया, नियति, मान या भाग्य के शिकार हो जायें।

सहजयोग स्पष्ट करता है कि धार्मिक जीवन, ऊर्जा की गति में संतुलन रखता है, जिससे कुण्डलिनी का सफलतापूर्वक उत्थान होता है। जब चक्रों पर तनाव व दबाव अधिक नहीं होता है तब उपर उठती हुई उर्जा द्वारा उनके केन्द्र आसानी से भेदे जा सकते हैं। मेरा मित्र गेविन ब्राउन कहता है, ''यदि तुम धर्म से एकरुप हो गये तो जान लो कि तुम सही डोर पर हो, तुम वही करते हो जो जरुरी होता है। तुम सिर्फ जीवन से प्यार करो, स्वयं को एवं परम को संतुष्ट रखो और जीवन वृत्त पूर्ण करो।''

इस प्रकार हम पुराने जमाने के नैतिक आचरण के पीछे तर्क को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। धर्म के विरुद्ध कार्य करना या पाप करना, अपनी आत्म-चेतना के विरुद्ध कार्य करना है। पाप, चेतना को उसके उत्क्रांति मूलक पथ से हटा देता है।

इस विषय में प.पू.श्रीमाताजी समझाती है - ''चक्रों की संवेदना कुछ झटकों के बाद कमजोर होने लगती है। इसके बाद मनुष्य का जीवन इस क्षुब्धकारी आदत का आदी हो जाता है। वह इसी बाहरी जीवन में रहता है तथा गहराई में नहीं जाना चाहता क्योंकि इससे उसे वे झटके झेलने पडेंगे जो वहाँ इकठ्ठे हो रहे हैं। वह उन्हें भूलना चाहता है क्योंकि इससे जिंदगी आसान होती है। किन्तु सिर्फ जिंदगी जीना ही मात्र काफी नहीं है। यह अपमानजनक, तनाव बढ़ाने वाली, विनाशक व अधोगति में ले जाने वाली है। बहुत से साहसी व्यक्ति अपना सामना करना चाहते हैं। सहजयोग उनकी मदद करेगा।''

इस प्रक्रिया में धैर्य व सहयोग की आवश्यकता है, इन कठिनाईयों व गलतियों में साधक की सबसे बड़ी पूँजी, ईमानदारी से खोज करने की उसकी क्षमता है। हम खराब उपकरण से भी आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु इसमें कुण्डलिनी को चेतना की नई स्थिति मजबूत करने में समय लगेगा।

जब चक्र एवं नाड़ियाँ अधर्म से क्षति ग्रस्त हो जाती है तब इनकी स्थिति एक टूटे प्याले के समान हो जाती है जिसमें पानी नहीं ठहरता। हम धर्म, मनोशरीर यंत्र एवं आत्मसाक्षात्कार के आपसी संबंध को परम पूज्य श्रीमाताजी द्वारा भगवान बुद्ध की समाधि के उदाहरण से अच्छी तरह समझ सकते हैं :

''बुद्ध के पास धर्म था, उनका शरीर स्वच्छ था, उनके मस्तिष्क व चित्त का सांसारिक इच्छाओं या लोभ में कोई रुझान नहीं था। उनका प्याला तैयार था, किन्तु उनकी खोज के प्रयासों से यह खाली हो गया था। अंत में उन्होंने समर्पण कर दिया। यही वह क्षण था जब दिव्य चैतन्य लहरियाँ तूफानी बरसात के समान बरसीं और शक्ति ने उनका प्याला भर दिया व उन्हें शक्ता, या बुद्ध बना दिया। इसलिये जब आपको सदाचार से रहने को कहा जाता है तब समझना चाहिए कि आपको प्याले को साफ एवं अक्षुण्ण रखने के लिए सावधान किया जा रहा है।''

ईश्वर की कृपा से, उनके प्यार में वह शक्ति है जो चटके हुये प्याले को धीरे-धीरे सुधारती है, जिसमें यह बहता है। यदि प्याला टूट ही गया है तो फिर तर्क के अनुसार कोई उम्मीद नहीं बचती। अत: बेहतर है कि बात को यहीं विराम दे दिया जाये।

जो लोग समझ नहीं पाये हैं कि मैं बहुत गंभीर विषय के बारे में लिख रहा हूँ, उन्हें शायद मालूम नहीं है कि हमारे कर्मों के फल मृत्यु के बाद भी हमारे पीछे चलते हैं और बहुत हद तक हमारी नियति को प्रभावित करते हैं। इस बारे में कुछ विस्तार में बताना चाहता हूँ :

मृत्यु के पश्चात जब दिल की धड़कन बन्द हो जाती है, तो हम जानते हैं कि जीवात्मा ने उस संकलन को छोड़ दिया जो इसने मानवीय अनुभवों से गुजरते हुये इकट्ठे कर लिये थे। व्यक्ति की चेतना शारीरिक अवयवों से अलग हो जाती है जिस पर यह निर्भर थी। आत्मा और कुण्डलिनी प्रस्थान कर जाते हैं। चेतना की मात्रा कुण्डलिनी के अन्दर कम होती चली जाती है और यह एक या दो सेंटीमीटर की रह जाती है। तत्पश्चात् कुण्डलिनी चक्रों को साथ लेकर, जिनमें भूतकाल के कर्म तथा पिछले जन्मों की भी चेतना रहती है, शरीर छोड़ देती है। प्रथम, आत्मा मृत शरीर के आस-पास करीब तेरह दिन तक रहती है। (मृत व्यक्ति की आत्मा को शान्ति देने के लिये अन्तिम संस्कार का पारंपारिक महत्व)। इसके बाद चक्रों एवं कुण्डलिनी की स्थिति के अनुसार वह इससे संबंधित उर्जा क्षेत्र द्वारा आकर्षित हो जाती है तथा अस्तित्व के सुसंगत स्तर में पहुँच जाती हैं। विराट में, प्रेत लोक की कई परते हैं। इस स्थान व व्यक्तिगत चेतना के मध्य क्रिया, अगला मानव जन्म निर्धारित करती है। बच्चे के गर्भधारण के समय आत्मा एवं कुण्डलिनी एक बार फिर अवतरित होते हैं।

सहजयोगी खुली आंखों से अपने आसपास UPI (मानसिक बाधा) घूमते हुए देख सकते हैं। ये तत्व छोटे-छोटे गोल गहरे धब्बों के रुप में, कभी अकेले एवं कभी कुण्डलिनी के साथ दिखाई देते हैं । कुण्डलिनी-चोटें खाई हुई, चक्र गहरे काले हो चुके या बाहर खिंचे दिखाई पड़ते हैं। शारीरिक रुप से एक सें.मी चौड़े आकार में दिखाई देने वाली ये विकृतियाँ वास्तव में UPI (मानसिक बाधा)की चेतना के रुप में प्रकट होती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मानव जीवन में पाप से बचने में ही भलाई है। कुछ दुखी लोग मृत्यु को चुनने में इसका हल ढूंढते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। क्येंकि कोई मरता ही नहीं है। सिर्फ एक छोटा सा भाग (पृथ्वी एवं जल तत्व से बना भौतिक अंश ही) मृत्यु के समय अलग हो जाता है। बाकी सब शेष रह जाता है। असंतुष्ट एवं पीड़ित आत्माएं, विराट के चेतन क्षेत्र के समीप मंडराती रहती हैं (भूत-प्रेत इत्यादि) जो UPI (मानसिक बाधा) के रुप में प्रकट होने की लिए तैयार रहती हैं।

आत्मा के रुप में पीड़ित होना, मनुष्य के रुप में पीडित होने से भी अधिक बुरा है। दैहिक शरीर होते हुए मनुष्य स्वयं अपनी मदद कर सकता है, किंतु बिना शरीर के, पीड़ा की अवस्था नर्क जैसी है। इसके अलावा इस स्थिति में विकास के अवसर भी नहीं है अपितु और भी पाप करने के हैं। (UPI बन कर)।

उन असंख्य ग्रंथों का विवरण देना मेरे वश में नहीं है जो पाप न करने के लिये सावधान करते हैं। किंतु उन दो पापों के संबंध में बताना चाहूँगा जिनका संबंध हमारे मानसिक जीवन की अशांति से है: माँ के विरुद्ध पाप एवं पिता के विरुद्ध पाप।

प्रत्येक व्यक्ति अपने बच्चे के जीवन की सुरक्षा के लिए सब-कुछ करता है। वह उसके संरक्षण के लिए सर्वशक्तिमान परमात्मा के समान अवतार है। प्रभु ईसा मसीह कहते हैं, ''तुम्हारे कहने से पहले ही पिता जानता है कि तुम क्या चाहते हो।'' पिता के विरुद्ध किया गया पाप परमपिता के प्रति किया गया विश्वासघात है।

मन हर चीज़ समझना चाहता है, हर चीज़ पर नियंत्रण करना चाहता है- स्वयं को नियति का शिक्षक मानकर। साथ ही वह सुरक्षा सुनिश्चित करना और उसका हिसाब किताब भी रखना चाहता है। मनुष्य अपनी बनावटी सुरक्षा के लिए संघर्ष कर रहा है, रेत के किले बना रहा है, सुरक्षा, शक्ति और भौतिकता के लिए संघर्ष कर रहा है। यह व्यर्थ का संघर्ष उसके मानसिक एवं भावनात्मक शरीर में प्रकट हो रहा है तथा चिंतित होकर वह स्वयं अपनी भ्रमित सुरक्षा नष्ट कर रहा है। हमें स्पष्ट रुप से गरीबी तथा भौतिक पदार्थ के अभाव में अन्तर समझ लेना चाहिए। प्रथम का अर्थ है जीवित बचे रहने की सुनिश्चितता का अभाव, दूसरा विषय मानसिक दृष्टिकोण का है; यह कृत्रिम, तुलनात्मक तथा सामाजिक अनुबंधित धारणा है। एक अमीर आदमी भी वंचित महसूस कर सकता है। मुझे एक हास्यास्पद संस्मरण याद आता है: फ्रांस के सेंट टोपाज बंदरगाह में, प्रत्येक निजी सैर-नौका (Yacht) के बगल में उससे बड़ी सैर-नौका रहती है (Yacht) प्रत्येक नौका का मालिक एक

दूसरे को ईर्ष्या एवं जलन की भावना से देखता है।

किन्तु आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति अपना चित्त अन्दर रखकर अपने गुणों का आनन्द लेता है। वह भौतिक रुप से संतुष्ट है तथा अपना चित्त बाह्य वस्तुऐं इकठ्ठी करने व संग्रह करने में नष्ट नहीं करता है। मैंने देखा है कि उनमें से बहुत लोग जब आवश्यकता होती है तब अपना बचाया हुआ धन इच्छानुसार, उदारता से बिना दिखावा किये, खुशी से बाँटते हैं। परमपूज्य श्रीमाताजी कहती हैं। ''एक आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति बादशाह होता है। वह शिरडी के साईनाथ के समान पत्थर पर सोते हुये भी, माता की गोद का आनन्द ले सकता है।''

प्रत्येक महिला अपने बच्चे के लिए असीम प्यार का रुप है इस प्रकार वह दैवी के एक रुप का अवतार है। इसके अलावा एक महिला में पवित्रता, ममता, शुद्धता व गौरव के गुण होते हैं; जो दैवी उर्जा का मूल रुप हैं। माँ के विरुद्ध पाप उस समय होता है जब एक कामी पुरुष किसी महिला को एक उपभोग की वस्तु के रुप में देखता है। यह अधोगति है। दूषित आत्मा जब संसार पर अपनी नजर करती है तो इसे गंदी नाली में बदलना चाहती है। इस विकार से एक बहुत अनुबंधित मन उत्पन्न होता है।

नि:संदेह, पाठक इन दो पापों तथा हमारी मनोशरीर संरचना के बीच संबंध से पहले ही परिचित है। पिता के विरुद्ध पाप अहंकार एवं पिंगला नाड़ी द्वारा किया जाता है, जबकि माता के विरुद्ध पाप प्रति अहंकार एवं इड़ा नाड़ी द्वारा किया जाता है। यह जानना काफी दिलचस्प है कि यदि व्यक्ति किसी नाड़ी की ओर बहुत ही झुका हुआ हो तो वह पाप करने के लिए दूसरी नाड़ी की ओर झुकेगा। इस तरह, क्रिया-प्रतिक्रिया की भी गति लगातार दोनों नाड़ियों के बीच होती रहती है। यह कथन व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं अपितु सामूहिक स्तर पर भी सत्य है। उदाहरण हेतु पश्चिमी औद्योगिक देशों ने अपने आपको मुख्य रुप से, अहंकार से प्रेरित होने के कारण, पिंगला नाड़ी में विकसित किया है। इन देशों में माता के विरुद्ध पाप सामान्य रुप से हो रहा है। वहाँ नारीत्व व माता के लिये सच्चा आदर नहीं रह गया है।

हमें डर है कि जिस समाज में सामाजिक विघटन गर्भ में है, जहाँ अपनी ही महिलाओं को अपमानित करने में कोई शर्म नहीं है। पूर्वी देशों में जहाँ मुख्य रुप से चंद्र नाड़ी विकसित है, वहाँ अधिकतर पाप पिता के विरुद्ध होते हैं। गरीबी से ग्रस्त इन अधिकतर देशों में समाज में आर्थिक रुप से जीवित रहने के लिए लोग डाकू व ठग बन रहे हैं, जो पैसों के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं। यहाँ कार्य की नैतिकता एक अनजानी एवं व्यर्थ धारणा बन चुकी है।

हमारे वार्तालाप से यह स्पष्ट है कि दोनों प्रकार के पाप धर्म-विरुद्ध हैं। किन्तु आत्मसाक्षात्कार के हिसाब से दोनों में अधिक खराब, माँ के विरुद्ध अपराध है, मनोशरीर के संदर्भ में स्पष्टीकरण इस प्रकार है: पिता के विरुद्ध पाप से जहाँ बहुत से चक्र (नाभि, विशुद्धि व आज्ञा) खराब होते हैं, वहीं माता के विरुद्ध पाप से सीधे मूलाधार चक्र पर आक्रमण होता है जो पूरी ईमारत की नींव होता है।

उन्मुक्त यौन संबंध में विश्वास रखने वाले यह नहीं जानते कि वे कितनी बुरी तरह से अपने आप को बरबाद कर रहे हैं। हमने इंग्लैण्ड व भारत में ऐसे कई लोगों को आत्मसाक्षात्कार दिया है। ज्यादातर मामलों में पाया गया है कि औसत भारतीय की कुण्डलिनी शीघ्र उठ जाती है। इससे पता चलता है कि साधक की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक है तथा साधक पूर्व जन्मों में साधु समान रहा होगा। किंतु आश्चर्य है कि कुंडलिनी उत्थान में कुछ मिनट या सेकंड पश्चात ही वापस नीचे गिर जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि दूषित मूलाधार चक्र कुण्डलिनी को अधिक समय तक संभाल नहीं पाता अपितु उसे खींच लेता है। हमें यह स्पष्ट रुप से कहना है कि मुक्त यौन-संबंध चेतना के लिए हानिकारक हैं। हमारे पिछडेपन से लज्जित हुये व्यक्ति की भावना को एक बार लग सकता है कि सहजयोग आध्यात्मिक उन्नति का सच्चा मार्ग नहीं है। मेरे भारतीय मित्र हमारी आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया को लेकर कई बार दुविधा में पड़ जाते है। किंतु पश्चिमी सहजयोगी, जो विकसित समाजों में यौन-संबंधो की स्थिति को लेकर कहीं ज़्यादा अवगत हैं, उन्होंने इसे कोतूहल से ज़्यादा घातक पाया है। पश्चिम में कितने लोग वास्तव में सत्य में दिलचस्पी रखते

हैं? कितने लोग सत्य के लिए गलत पहचान छोड़ने को तैयार हैं? उन्हें क्या लगता है कि वे परमात्मा को अपनी मर्जी से यूं ही उठा लेंगे? ये प्रश्न हमें चिंतित करते हैं।

श्री गणेश की शक्ति विवेक है। यह विवेक ही है जो आपको धर्म को पहचानने व स्वीकार करने की समझ प्रदान करता है। यह विवेक ही है जो दिल व दिमाग में संतुलन स्थापित करता है। श्रीगणेश जानते हैं क्या सही है व क्या गलत है। वह इसमें समझौता नहीं करते। श्री गणेश का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए हमें, स्त्री की पवित्रता का सम्मान करना होगा, उन्हें आदिशक्ति गौरी का रुप मान कर सभी को (अपनी पत्नी छोड कर) अपनी माँ अथवा बहन के रुप में देखना होगा। खेद है कि आधुनिक काल में स्त्रियों के प्रति हमारी भावना विनाशकारी सभ्यता के कारण कुसंस्कारित हो गई है तथा अव्यवहारिक व पतित संबंध सामाजिक रुप से फैशन बन गये हैं। लोगों ने यौन स्वच्छंदता को इतना मूर्खतापूर्ण आडम्बर बना दिया है कि इस विषय पर विस्तार लेखन जरुरी है।

श्रीमाताजी कहती हैं, ''पति-पत्नी के बीच यौन संबंध निश्चय ही सुखकर और स्वाभाविक चीज़ है: यह दोनो के बीच एक बेहद सुन्दर तथा पावन कड़ी है।'' वे तो सहजयोगियों को विवाह करने के लिए प्रेरित करती हैं, क्योंकि एक सफल विवाह संतुलन तथा परिपक्वता प्रदान करता है। परमात्मा चाहते हैं कि हम जीवन का आनन्द लें, स्वयं का आनन्द लें तथा एक-दूसरे का आनन्द लें। पति-पत्नी के मध्य शारीरिक अंतरंगता के बहुमूल्य प्रेम में ही सौम्यता, नरमी तथा सुख का सर्वोत्तम आनन्द लिया जा सकता है।

मैं अपने दो वर्ष के नेपाल भ्रमण व भारत की यात्राओं से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। मैंने देखा कि ग्रामीण वातावरण में लोग आर्थिक तंगी के बावजूद किस प्रकार स्वाभाविक रुप से खुले एवं प्रसन्न हैं। जब इन तथ्यों का पश्चिमी वातावरण के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो यौन, यौन व्यवहार तथा पारिवारिक संरचना के विषय में समाजशास्त्रीय विवरण प्रस्तुत

किया जा सकता है।

ईश्वर को धन्यवाद है कि मैंने भारत में एक यात्री के रुप में भ्रमण नहीं किया। बड़े शहरों में नहीं गया जहाँ के कुछ भारतीय, पश्चिमी लोगों से कहीं अधिक आधुनिक पश्चिमी बन गए हैं। होटल, क्लब व अन्य पर्यटन मनोरंजन से भी दूर ही रहा। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अधिकतर विदेशी यहाँ के सामान्य सामाजिक ढाँचे को नहीं देख पाते हैं व केवल उन भारतीयों से मिलते हैं जो अपने देश में ही विदेशी हैं व जिन्हें अपनी संस्कृति की कोई जानकारी नहीं है।

एक भारतीय परिवार की चर्चा करते हुये हम कह सकते हैं कि परिवार के प्रत्येक सदस्य का आचरण परिवार के द्वारा नियंत्रण में रखा जाता है व बच्चों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यह समझा जाता है कि बच्चे वही करेंगे जैसा बड़े व्यवहार रखेंगे या सोचेंगे। परिवार के किसी सदस्य का स्वच्छंद व स्वार्थी व्यवहार सहन नहीं किया जाता है। यदि विवाहित व्यक्ति किसी अन्य महिला से संबंध रखता है तो उसे परिवार से निकाल दिया जाता है व उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है। समाज की चिंता उसे गलत कार्य करने से रोकती है। यह इसलिए है क्योंकि भारतीय उपमहाद्वीप में, अभी भी परिवार समाज की ईकाई है व बच्चा परिवार का केंद्र है।

बचपन से ही बच्चों को परिवारिक वातावरण में आपसी संबंधों व व्यवहार की सीख मिल जाती है जिससे स्वाभाविक रुप से उनका मानसिक संतुलन व भावनात्मक परिपक्वता विकसित होती है। इस प्रकार के संबंध माता-पिता, बड़ी बहन-छोटी बहन, बड़ा भाई-छोटा भाई, चाचा-चाची, दादा-दादी, पिता पक्ष की ओर से तथा इसी प्रकार के संबंध माता पक्ष की ओर के संबंधियों से भी रहते हैं। इनमें से प्रत्येक संबंध का एक भावनात्मक गुणक होता है जो अपनी खुशबू बिखेरता है। इस परिवेश में बच्चा सबके प्यार दुलार में लिपटा रहता है। इस पारिवारिक वातावरण के सूक्ष्म प्रिज्म द्वारा वह प्यार देता व प्राप्त करता है। आदर्श परिवार में प्यार प्रकट करने के सूक्ष्म भेद बच्चे की भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। बच्चा परिवार के

मधुर साम्राज्य में छोटा राजकुमार होता है। वह भाई-बहनों द्वारा समझाया जाता है, दादा-दादी, नाना-नानी द्वारा दुलारा जाता है। चाचाओं द्वारा उसकी रक्षा की जाती है तथा चाचियों, मौसियों द्वारा प्यार में बिगाड़ा जाता है। यह प्यार सिर्फ बचपन में ही नहीं मिलता है बल्कि जीवन के हर दौर में प्राप्त होता है। मनुष्य स्त्री को केवल संभावित पत्नी के रुप में नहीं देखता अपितु माँ अथवा बहन (महिला की आयु के अनुसार) के रुप में भी देखता है क्योंकि उसने बचपन से ही ऐसे भावनात्मक संबंधो के आयाम विकसित कर लिये हैं। जब विवाह का समय आता है तब दुल्हन का चुनाव जन्मपत्रिका मिलाकर पारिवारिक सहमति से परिवार द्वारा किया जाता है। यह सामूहिकता विवाह के सामाजिक आयाम को गौरवान्वित करती है। सिर्फ इसके बाद ही नया जोड़ा स्त्री व पुरुष में प्यार के नये संबंध को पति व पत्नी के रुप में खोजता है। इसका एक रुप शारीरिक प्रेम के रुप में प्रकट होता है। बहुत से मामलों में विवाह शारीरिक एवं भावनात्मक रुप में सफल होते हैं। शारीरिक प्रेम नई खोज की ताज़गी द्वारा अनन्यता की मधुर आत्मीयता में आनन्द देता है। अनन्यता इसे मूल्यवान व पवित्र बना देती है। यह पूर्ण रूप से आनन्द मनाने का सही ढाँचा तैयार करता है। यह यौन आनन्द को और भी अधिक सुखकर बना देता है क्योंकि यह दोनों के तंत्रिका-मन उपकरण की सर्वोत्तम लय सुनिश्चित कर देता है। शारीरिक प्रेम की पूर्णता काम की मनोवैज्ञानिक विशिष्टता का सम्मान करने का कार्य है। पति-पत्नी के संबंधों का यह केवल एक पहलू है, जो अपने आप में कई प्रकार के अन्य आपसी संबंधों में एक है। हम इसकी विशद चर्चा बाद में करेंगे। वैसे भी किसी भी सूरत में कोई भी व्यक्ति काम-संबंधी पुस्तकें पढ़कर या इस पर फिल्में देखकर इसका आनंद नहीं उठा सकता। परम पूज्य श्रीमाताजी कहती हैं : ''क्या हम फूलों की खुशबू का आनन्द इसके बारे में पढ़कर अथवा सीखकर ले सकते हैं?''

परिवार के एक बड़े संदर्भ में विवाह संस्था का उद्देश्य वह सुरक्षात्मक ढाँचा प्रदान करना है जिसमें शारीरिक प्रेम खुशी-खुशी परिपक्व हो सके।

काश! पश्चिमी मुल्कों में स्थिति कुछ इस प्रकार होती। ऐतिहासिक

कारणों से (दो विश्व युद्ध, उत्पादन का पूँजीवादी तरीका, धार्मिक ग्रहणशीलता का नाश) पारिवारिक संस्था बुरी तरह से कमजोर हो गई है। पारिवारिक संस्था पर विभिन्न प्रकार के मुक्ति आंदोलनों द्वारा अभद्र हमले किये जा रहे हैं: महिला मुक्ति, यौन स्वच्छंदता, समलैंगिक-स्वच्छंदता आदि। एक पश्चिमी परिवार में अक्सर बच्चे का संरक्षण ठीक प्रकार से नहीं किया जाता। माता-पिता व दादा-दादी शायद ही कभी दिखाई देते हैं। माता-पिता अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं तथा केवल थोड़ा समय बच्चे की शिक्षा पर देते हैं, जिसकी जिम्मेदारी स्कूल पर छोड़ दी जाती है।

इसके अलावा कुछ माता-पिता अपने प्रेम संबंध बनाने में जीवन भर लगे रहते हैं। वे कभी भी प्रेम रोग से उबर नहीं पाते तथा बहुत से बूढे लोग भी इसमें उलझे रहते हैं। नर्सरी या स्कूल ही बच्चों के शैक्षिक प्रशिक्षण के आधार बन पाते हैं। इस मिट्टी में प्रेम के बीज ठीक ढंग से अंकुरित नहीं हो पाते। बच्चा युवावस्था तक पहुँचते पहुँचते भावनात्मक रुप से कुंठित हो जाता है तथा उसे इस बात का पता भी नहीं चलता कि वह किस चीज़ से वंचित रह गया है। उन्हें भावनाओं की उन नाजुक विविधताओं का बहुत कम अनुभव होता है, जिनसे प्रेम प्रवाहित होता है। इसके अलावा बच्चे के मानसिक संतुलन के लिये प्रेममय पारिवारिक वातावरण आवश्यक होता है जिसके अभाव में बच्चे के अवचेतन में भावनात्मक आवेग की लालसा का विकास होता है। तत्पश्चात युवावस्था में प्रेम की खोज के बारे में बने-बनाये उत्तरों से उनका सामना होता है: स्कूल के साथी, वातावरण का दबाव, तथा सरकारी शिक्षा नीति के कारण भी कई बार उनका चित्त यौन स्वच्छंदता की सैरगाह पर केन्द्रित हो जाता है।

असल में इस तरह से पले बच्चे के लिए भयानक पश्चिमी समाज के कुसंस्कारों का विरोध करना बड़ा मुश्किल होता है जो सेक्स को इस रुप प्रस्तुत करते हैं कि दर्द व हिंसा के अलावा भावनाओं के आवेग को महसूस करने का एकमात्र यही माध्यम है। वास्तव में यह विचार सभी प्रकार के माध्यमों द्वारा जैसे फिल्म, पुस्तकों इत्यादि गानों में पूर्ण रुप से व्याप्त है, जो

महिलाओं को उपभोग की वस्तु के रुप में पेश कर रहे हैं। इस संदेश को आम रुप से प्रसारित किया जाता है व स्वीकार किया जाता है, क्योंकि विकसित औद्योगिक समाज के अकेले जीवन में, शारीरिक संभोग ही वातावरण के दबाव से भागने का एकमात्र रास्ता प्रतीत होता है। (जो स्वयं पिंगला नाड़ी की अत्यधिक गतिविधि का परिणाम है, जिसे संतुलित करने के लिए इड़ा नाड़ी की ओर गतिविधि अपरिहार्य है।) ऐसा समाज खुद ही सेक्स को असंतोष की उर्जा निकास के रुप में प्रायोजित करता है, क्योंकि यह निकास लोगों को व्यवस्था की बेहूदगी सहन करने की शक्ति देता है। यह आश्चर्यजनक है कि इस समाज के विकसित देश जो पारिवारिक गैर जिम्मेदारियों को डरावने स्तर तक ले गये हैं, विश्व को विकास का नमूना प्रस्तावित करते हैं: 'विकासशील देशों में जनसंख्या की समस्या? जी हुजूर; लेकिन आपकी खुद की समस्या के बारे में आप क्या कहेंगे?आपकी बेटी चौदह की हो गई है, ड्रग एडिक्ट है तथा यह जानती नहीं है कि अब तक कितने बॉय फ्रेन्ड रख चुकी है। क्यों न अपने काम से मतलब रखें? क्या आप ही समर्थ लोग हैं, क्या हम दुनिया के ठेकेदार हैं? अमेरिका व यूरोप में बच्चों का अधिकांशतया कोई उद्देश्य, आदर्श अथवा मार्गदर्शन नहीं है। वे इसके बारे में जाने बगैर स्वयं खो रहे हैं। इस प्रकार लड़के-लड़कियाँ यौन अनुभव के चक्र में प्रवेश करते हैं। आमतौर पर यह कहानी चढ़ती जवानी के मीठे अंदाज में सुनाई जाती है। लेकिन सच्चाई इससे बिलकुल अलग है। वास्तविक कहानी बहुधा दुखभरी है। अनगिनत पश्चिमी युवा लोगों ने वही कहानी सुनाई है। जब वे मिलते हैं तो वे खुश होना चाहते हैं, संगति तथा मित्रता का आनन्द लेना चाहते हैं: सबकुछ सादगी से। लेकिन यह निम्न कारण से सम्भव नहीं हो पाता। जैसे ही, मान लीजिए, एक लड़का किसी लड़की से मिलता है तो उसके मन में इस लड़की के प्रति यौन-गतिविधियों की अपेक्षायें उत्पन्न हो जाती हैं जिससे संबंध की स्वाभाविक सहजता खत्म हो जाती है।

यही प्रक्रिया लड़की के मन में भी घटित होती है। यदि वह इस सुझाव

को मना कर देती है तो वे परेशान हो जाती है तथा उन्हे कुछ अटपटा लगता है। इस प्रकार अबोधिता तो नष्ट हो ही जाती है साथ में आनन्द भी नष्ट हो जाता है: क्योंकि वे एक दूसरे में आँखों के माध्यम से असमंजस को व्यक्त होता देखते हैं और समझ नहीं पाते कि वे परेशान क्यों हैं! इसके विपरीत यदि वे सहमत हो जायें और यौन सम्बन्ध से एकरुप होकर प्रेम-सम्बन्ध जारी रखने की कोशिश करें तो, इस मामले में शारीरिक प्रेम पूर्ण आनन्द नहीं प्रदान करता क्योंकि दोनो साथी एक दूसरे से भ्रमित मनोतन्त्र स्थिति के माध्यम से जुड़े हुये होते हैं। भावनात्मक एवं शारीरिक संतुष्टि के शीघ्र समापन के पश्चात जाहिर है संबंध टूट जायेगा और एक नये साथी की तलाश शुरु हो जाएगी। उन्हें लगता है कि वे आनन्द में है लेकिन परम पूज्य श्रीमाताजी प्रश्न करती हैं, 'यदि इस प्रकार के संबंधों में संतुष्टि है तो फिर दिमाग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में क्यों जाता है?' उन्हें मौज-मस्ती में यकीन है लेकिन बात की सच्चाई यह है कि बिना एकान्तता व पवित्रता के, काम अपना आनन्ददायी गुण खो देता है। जब यह सार्वजनिक किया जाता है तो यह भद्दा व सस्ता हो जाता है तथा मानव चेतना के सूक्ष्म आयाम में यह विकर्षण हो जाता है। (यह केवल एक मताग्रह नहीं है अपितु परम सत्य है जिसे चैतन्य पर परखा जा सकता है)।

इस प्रक्रिया में मन का सन्तुलन पूरी तरह खो जाता है। व्यक्ति के बीमार दिमाग में हर चीज़ काम मय हो जाती है: प्रकृति, परिस्थितियाँ, यात्राओं में मुलाकात, पर्यटन इत्यादि को काम-अपेक्षाओं के अवसर के रूप में देखा जाता है। इस विकार से काम की सहजता व जीवन का आनन्द समाप्त हो जाता है।

सहजयोग की भाषा में हम कहेंगे कि इस तरह की असक्ति रहने से रीढ़ के अन्तिम सिरे पर स्थित मूलाधार चक्र बर्बाद हो जाता है तथा इसके उपर स्थित स्वाधिष्ठान चक्र भी। इस प्रकार कुण्डलिनी मार्ग की नींव गम्भीर रुप से क्षतिग्रस्त हो जाती है। इस क्षति का तत्काल प्रभाव यह होता है कि मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ जाता है जिसकी

अभिव्यक्ति अबोधिता व सहजता नष्ट होने के रुप में होती है। इस सन्तुलन के गड़बड़ाने से, अंर्तज्ञान से धर्म प्राप्त नहीं होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि नाभि चक्र भी पकड़ा गया। चूंकि प्रथम तीन चक्रों के देवता सो जाते हैं, अत:चित्त नियन्त्रण में नहीं रहता। अब काम ही मुख्य स्पर्शक बन जाता है। दांया तथा बांया अनुकम्पी तंत्र (इड़ा-पिंगला नाड़ी) सक्रिय होकर अबोधिता तथा धर्म के नाश में खाली हो जाता है। इस प्रक्रिया में चौथा चक्र अनहत भी बिगड़ जाता है जिससे हताशा व असुरक्षा उत्पन्न होती है। इसके बाद विशुद्धि चक्र प्रभावित होता है जिसमें आत्मसम्मान व प्रतिष्ठा कमजोर होती है। आज्ञा चक्र जो मूलाधार चक्र का ही प्रतिरूप है इसके साथ खराब हो जाता है तथा काम केन्द्रित चेतना मस्तिष्क में जड़ जमा लेती हैं तथा वहाँ से यह आँखों पर नियन्त्रण करके विचार-क्षेत्र पर धावा बोल देती है। इस प्रकार चेतना की कामुकता, अवचेतन से चेतन पर आक्रमण करती है। जिसमें व्यक्ति विवेक के अभाव में अपनी पहचान इस मूर्खता से खो देता है। चित्त के साथ-साथ आँख भी बेकाबू हो जाती है। बड़ी समस्या तब आती है जब चेतना इतनी कमजोर और सुन्न हो जाती है कि व्यक्ति को पता ही नहीं चलता कि उसका ये हाल हो गया है। इस तरह कुछ लोग हर तरीके की बेवकूफी किये चले जाते हैं और सोचते हैं कि सब कुछ ठीक ही है।

जो लोग इस मानसिक स्थिति को एक विकार के रुप में समझ नहीं पाये हैं वे यह तो जानते हैं कि कहीं न कहीं कुछ गलत है किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम है कि अबोधिता, सहजता एवं आनन्द को पुन: किस प्रकार प्राप्त किया जाये। इसलिए वे काफी परेशान रहते हैं। मानवीय संबंध एक किस्म से नारकीय बन जाते हैं। जहाँ आनन्द ही नहीं है वहाँ शारीरिक सुख ज़्यादा दिनों तक टिक नहीं सकता। असंतुलित यौन व्यवहार का शरीर पर भी असर पडता है: डाक्टर पुरूषों में प्रजनन शक्ति को लेकर काफी चिंता में हैं: मानसिक सेक्स प्रजननहीनता की पहचान है; सभी रुपों में अश्लीलता प्रजनन शक्ति को नष्ट करती है क्योंकि यह काम स्रोत के इसके (भावनात्मक) मूल से काट

देती हैं (अर्थात अपनी पत्नी की अंतरंगता)। थोड़े से वर्षों के बनावटी आनन्द के पश्चात काम गतिविधि स्वाभाविक आनन्द से प्रभावित होना बंद कर देती है। डाक्टर लोग चिन्तित जरूर हैं लेकिन उन्हें इसके कारणों की कोई जानकारी नहीं होती। वे लैंगिक अंगों में बढ़ते हुये कैन्सर मामलों से भी चिंतित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये यौन गतिविधि की बारंबारिता तथा प्रथम अनुभव की कम उम्र पर भी निर्भर करता है। 'मुक्त' हो चुकी बहुसंख्यक महिलाओं में बहुतों को चरम सुख का अहसास ही नहीं होता तथा यौन-चिकित्सा का शैतानी मजाक इस बिंदु को नजर अंदाज करता है। इसके अलावा अन्य गड़बड़ियाँ जो विनाश को पूर्ण कर रही हैं वे हैं-कामुक विकृतियाँ, हिंसा आदि जो पुस्तकों, फिल्मों व टी.वी. कार्यक्रमों से प्रसारित हो रही हैं।

इससे समाज को होने वाली हानि सूक्ष्म रुप में बहुत घातक है। एक आदर्श विवाह सामूहिक स्वीकृति का परिचायक होता है जिसे समाज तथा परमात्मा स्वीकार करते हैं। यदि विवाह में प्रेम, आदर व आस्था हो तो अचेतन, युगल को आशीर्वाद देता है जिससे आनन्द की वर्षा होती है। प्रत्येक कार्य की मंगलमयता का ख्याल रखने से परमात्मा से संबंध बना रहता है: इससे देवता जागृत रहते हैं तथा परिवार को आशीर्वाद देते हैं। इन आशीर्वादों से परिवार में आर्थिक समृद्धि (श्री लक्ष्मी का गृहलक्ष्मी के रूप में आशीष) व पौष्टिक भोजन (देवी अन्नपूर्णा) आदि लाभ प्राप्त होते हैं। परिवार दैवी-सत्ता से लयमय रहता है। अचेतन के साथ सुंदर संवाद में, जीवन की छोटी वस्तुएं हार के समान है जो हम परमात्मा को अर्पित करते हैं, जिसके बदले में वे शांति व संतोष से जीवन भर देते हैं। हमारे दिन, घटनाएं, संबंध आदि स्वाभाविक रुप से दिव्य संगीत सुरों के समान हमारे जीवन में आते हैं। कहने की जरूरत नहीं है कि वर्तमान तथाकथित मुक्ति व स्वच्छंदता ने सूक्ष्म आनन्द का साम्राज्य नष्ट कर दिया है। इसकी वजह यह है कि जब आपने खेल के नियम ही तोड़ दिये तो कौनसा खेल बचा?

इसी कारण आजकल स्वाभाविक, संतुष्ट व आनन्द से भरे लोगों से कम ही मुलाकात होती है। हर व्यक्ति तनावग्रस्त, उन्मादग्रस्त दिखाई देता है,

कि एक रूपया भी आय कर बढ़ जाता है तो देश में कोहराम मच जाता है व संसद में बहस आरंभ हो जाती है।

पश्चिम में यौन व्यवहार की पुन: चर्चा करते हुये मैं स्वीकार करता हूँ कि सामाजिक वैधता की मुहर के अधीन इन घटनाओं के फैलाव की मात्रा ने मुझे डरा दिया है। कोई इस 'अभद्र आचरण' को कैसे बदल सकता है? अधिकतर लोग इससे अनजान हैं तथा जनतंत्र में भ्रष्ट जनसंचार माध्यम पर सख्ती से सेंसर लगाने की व्यवस्था नहीं है। उन सब लोगों का क्या होगा जो इस गंदे सामूहिक स्वामित्व से दबाये जा रहे हैं। लोग इसे स्वाभाविक मान रहे हैं। लगता है कि पशु हमसे अधिक भाग्यवान हैं, क्योंकि उनमें वह चेतना नहीं है जिसे वे मलिन कर सके। खेद है आज अधिकतर लोग डिडरो के कथन से सहमत होंगे: ''पागलों में पागल के समान रहना अच्छा है बजाय अकेले विवेकशील रहने के।'' युवा लोग गैरजिम्मेदार तरीके से व्यवहार कर रहे हैं क्योंकि ऐसा करना फैशन है। बूढ़े लोगों में विवेक नाम की कोई चीज़ नहीं है क्योंकि वे इसके बगैर ही बड़े हुये हैं। पश्चिम में पारिवारिक संस्था के समाप्त होने के बाद कोई ऐसी संस्था नहीं है जो विकृत यौन व्यवहार की बीमारी को रोक सके। बड़े लोग भी उसी वृत्ति का अनुसरण कर रहे हैं।

ऐसे परिदृश्य में किसी को हँसना चाहिये कि रोना! बूढ़े लोग दिखाना चाहते हैं कि वे जवान हैं क्योंकि उन्हें अपनी मर्यादा, सुबुद्धि व परिपक्वता पर विश्वास नहीं है। आप बहुत से साठ साल के बूढे लोगों को सोलह वर्ष की स्कूल की छात्रा से प्रेम संबंध बनाते देख सकते हैं। जबकि विकासशील देशों में वृद्ध अधिक बुद्धिमान व आदरणीय हैं तथा सामाजिक सम्मान का जीवन बिता रहे हैं।

भारतीय यह नहीं जानते हैं कि वे कितने भाग्यशाली हैं, जो सुरक्षित समाज में पले बढ़ें हैं। उन्हें भौतिकवादी समाज द्वारा उत्पन्न दुष्प्रभावों को स्वीकार नहीं करना चाहिए। उन समाजों में लोगों ने अनजाने में, स्वतंत्रता व स्वच्छंदता की सूक्ष्म सीमा रेखा को पार कर लिया है, क्योंकि स्वतंत्रता के पीछे दौड़ते हुए वे गुलामी में फँस गए हैं तथा उसे अभी भी नहीं देख पा रहे हैं।

विकासशील देशों की नई पीढ़ी को इन मूर्खतापूर्ण गलतियों से कुछ सीखना चाहिए, न कि इनके पीछे दुगनी गति से दौड़ते हुये गढ्ढे में गिर जाना।

इस प्रकार के कुसंस्कार होने पर भी साधक को आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हो सकता है, किन्तु उसे स्वीकार करना होगा कि गलती आखिरकार गलती होती है; उसे क्षमा माँगनी चाहिए। यदि वह पुरानी गलतियाँ दोहराता रहे तो फिर शक्ति की कृपा कैसे होगी? इस प्रकार के साधक को न केवल अपनी गलतियों को स्वीकार करना होगा अपितु आध्यात्मिक उत्थान की प्रक्रिया में बहुत धैर्यवान व सहनशील होना पडेगा क्योंकि कुण्डलिनी को बिगड़े चक्र ठीक करने व नाड़ियों को शुद्ध करने में समय लगता है। मैं जानता हूँ कि कुछ लोग कहेंगे कि मैं अतिशियोक्ति कर रहा हूँ लेकिन बात यह है कि मैं पश्चिमी जगत की अंधेरी तस्वीर को सामने रख रहा हूँ, जिसके बारे में वे खुद ही अनजान हैं। मैं बिलकुल भी अतिशियोक्ति नहीं कर रहा हूँ क्योंकि मैंने पश्चिमी जगत में सैकड़ों सहजयोगियों के साथ यह घटते हुये देखा है।

कुछ लोग आश्चर्य करेंगे कि मैं अपने विचार उन पर लादने का प्रयास क्यों कर रहा हूँ। मेरा उत्तर सीधा सा है: मैं अत्यंत विनम्रता से कहना चाहता हूँ कि मैं उनका ध्यान उनकी प्राथमिकता की ओर दिलाना चाहता हूँ, मैं अपने अनुभव को उनके अनुभव से जोड़ना चाहता हूँ। यदि आप सेक्स, धन व सत्ता में दिलचस्पी रखते हैं तो ठीक है, जैसी आपकी मर्जी, हो सकता है आप ये सब प्राप्त भी कर लें। किन्तु यदि आप स्वयं के आनन्द, आनन्ददायी चेतना एवं आत्मसाक्षात्कार में दिलचस्पी रखते हैं तो याद रखिए इसे सेक्स, धन व सत्ता से नहीं जोड़ा जाना चाहिए।

मेरे साथियों, भाईयों, मेरी बहनों.... शायद मेरी बातों से आपके अहं को ठेस पहुँचे लेकिन मैं अपनी बात को जारी रखना चाहता हूँ। मौज-मस्ती का समय समाप्त हो चुका है तथा मुझे विश्वास है कि आप इतने शक्तिशाली हैं कि यह समय व्यर्थ नहीं गवायेंगे। मेरे साथी भाई एवं बहनों इन वाक्यों को पढ़ते हुये आप मुझे असभ्य या रौब जमाने वाला मानने से पहले कृपया अपने भीतर झांक कर देखें। आप भी एक खुली रचना हैं, आपकी सोच से भी परे

बिना प्रारंभ और अंत के। आपमें इतनी संभावनायें हैं कि आप इसे परिभाषित नहीं कर सकते! यदि आप कहें, ''मैं स्वयं को जानता हूँ।'' तो मेहरबानी से खुद से झूठ मत बोलिए। क्या आप चक्रों को महसूस कर सकते हैं? आप नहीं कर सकते.... आप अपने हृदय की गहराई में जानते हो, कि आप खोज में भटके हुये हो और यह कार्य व्यर्थ था। लेकिन आप इसे मानने को तैयार नहीं हो। क्या यह इसलिये है कि आप अपने अन्दर इतने शून्य हैं कि आप अपनी दिव्यता का सामना ही नहीं कर सकते। अथवा यह इसलिये कि आपकी खुद की कहानी किस बारे में है यह जानने की दिलचस्पी आपमें नहीं है? आप कितने और जन्म अपने सपनों को व्यर्थ करने में लगायेंगे लेकिन आप मानते हैं कि आप जागे हुये हैं, क्यों यही है ना? मुझे उम्मीद है कि आप जागे हुये हो क्योंकि अब समय बहुत कम बचा है तथा परमात्मा द्वारा आखिरी छटांई से पूर्व यह पीढी इसे जान लेगी: कृपया खुद को ठीक कर लें।

सन एक हजार की पूर्व संध्या पर मध्ययुगीन यूरोप की घंटियाँ बज रही थीं तथा लोग शोक मनाते हुये प्रलय के अंतिम दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे जो कभी नहीं आया। इसलिए लोग आराम से 'मानव पुत्र' तथा उद्धार व विनाश की भविष्यवाणी भूल गये। किन्तु हमारे सामने इतिहास का यह क्षण वह है जिसमें कम्प्यूटरों, वैज्ञानिकों तथा विचारकों ने भविष्यवाणी की है यह समय मनुष्य के खुद बनाये विनाश में ईश्वर के समान निर्माण की सम्भावना है जिसके बारे में कहा गया है :

''क्या ईश्वर अपने नामांकित (Elect), जो दिन रात उसके (ईश्वर) बारे में चिल्लाता रहता है, का दोष विवारण नहीं करेगा? क्या वह और अधिक प्रतीक्षा करवाएगा? मैं तुमसे कहता हूँ वह तेजी से उनको निर्दोष करेगा। फिर भी जब मानव-पुत्र आयेगा वह पृथ्वी पर विश्वास प्राप्त करेगा''? - (ल्यूक १८.७)

क्या हम मूर्ख हैं कि विश्वास करेंगे कि लार्ड जीजस का कथन व्यर्थ है?

''जैसा नोहा के समय था, वैसा ही 'मानव पुत्र' के समय होगा। उन्होंने शादी की, उन्हें शादी में दिया गया, उन्होंने खाया, पिया, नोहा बड़ी नाव

(Ark) में गया, बाढ़ आई, वे सब नष्ट हो गए। इसी प्रकार लोट के समय हुआ, उन्होंने खाया, पिया, खरीदा, बेचा, पौधे लगाए, मकान बनाए लेकिन जिस दिन लोट सोडम से बाहर गया, आकाश से अग्नि व गंधक की वर्षा हुई व उन सबको नष्ट कर दिया-इसी प्रकार उस दिन भी होगा जब 'मानव पुत्र' प्रकट होगा।

पवित्र कुरान चेतावनी देता है।

''जब जिसे आना है, आता है, कोई आत्मा इसके आने को नहीं रोकेगी, कुछ लोग अनाश्रित किये जाएंगे, बाकी लोगों को ऊँचे पद मिलेंगे'' (कुरान ५६.१)

सच है, पाप से भरे समाज में पाप से बचना लगभग असंभव है। हो सकता है कि हम खुद ही एक समय अपने पूर्वज रहे हों तथा हम ही समाज को आज इस पतित अवस्था तक लाने के लिए जिम्मेदार हों। और एक बार पुनः, हम ही वह लोग हों जो वचन के पूर्ण होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जिन्होंने निरन्तर उसी चीज़ को माँगा है जो आज प.पू.श्रीमाताजी का सहजयोग है। तो चलें, हम प्रायश्चित करें, उठ खड़े हों। आने वाला कल हमारा है। हम वर्तमान में प्रवेश करके, हम इस पर विजय प्राप्त करेंगे। क्योंकि वर्तमान परमात्मा से जुड़ा है और हम परमात्मा से जुड़े हैं। यहीं वह क्षण है, जहाँ से परम आनन्द की कहानी शुरु होती है।

हे साधक! कृपा करके जाग जाओ। परमात्मा स्वयं हमें बचाने आये हैं। हमारी देवी माँ सर्वशक्तिसंपन्न हैं: उन्हें कोई चुनौती नहीं दे सकता। किन्तु हमें अपने दिल व दिमाग में नम्रता लानी होगी तथा अपना अन्तर्दशन करना होगा: क्या हम दूध के धुले हुये हैं? क्या हम कलकी अवतार का सामना कर सकते हैं? हमें अपनी गलतियों तथा पापों का प्रायश्चित करना चाहिये। हमें अपनी बाल्य अबोधिता को पुनः प्राप्त करना चाहिये तथा क्षमा माँगनी चाहिये। रामायण में श्रीराम विभीषण से कहते हैं, ''जब कोई मेरी शरण में आता है, तो मैं उसे अस्वीकार नहीं कर सकता।'' श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, ''डरो मत, अपने सभी संदेह निकाल दो, मैं तुम्हारे समस्त पाप नष्ट कर

दूँगा।'' वैष्णव मत में यह माना जाता है कि अधमत्म व्यक्ति भी यदि ईश्वर के प्रति समर्पित हो जायें तो कल्याण हो सकता है। 'इस्लाम' शब्द का अर्थ ही समर्पण है। जैसा पिता ने कहा वैसा ही पुत्र जीजस ने भी कहा ''इसलिये मैं तुम्हें बताता हूँ कि यदि एक पापी व्यक्ति प्रायश्चित करे तो स्वर्ग में आनन्द होगा बजाये कि उन निन्यानवे धार्मिक लोगों के जिन्हें प्रायश्चित करने की जरुरत नहीं है।'' अल्लाह सर्वशक्तिमान, विवेकशील होने के साथ-साथ करुणामय, दयालु भी है। तो हमें भ्रमित होने की या डरने की जरुरत नहीं है। आखिरकार, क्या पाप दैवी प्रेम से बड़ा हो सकता है? प.पू.श्रीमाताजी कहती है, ''क्या विनाशकारी मूर्खतापूर्ण मानवी विचार सृष्टि या इसके रचनाकार को नष्ट कर सकते हैं?'' हमें साहस व स्पष्टता से देखना चाहिए कि हमने क्या किया है व प्रतिदिन क्या कर रहे हैं? उदाहरण के लिए हममें से कितने आधुनिक मुक्त समाज से पथभ्रष्ट हुए, निम्न कथन से सहमत होंगे :

''आपने यह कथन सुना होगा कि आप व्याभिचार नहीं करेंगे। किन्तु मैं कहता हूँ कि जो भी व्यक्ति स्त्री को वासनापूर्ण दृष्टि से देखता है, उसने पहले ही अपने हृदय में ही उसके साथ व्यभिचार कर लिया है।'' - (मैथ्यू ५.२७)

प्रभु ईसा मसीह के उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि, UPI (मानसिक बाधायें) एवं अतृप्त आत्माएं एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में, नजरों के माध्यम से जा सकती हैं। क्या हम श्रीकृष्ण की इस चेतावनी को अनदेखा तो नहीं कर रहे हैं? ''वासना आत्मा को अपनी भूखी लपटों में छुपा लेती है। यह विवेकी पुरूष की परम शत्रु है। बुद्धि, इंद्रियाँ एवं मस्तिष्क इसकी लपटों में ईंधन का काम करते हैं। इस प्रकार यह इस शरीर में रहने वाले (आत्मा) को भ्रमित करके उसके निर्णय को प्रभावित करती है।'' - (भगवद् गीता-३)

निश्चय ही हमारे व्यवहार के कुछ पहलू हैं, जिनमें सुधार किया जा सकता है ...... यह सही समय है, जब हम जाँचें कि हम स्वयं पर कितना नियंत्रण रखते हैं। हमें धर्म के प्रति अपनी आस्था को दृढ़ करना होगा ताकि जब समय (निर्णय का) आये तो हम बिखर न जाए। इतिहास के इस मोड़ पर, जब कलियुग समाप्त हो रहा है तब हमें यहाँ समग्रता या बिखराव में एक

विकल्प चुनना है। इसी विकल्प में हमारा अस्तित्व दाँव पर लगा है। धर्म ही आंतरिक तत्व व जुडाव की शक्ति है जो सही संतुलन प्रदान करती है। प.पू.श्रीमाताजी के शब्दों में ''यह (धर्म) वह बिन्दु है जहाँ पाप का आकर्षण काम नहीं करता', हमारे पास आशा व आनन्द का यह कारण है कि पावनी माँ हमारे उद्धार के लिए आई हैं। किन्तु वह चाहती हैं कि हम सब सहयोग करें।

सबसे पहले हमें चाहिए कि हम मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के जाल में न फंसे, जो हमें प्रेरित करते हैं कि हमें अपने पापों या गलत कार्यों के लिये किसी ओर को दोषी ठहराना है : माता-पिता, बचपन, समाज इत्यादि। अहं का घमंड इन सिद्धांतों का खुशी-खुशी अनुकरण करता है तब हम दूसरों को सताने-दबाने में लगे रहते हैं तथा खुद को धोखा देने में। जैसा प.पू. श्रीमाताजी कहती हैं, ''अहं का कार्य आपको वास्तविकता से दूर रखना है।'' अहंकारी व्यक्ति मूर्खों के स्वर्ग में रहता है। सिर्फ आत्मसाक्षात्कार के बाद ही मन की अहं से एकरूपता तोडी जा सकती है। शुरुआत में, अपनी कठोरता, स्वार्थीपन को देखकर मैं दंग रह गया। साथ ही यह देखकर कि कितनी जबरदस्त चालाकी से 'श्रीमान अहंकार' मेरे बोध तथा विचार प्रक्रिया को बिगाड़ रहे थे।

किन्तु अब बुरा लगना, शर्मिंदा या दोषी महसूस होना आपको प्रति अहं की अति की ओर ले जायेगा तथा यह एक बार फिर आपको सुषुम्ना के मध्य मार्ग से दूर कर देगा। कुछ लोग अपनी जिंदगी गुप्त रूप से इस मनोदशा का आनन्द लेने में ही गुजार देते हैं कि उन्हें कितना बुरा लगता है.... जिन्दगी कितनी डरावनी है... इत्यादि!

जब आप सामूहिक अचेतन में छलांग लगाते हैं तो 'पर-पीडन' और 'स्व-पीड़न' का नाटक समाप्त हो जाता है।

हालांकि आत्मसाक्षात्कार की घटना बगैर किसी प्रयास के होती है फिर भी आप आश्चर्य करेंगे और सोचेंगे, ''हमें आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए?'' इसके लिये हमें शरीर , मन व भावना से

किसी अति की ओर नहीं फिसलना चाहिये।

यदि कोई पुरुष एक स्त्री से प्यार करता है, तो उसे पहले उससे शादी कर लेनी चाहिए। यदि कोई स्त्री किसी पुरुष से प्यार करती है तो उसे भी पहले उससे शादी कर लेनी चाहिए। यदि दो लोग एक दूसरे से प्रेम ही नहीं करते तो फिर एक साथ रहने का क्या मतलब है? प.पू.श्रीमाताजी ने एक बार आश्चर्य व्यक्त किया: ''यदि प्रेम, विवाह की अनुकूलतम दशा में भी खिल नहीं सकता तो यह इसके बगैर कैसे खिल सकता है? पूरा विश्व प्रेम को कैसे जानेगा?''

हमें विवाह की पवित्रता में ही यौन सुख खोजना चाहिए। हमें ड्रग्स व दूसरे प्रकार के नशे जैसे शराब व धुम्रपान से दूर रहना चाहिए।

हमें सामाजिक वैधता के नाम पर हो रही हिंसा, यौनाचार, लालच एवं अन्य पापों से मुंह मोड़ लेना चाहिए। यह सलाह टूटे हुये आध्यात्मिक मनोशरीर उपकरण को और अधिक टूटने से रोकने के लिए है। मैं मानता हूँ कि अधिकतर लोगों के लिये यह सलाह मानना बहुत मुश्किल है और इसे निरस्त करना आसान है। किंतु क्या आप नहीं मानते कि मैं केवल सहजयोग की ही बात नहीं कह रहा हूँ? हम क्यों नहीं समझते कि सभी महान धर्मों के प्रमुख शिक्षकों एवं संतों ने अनगिनत बार इन सरल शिक्षाओं से हमें अवगत कराया है। क्या हम इस धरती पर कई साम्राज्यों के पतन का कारण भूल गये हैं? क्या हम मान चुके हैं कि भूतकाल के सभी संत निकम्में, मूर्खों का बंडल मात्र हैं तथा हम ही महान 'मुक्ति' के प्रबुद्ध लोग हैं? हम कुछ भी मान लें, न्याय सही और गलत की सच्चाई के आधार पर होगा, न कि हम जो सोचते हैं उस आधार पर। सहजयोग में चैतन्य लहरियों के माध्यम से यह पहले ही खोजा जा चुका है।

काठमांडू में मेरे सुंदर से बाग में गुलाब, केक्टस व पाईन के वृक्ष हैं जिसकी देखभाल मेरा एक युवा माली करता है। उसे बहुत थोड़ी अंग्रेजी आती है, वह कभी स्कूल नहीं गया था तथा उसे यह मालूम नहीं है कि लोग

नैतिकता के बारे में सिद्धांत बनाते हैं। लेकिन वह साक्षात्कारी है। वह लोगों, स्थानों, उद्देश्यों तथा स्थितियों का धर्म जानता है, ''हाँ, यह ठीक है। लहरियाँ अच्छी है। मुझे सिर पर अच्छा लग रहा है,'' या ''यह बुरा है। मेरे बायें हाथ में दर्द हो रहा है। मेरे पैरों में जलन हो रही है। मुझे सरदर्द हो रहा है।'' धर्म से मुक्त धर्म दूतों को इस बालक का धर्मांतरण करने में कठिनाई होगी क्योंकि उनके मुँह खोलने से पहले ही उन्होंने उसे अपने चक्रों में जलन महसूस करा दी होगी।

हमें परिवार के गुणों के बारे में थोडा विस्तार से विचार करना होगा क्योंकि इस पावन संस्था पर आधुनिक 'प्रबुद्धता' द्वारा चारों ओर से हमला हो रहा है।

हमें मालूम है कि किसी जीवित प्राणी की कोशिकाएं स्वाभाविक रूप से बड़े व्यवस्थित रूप में जीवित ढाँचे में सजी रहती हैं तथा इस ढाँचे के टूटने का अर्थ कोशिका की मृत्यु या पास वाली कोशिका में कैंसर के परिवर्तन की आशंका होना है। यही नियम मानव के लिए भी सत्य है।

प्रत्येक व्यक्ति मानसिक जीवन शक्तियों के सूक्ष्म नेटवर्क का अभिन्न अंग होता है, जो उसके व्यक्तित्व में संतुलन बनाये रखता है: यह बहुमूल्य नेटवर्क अथवा ढाँचा ही 'परिवार' कहलाता है। यदि नेटवर्क में कोई गड़बड़ी होती है, तो व्यक्तित्व की लय गंभीर रूप से संकटमय हो जाती है।

सहजयोग के अभ्यास से हम इन सूक्ष्म नियमों का दैनिक उपयोग पाते हैं : एक युवा स्त्री के पूरे बायें भाग में जलन हो रही थी, तो हमने उसे कहा कि, ''आपके भावनात्मक जीवन में कुछ गंभीर गड़बड़ी है।'' वह टूट गई और रोते हुए बोली कि अभी हाल ही में वह तलाक से गुजरी है। इससे अधिक बुरा उसके माता-पिता का यह सोचना था कि इससे उसका भाग्य (धन-संपत्ति) खुल जाएगा। यदि आपके परिवार में परेशानियाँ हैं तो यह परेशान परिवार आपके भीतर संघर्ष करता है : आप उत्तेजित होते हो, थक जाते हो, असुरक्षित महसूस करते हो.... ये खराबियाँ चक्रों में रिकार्ड हो जाती है :

दायाँ हृदय चक्र (पिता एवं पति का स्थान), मध्य एवं बायाँ हृदय चक्र (माँ का स्थान), बायाँ नाभि चक्र (पत्नी का स्थान) बाधित हो जाते हैं। हमें यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि ज्यादातर साधक अपनी पारिवारिक समस्याओं से बहुत व्यथित थे!

यदि पारिवारिक वातावरण बहुत ही खराब हो तो व्यक्तित्व रचना पूर्णतया बिगड सकती है। उदाहरण के लिये यदि पिता शराबी हो, माँ का चरित्र खराब हो और पति आशिक मिजाज हो तो जाहिर है परिवार के आश्रित लोग बिलकुल बिखर ही जाएंगे। आदर्श मानवीय व्यवहार का आदर्श खत्म हो गया है, उनके मूल्य समाप्त हो गये हैं। बदले की भावना से वे स्वयं हानिकारक आचरण में लिप्त हो सकते हैं। जब परिवार का कोई सदस्य स्वेच्छाचारी हो जाता है तो उसका संबंध परम सामूहिक जीवात्मा से टूट जाता है, परिणामस्वरूप द्वेष शुरू हो जाता है जो उसके परिवार व इसके बाद पूरे समाज में फैल जाता है। सामाजिक कोशिका कैन्सर-ग्रस्त हो जाती है।

चैतन्य लहरियों के द्वारा हम पाते हैं कि जिस व्यक्ति ने पारिवारिक मूल्य त्याग दिये हैं उसके द्वारा परिवार विरोधी (धर्म विरोधी) सूक्ष्म तरंगे निकलनी शुरू हो जाती हैं। किसी दूसरे कमजोर इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति का चित्त इससे आकर्षित होता है व उसे तरंगों के इंजेक्शन द्वारा धर्म विरोधक टीका (Inoculation) लग जाता है । उसका (दूसरे व्यक्ति) व्यवहार उसके चित्त के अनुसार हो जाता है। उसके मूल्य बदल जाते हैं। इस प्रकार बगैर जानकारी में आये तथा बगैर अडचन के समाज के भीतर कैन्सर वृद्धिकरण प्रक्रिया शुरू हो जाती है। समाज को पतित करने वाली ये कोशिकायें एक-एक करके बढ़ती चली जाती हैं।

प.पू.श्रीमाताजी समाज को वह चेतना प्रदान करना चाहती हैं, जिसके माध्यम से वह स्वयं की रक्षा कर सके। इस प्रकार वे पूर्ण स्पष्टता के साथ परिवार के महत्व को बताती हैं। एक बार उन्होंने कहा था : ''देवी लक्ष्मी हमारे संरक्षक पिता श्री विष्णु की शक्ति है, वह इस सृष्टि में अपनी शक्ति एवं

सौन्दर्य को एक गृहिणी में गृहलक्ष्मी के रूप में प्रकट करती हैं। परिवार, जो समाज की महत्वपूर्ण ईकाई है, की देखभाल माता (गृहलक्ष्मी) द्वारा होती है। वह परिवार की देवी माता है। पुत्रियाँ सुंदर देवियाँ हैं व पौत्रियाँ परी देवियाँ हैं।'' पति-पत्नी के बारे में वह कहती हैं कि वे एक समान नहीं हैं लेकिन बराबर हैं। एक रथ का दांया व दूसरा बांया पहिया है। यदि एक पहिया बड़ा और दूसरा छोटा हो तो रथ ठीक ढंग से नहीं चल सकेगा। दोनों का सम्मान होना चाहिए। पति-पत्नी का संबंध पूर्ण रूप से अनौपचारिक होना चाहिए, समस्त कृत्रिमतायें छोड देनी चाहिए। उन्हें आपस में प्रेम करना चाहिए तथा एक-दूसरे की फिक्र जताने के लिए यदि कभी झगड़ा हो तो कोई हर्ज नहीं। यह स्वस्थ संबंध की पहचान है। किंतु एक स्त्री को स्त्री की तरह व्यवहार करना चाहिए और एक पुरुष को पुरुष की तरह। स्वाभाविक वफादारी, प्रेम व आपसी सौहार्द ही वह मार्ग है जिसके द्वारा वैवाहिक जीवन में आनंद दिया जा सकता है व लिया जा सकता है। आपसी निष्ठा में तनिक भी कमी नहीं आने देनी चाहिए और यदि कभी कोई गलती हो जाये तो खुले ढंग से स्वीकार कर लेनी चाहिए। जो व्यक्ति एक पत्नी-एक पति संबंध में विश्वास नहीं रखता उसे कभी भी विवाह नहीं करना चाहिए : दूसरे व्यक्ति को दुखी क्यों किया जाये? गुप्त से धोखा देना सबसे गलत काम है जो पूरे समाज को नष्ट कर सकता है।

प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं कि अर्थ व्यवस्था के मौद्रीकरण की वजह से दाम्पत्य जीवन में विसंगति आ गई। पुराने जमाने के कृषि आधारित समाज में, पुरूष व स्त्री समान मूल्य के सामाजिक कार्य करते थे। पुरूष लकड़ी काटता तथा शिकार करता था और स्त्री खाना बनाती, परिवार की देखभाल आदि कार्य करती। दोनों का अहं संतुष्ट था। किंतु जब से पुरूष ने धन कमाकर लाना आरंभ किया, वह अधिक महत्वपूर्ण होना आरंभ हो गया। उसका अहं फूलने लगा व उसने पत्नी का महत्व कम करना शुरू कर दिया। धन-उन्मुख समाज में धन ही कसौटी बन जाता है। चूंकि पत्नी धन अर्जन नहीं करती, उसकी गतिविधियों को सामाजिक मान्यता नहीं मिलती है। धनी

पुरूष सर्वेसर्वा बन जाता है। पुरुष महिला सचिव अथवा सेल्सगर्ल से इश्क लड़ाते हैं और अपनी पत्नियों से दुर्व्यवहार करते हैं। जिस परिवार में माता का सम्मान नहीं किया जाता, उस परिवार में पुत्रियाँ पवित्रता की भावना छोड़ देती हैं, पुरुषों का स्वच्छन्दकारी व्यवहार वातावरण को प्रदूषित कर देता है जिससे परिवार तथा समाज असतुंलित हो जाते हैं।

जब पुरूष अपनी विवाहित पत्नी को उचित सम्मान नहीं देता तथा उसका ध्यान नहीं रखता तो इससे पत्नी के अहं को चोट पहुँचती है। वह प्रेममय देखभाल, भावनात्मक संतुलन तथा अस्तित्व के बायें भाग वाले गुणों को छोड देती हैं तथा अहं उन्मुख हो जाती है। वह पुरुष के विरूद्ध हथियार उठा लेती है।

यह आंदोलन कई रूप ले सकता है। एक महिला पेशेवर वादी, सक्रियवादी तथा नारीवादी बन जाती है या वह एक के बाद एक अन्य पुरुषों लुभाना शुरू करती है तथा इस प्रकार अपने अहं को पुरूष की तरह संतुष्ट करती है।

जब स्त्री अपनी पवित्रता को छोड देती हैं तो वह सब कुछ जीत सकती है (प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से) जिससे सामाजिक रूप से पुरुष की उच्चता बनी हुई है। धन.... तथा पुरुषों से अधिक सत्ता व संपदा आर्जित कर सकती है। इस प्रक्रिया में वह यौन युद्ध जीत सकती है किन्तु वह सब कुछ नष्ट कर देती है तथा वह आसानी से प्रभुत्व के राक्षस के रूप में बदल जाती है। भावनात्मक भ्रम समाज पर हावी हो जाता है: समलैंगिकता बढ़ती है। पुरुष व स्त्री एक दूसरे के पूरक हैं व एक दूसरे के जीवन को बहुत सुंदर व आनंददायक बना सकते हैं। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं ''पुरुष अपनी चीज़, अपनी पत्नी का आनंद उठाना कब सीखेगा, बजाय कि दूसरों की स्त्री व वस्तु पर लोभ करने के।'' यौन व धन के बीच विवाह, पुरुष व स्त्री के बीच विवाह को तोड देता है। मानसिक नर्क के द्वार पर खड़े पुजारी बड़े घमंड से अपने दुश्मन व संयम के विरूद्ध चुनौती देते हैं। वे कहते हैं कि, 'धर्म की क्या जरूरत है।' पवित्रता का क्या लाभ? अगर आप चाहें तो इसमें फिर यह भी

जोड सकते हैं, सच्चा प्रेम क्यों ? तथा उत्क्रान्ति किसलिये ?

भारत में विवाह के अवसर पर वधु को नौ सांकेतिक उपहार दिए जाते हैं जो कि श्री लक्ष्मी की शक्ति के प्रतीक हैं। यह सांकेतिक रूप से प्रकट करता है कि विवाह संस्था के भीतर स्त्री की शक्ति उसके लिये तथा उसके आसपास रहने वाले लोगों की उत्क्रान्ति के लिए श्रेष्ठतम पथ तैयार रखती है। यदि प्रात: काल में विवाहित स्त्री दिख जाये तो इसे शुभ समझा जाता है। विवाहित स्त्री की आराधना में असंख्य संस्कार संपादित किये जाते है। यदि पाँच विवाहित स्त्रियाँ भोजन के लिए आमंत्रित की जाती हैं तो माना जाता है इससे बहुत आशीर्वाद मिलता है। स्त्रियों के अपने अलग त्यौहार होते हैं।

हमें विवेक का पूरी तरह उपयोग करते हुए धर्म को मान्यता देनी चाहिए तथा अपनी पूर्ण स्वतंत्रता में इसे अपने अन्दर स्थापित करना चाहिए। नैतिकता अपने अन्दर स्थापित करने हेतु स्वतंत्रता बहुत जरूरी है। यदि नैतिकता किसी डर अथवा विवशता के कारण अपनाई गई है तो वह अधिक समय तक टिक नहीं पायेगी। परम पूज्य श्रीमाताजी कहती हैं :-'यह कौवे को लगाये मोर पंख की तरह झड़ जायेगी।' लेकिन विवेक छोड़ने, परिवार तोडने तथा हमारी आत्मा के षड़रिपुओं को हम पर हावी होने देने की कोई स्वतंत्रता नहीं हैं। पाप करने हेतु स्वच्छंद छूट देने वाली एवं बुराई सहन करने वाली परम्पराओं व रहन-सहन के ढंग पर रोक लगानी चाहिए। परोपकारी संरक्षण परमावश्यक है जैसा श्रीमाताजी कहती हैं : ''प्रजातंत्र को राक्षस तंत्र नहीं बनने देना है।''

मुझे नीच पापियों को नसीहत देने वाला उपदेशक न समझें। अपने जीवन के प्रथम भाग के २५ वर्ष की आयु तक मैंने उन्ही गलतियों के दु:ख को भोगा है जो वर्तमान पीढ़ी कर रही है।

यदि आज मैं यह देख पा रहा हूँ कि क्या सही है या क्या गलत है तो यह इस वजह से नहीं है कि मैंने अंर्तदृष्टि से कोई परम ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मैं सत्य को जानता हूँ क्योंकि मैं परम पूज्य श्रीमाताजी से मिला जो मुझे इस सत्य तक ले गई : यह सीधी बात है। मैं मात्र मनुष्य हूँ, मानवीय कमजोरी,

भ्रम तथा अज्ञानता से युक्त प्राणी। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि सभी मानव प्राणियों को पृथ्वी का नमक, विश्व का प्रकाश, ईश्वर-पुत्र से कम नहीं कहा गया है। इसलिए मानवीय संभावनाओं के भीतर सुधरने एवं परिवर्तन का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है।

जब मैं किशोर अवस्था में था तो मुझे लगा कि नियमों के संरक्षक, माता-पिता, शिक्षक, शिक्षाविद आदि स्वयं नहीं जानते थे कि नैतिकता क्या है तथा यह नियम किसलिए हैं ? आप मुझसे कहते हैं, 'यह मत करों, क्योंकि यह गलत है', ठीक है,किन्तु मुझे बताईये कि यह गलत क्यों है! इसका जवाब कुछ भी होता था, परन्तु विश्वासोत्पादक नहीं। इसलिए मैनें इसका पता लगाने के लिये उन चीज़ों को किया जिन्हें करने से मना किया गया था : चोरी करना, झूठ बोलना, इंद्रियों को सुख देने वाले काम करना इत्यादि। जब आप साक्षात्कारी नहीं होते हैं तो परेशानी यह होती है कि आपका मध्य नाड़ी तन्त्र धर्म के प्रति जागरूक नहीं होता है। मान लीजिये, आप अपनी अंगुली पाप की लौ पर रखते हैं, किंतु ऐसी कोई नाड़ी नहीं है जो जलन की सूचना मस्तिष्क को दे सके ताकि आप अपना हाथ वहाँ से हटा सकें। इसलिये मैंने गलत राह पकड़ ली और अपने चक्रों को खराब करता गया। मैं बहुत सी लड़कियों से मिला...मैंने इस काम में बहुत समय तथा उर्जा बर्बाद की। मुझे कभी-कभी खुशी मिलती थी, किन्तु धीरे-धीरे मुझे यह अनुभव कम होता चला गया कि खुशी नाम की चीज़ क्या होती है। मैं अपनी ताज़गी की सूक्ष्मता व अबोधिता को धीरे-धीरे खो रहा था तथा मेरी इंन्द्रियों की चैतन्यता शिथिल हो रही थी। मैं ऐसे युवकों से भी मिला जिनके अनुभव मेरे समान थे। एक अन्य गलती जिससे मुझे बचना चाहिए था वह थी-ड्रग्ज लेना।

जब आप ड्रग्ज (अम्फेटमाईन आदि) लेते हैं तो आपकी पिंगला नाड़ी अधिक सक्रिय हो जाती है, आप अपने अंह के माध्यम से सामूहिक अतिचेतना में प्रवेश कर जाते हैं, अर्थात विराट के रजोगुण में। अधिकतर ड्रग्ज, इड़ा नाड़ी को ही प्रभावित करती है व व्यक्ति को सामूहिक अवचेतन

अर्थात विराट के तमोगुण के क्षेत्र में फेंकती हैं। इस कारण अहंकार की सुरक्षात्मक भूमिका समाप्त हो जाती है तथा व्यक्ति को अपने से बाहर के अनुभव हो सकते हैं, वह अपने भूतकाल में जा सकता है। भूतों से संपर्क कर सकता है। मैं ड्रग में बहुत दिलचस्पी नहीं रखता था, मैं केवल उत्सुक था। मैंने पाया कि ड्रग्ज अस्तित्व के उन स्तरों को खोलती है, जिनके बारे में आधुनिक विज्ञान को कोई जानकारी नहीं है। मेरा निष्कर्ष सही था। उस संबंध में श्रीमाताजी ने कहा है कि ''जो भी कुछ लिखा गया है वह धर्म शास्त्र नहीं है तथा जो भी कुछ अज्ञात है वह दिव्य (परमात्मा) नहीं है।'' किन्तु ड्रग्ज के पुजारी इसकी चुकाई जाने वाली कीमत को नहीं देखते। धन के अलावा अन्य वस्तुओं के रूप में भी फीस देनी पडती है : मस्तिष्क कोशिकायें, स्नायु तन्त्र, चक्रों की खराबी इत्यादि। नाड़ियों पर लगातार दबाव के कारण कैन्सर हो जाता है, कहने की जरूरत नहीं है कि ड्रग्स भूत प्रेतों (UPI) को आमंत्रित करती हैं। परम पूज्य श्री माताजी के सामने आते ही ड्रग लेने वाले कांपने लगते हैं। चित्त को भ्रमित करने वाली ड्रग के कारण, ड्रग लेने वाले को परम पूज्य श्री माताजी के आस पास प्रकाश का तेज़ (Auras) दिखाई देता है। कुछ ड्रग लेने वालों को परम पूज्य श्रीमाताजी विविध रंगों की चमकती ज्वालाओं के स्तंभ के रूप में दिखाई देती हैं।

न्यूयॉर्क की एक शाम को, जब मैं अपने कुछ मित्रों के साथ कोकीन लेते हुये एक अश्वेत लड़की को देख रहा था। एक पेंडुलम भांति मेरा चित्त अंहकार से प्रति अहंकार की ओर गया। एक बार जब मेरा चित्त वर्तमान में आया तो मेरी दृष्टि बदल गई। वह लड़की वास्तविकता में बड़ी सुन्दर, पवित्र एवं दिव्य दिखाई दी, उस समय उर्जा सुषुम्ना से गुजर रही थी जिससे उसकी वास्तविकता प्रकट हुई। हमने सामूहिक चेतना के आनंदपूर्ण क्षणों की साझेदारी की क्योंकी मैं भी सुषुम्ना पर था। एक प्रकार से प्रेम व सुन्दरता का एहसास हुआ। किन्तु हम उस स्थिति में नहीं रह सके व अवचेतन में पहुँच गए। मैंने उस जगह महसूस कर लिया था कि कौन खेल, खेल रहा है। उसके चेहरे पर मैंने आत्मा जैसी चीज़ प्रवेश करते हुये देखी अथवा जो पहले से ही

उसके अन्दर मौजूद थी। मुझे नहीं पता कोई १९ वीं सदी की कामांध, श्वेत महिला मुझे दिखाई थी। मुझे बेचैनी यूँ होने लगी कि वह भूत-बाधा (U.P.I.) मुझे घूर रही थी। फिर मेरी बेचारी मित्र, अवचेतन को निचली सतहों में गिर पड़ी तथा मैंने अपनी खुली आँखों से एक भद्दी शैतानी सत्ता को उसके चेहरे पर उभरते हुये देखा। निस्संदेह, मैंने अनुभव किया है कि ड्रग्ज लेने वालों में इस प्रकार की नजदीकी घटनायें घटती रहती हैं। कोकीन के कारण उत्पन्न हुई मानसिक यौन संकीर्णता के कारण मैंने अपने मन में भूत-बाधा (U.P.I.) से संघर्ष करते हुये वह शाम बिताई। एक क्षण में स्वर्ग से नरक में पहुँच गया। देर-सबेर इसे होना ही था क्योंकि ड्रग्ज, जिस प्रकार की वे होती हैं, अवचेतन या अतिचेतन का बहुत बड़ा द्वार खोल देती हैं।

मुझे अतिचेतन की एक यात्रा का स्मरण है। एक बार केलिफोर्निया पहाड़ियों पर एक दूरस्थ लकड़ी के मकान में अपने कुछ भले मित्रों के साथ मैंने L.S.D. की एक बूंद ले ली। कुछ समय के बाद मुझे प्रकृति,पेड़ों, खेत-खलिहानों तथा अपने अन्दर पृथ्वी की जबरदस्त उर्जा का अहसास हुआ। मैंने महसूस किया कि मैं ठीक उसी समय बहुत बूढ़ा हो गया हूँ और बहुत युवा भी। इस बीच मेरी एक मित्र किसी आनन्दपूर्ण दृश्य में मग्न हो गई, मुझे नहीं मालूम कि उसने क्या देखा, किन्तु मैं समझता हूँ कि वह अतिचेतन में प्रवेश कर गई, वह ईश्वरीय दृश्य के प्रकाश में पूर्णतया मुग्ध हो गई। L.S.D. के कारण उत्पन्न हुये बनावटी ईश्वरीय अहसास से अलग होना उसे बर्दाश्त नहीं हुआ। उसने स्वीकार कर लिया कि वह दिव्य हो गई है। एक महीने बाद उसने अपने पति एवं बच्चे को छोड दिया और कुछ मित्रों के साथ असम्भव स्वर्ग की तलाश में निकल पड़ी।

उपरोक्त दो घटनायें ड्रग की कहानी को संक्षिप्त में अच्छी तरह स्पष्ट करती हैं। यदि आप स्वयं को दुष्ट आत्माओं के लिए खोल देते हैं तो पहले वे आपके अवचेतन में कूद पडेंगी व आपके चक्रों में आपकी उर्जा के परजीवी के रूप में प्रवेश कर जाएंगी। यदि आपको अतिचेतन में ईश्वरीय प्राणी दिखाई देते हैं तो आप उन्हें केवल देख सकते हैं, उनके जैसा बन नहीं सकते

क्योंकि वे संत आत्माएं हैं वे आपके मस्तिष्क में प्रवेश नहीं करेंगी। यदि अतिचेतन से कोई भूत (UPI) आपमें प्रवेश करता है तो यह उनमें से एक होगा जो आपका उपयोग अपने उद्देश्य के लिये करते हैं। इनका शिकार व्यक्ति इस बारे में कुछ भी नहीं जानता है। क्योंकि उनके पास निर्णय करने वाला चैतन्य लहरियों की चेतना का उपकरण नहीं है, जिससे वह अहंकार व प्रतिअहंकार की अवस्था का परीक्षण कर सके या जान सके कि क्या गलत हो रहा है तथा इसको कैसे ठीक कर सकते हैं। ऐसे में वह उन्मादी हो सकता है।

ड्रग के प्रभाव से कुछ समय के लिए आप अनजान स्थिति में पहुँच जाते हैं, इसलिए यह लोगों को इतनी आकर्षित करती हैं। आप कुछ समय के लिए सुषुम्ना नाड़ी पर भी पहुँच जाते हैं, किन्तु आप हमेशा मध्य में नहीं रह सकते हैं, क्योंकि पार्श्वीय गतिविधि शीघ्र इड़ा या पिंगला नाड़ी में ले जायेगी। इसके अतिरिक्त दैनिक जीवन में, वास्तविक रुप में सुषुम्ना में रहना असम्भव हो जाता है क्योंकि अपने आप चलने वाला स्नायुतंत्र गड़बड़ हो जाता है। हमने पाया है कि ड्रग से ग्रसित लोगों को आत्मसाक्षात्कार पाने में काफी समय लगता है। यदि वे ड्रग लेना नहीं छोड़ते तो वे साक्षात्कारी स्थिति में अधिक समय तक नहीं रह पाते क्योंकि ड्रग मानव चेतना के विरुद्ध कार्य करती है। अपने चित्त को ड्रग पर न जाने दें, उन्हें बिल्कुल छोड़ दें। अवचेतन और अतिचेतन क्षेत्र में मानव-चेतना अधीन या अमानवीय हो जाती है।

मैं अपनी खोज के वर्षों के दौरान कई अलग-अलग क्षेत्रों तथा कभी-कभार विचित्र इलाकों में गया: यह पश्चिमी साधकों की एक आम कहानी है। हम लोग सभी संभव भ्रमण पर गये हुये हैं : पॉप संगीत, यात्राएं, मोटर साइकिल यात्रा, सेक्स, नौका, कम्यून अगुरूओं के चक्कर इत्यादि। 'भ्रमण' (ट्रिप) का अर्थ होता है अपना पूरा चित्त लगा देना तथा चित्त ही वह तत्व है जो हमारे भाग्य को निर्धारित करता है: बुद्ध की तरह आंद्रे गिड़े ने कहा, ''जहाँ मेरी इच्छाऐं जाती हैं, वही मैं चला जाता हूँ।'' हम अपने चित्त के अनुसार चलते हैं तथा यह चित्त ही है जिसके माध्यम से हम स्वयं को कर्म-

चक्र से मुक्त कर सकते हैं अथवा आगे और भी गुलाम हो जाते हैं। अतः, व्यक्ति किस भ्रमण पर निकला है, यह एक प्रासंगिक प्रश्न है तथा एक नियम के अनुसार अच्छा यही है कि हमें बहुत भ्रमण नहीं करना चाहिये। ठीक यहीं सुकरात मेरे लिये मददगार सिद्ध हुये (जानों कि तुम क्या जानते हो): मैं कभी अति पर नहीं गया। न ही मैं किसी चीज़ में जरूरत से ज़्यादा लिप्त था; या यहाँ तक कि अपने को किसी चीज़ के लिये पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध नहीं किया था क्योंकि मुझे पता नहीं था कि यह इस लायक है या नहीं, तथा मुझे पता था मैं यह नहीं जानता था। मुझे विश्वास था कि मैं अबोध हूँ, फिर भी मैंने स्वयं को बहुत हानि पहुँचाई। मैंने स्वयं की कितनी हानि कर ली है यह जानने के बाद मुझे बुरा लगना शुरू हो गया: स्वयं को निकम्मा, दोषी मानने लगा तथा मैं पश्चाताप करने लगा। जिससे मैं ईड़ा नाड़ी की ओर चला गया। परम पूज्य श्रीमाताजी की करुणा के महासागर ने मुझे डूबने से बचा लिया। आज मैं सुकरात का धन्यवाद करना चाहूँगा कि उन्होंने पूर्ण रूप से खुद को बर्बाद करने से मुझे बचा लिया। मेरे साथी लोगों, जो सुकरात की बात नहीं समझ पाये, ने स्वयं को कई प्रकार भ्रमणों (ज़्यादातर विनाशकारी) में लगा दिया : उन्हें पता नहीं था कि यह जरूरी है या नहीं तथा उन्हें यह नहीं पता था कि उन्हें यह पता नहीं है। उन्होंने केवल इतना मान लिया कि यह सही था क्योंकि यह उनकी जरूरत के मुताबिक था या उन्हें यह पसन्द था। इस प्रकार की गलती की कीमत, बहुत भारी होती है: जिसके बारे में सोचने पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, हम लोगों के कितने मित्र हैं जो खो गये हैं? बहुत-बहुत, बहुत ही ज़्यादा!

जब मैं जिनेवा में वर्ष १९७२ की याद करता हूँ तो उन युवाओं के चेहरे मेरे सामने आते हैं जो भारत में नीच और कुटिल माने जाने वाले एक 'सत्‌गुरू' को पूरे हृदय से समर्पित थे, मैं केवल यह कह सकता हूँ कि उनका भ्रम उस समय के अंधकार का सूचक था।

सुकरात का उपकरण मेरे लिये बहुत उपयोगी रहा, विशेषकर जब मैं विभिन्न गुरूओं के पास जाता रहा। वे अपने बारे में कहा करते थे कि वो ये हैं, वो हैं तथा उन्हें ये दो, वो दो; मेरी प्रतिक्रिया यूं थी : 'शायद, चलो देखें।

जब तक मैं कुछ देख नहीं लेता, मुझसे कुछ मत माँगना, कम से कम समर्पण तो बिल्कुल भी नहीं।' खेल वाकई में बहुत आसान नहीं था क्योंकि आपको हमेशा लुभाया जाता था कि आप जिसे ढूँढते आयें हैं, उसके बहुत करीब हैं। साथ ही इन लोगों के आसपास का माहौल आमतौर पर बेहद आकर्षक होता है जो स्व अथवा सामूहिक स्वप्रेरणा को प्रेरित करता है। आखिर में, ये 'गुरु' लोग अपना काम बखूबी जानते हैं; जहाँ आप एक नन्हें बालक के समान भले साधक होते हैं; छोटासा खरगोश बड़े मान के साथ भेड़िये के मांद में चला जा रहा है।

जो भी हो पूर्ण चौकसी के सुरक्षा उपकरण का भला हो, मैं बच गया। इसमें कोई शक नहीं कि मैं बुरी तरह से स्वयं को बर्बाद कर चुका था किंतु मैं परम जोखिम से बच गया; गलत चीज़ों से जुड़ने के, जो कई मामलों में ऐसी जगह पहुँचा देती है जहाँ से लौटना मुमकिन नहीं है अर्थात अपने अन्दर धर्म के मार्ग सुषुम्ना नाड़ी पर वापस न आ पाना।

मेरा शरीर मुझसे कहीं अधिक धार्मिक था, क्योंकि यह उसका विरोध करता था, जिसके लिए मैं इसका दुरुपयोग कर रहा था। मुझे अपनी त्वचा में परेशानी होने लगी थी, साथ ही स्वास्थ्य भी गड़बड़ा गया था। मेरी मानसिक गतिविधि निरन्तर चलती रहती थी जिसे रोक पाना सम्भव नहीं था। रात में सोना मुश्किल होता चला गया। लेकिन मैं फिर भी संकेत नहीं समझ पा रहा था। स्विट्जरलैंड में मेरे डाक्टर ने प्यार से मुझे बताया 'आप न्यूरोवेजिटेटिव सिस्टम (Neurovegetative system) की परेशानी से पीड़ित हो।' मैंने कहा, 'ये क्या चीज़ है?' उसने कहा, '' यह एक प्रकार का तंत्र है जो अनुकंपी नाड़ी तंत्र पर निर्भर करता है, विशेष कर परानुकंपी नाड़ी तंत्र पर।'' मैंने पूछा, ''यह परानुकम्पी नाड़ी तन्त्र क्या होता है?'' उसने ईमानदारी से जवाब दिया कि इसके बारे में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को कोई जानकारी नहीं है। ये डाक्टर बहुत महँगा था, जिसका जवाब मुझे मददगार नहीं लगा। मुझे पता लगा कि मुझमें कोई भयंकर खराबी है, मैं घबराया हुआ और भी बीमार हो गया, कोई डाक्टर मेरी मदद नहीं कर सकता था। अपने संबंधों में,

मैं बहुत ही उन्मादी होता गया।

जब मैं पहली बार प.पू.श्रीमाताजी के निवास हर्स्टग्रीन में उनसे मिला तो वे कई बार क्षमा प्रकट करते हुए बाथरूम गई। वहाँ पर मैंने उन्हें उल्टी करते हुये सुना। वे मुझे आराम पहुँचाने के लिए मेरी चैतन्य लहरियों को अपने चक्रों पर ले रही थीं तथा जिसका प्रत्यक्ष परिणाम था-उनका बार-बार बाथरूम में जाना। मुझे इसके लिए शर्मिंदगी का अहसास हुआ.... मैं बहुत भाग्यशाली था कि वर्ष के उस समय उनके पास मुझे देने के लिए वक्त था। दस दिनों तक उन्होंने जबरदस्त धैर्य एवं प्रेम के साथ मुझ पर कार्य किया, मेरे अधार्मिक कार्यों के घावों को अपनी चैतन्य लहरियों की शक्ति की पवित्रता द्वारा भरा। मुझे उस समय अपनी पुरानी गलतियों की क्षति की मात्रा का अहसास हुआ। मुझे लगा मैं धीरे-धीरे ठीक हो रहा हूँ, शारीरिक स्तर पर और मानसिक स्तर पर भी।

जब आप अपनी कमजोरियों को एक मिथ्या पहचान के रूप में अलग कर लेते हैं तब आप उसी समय जान लेते हैं कि यह आप नहीं हैं, यह एक बेकार चीज़ है जिससे आपने खुद को जोड़ लिया था। अपनी कमजोरियों को स्पष्ट रूप से देखना एक कष्टमय प्रक्रिया है लेकिन यह वंदनीय कार्य है; अच्छा है कि आप अभी इससे गुजर जायें बजाये कि जब 'अंतिम निर्णय' का समय आ जाये। मैं आपसे आग्रह कर रहा हूँ कि आप अपने को बेहतर ढंग से संभाले क्योंकि मैंने अपनी कमजोरियों को स्पष्ट रूप से देखा है। इसे श्रीमाताजी निम्न प्रकार व्यक्त करती हैं :

''आप अपने कपड़ों को केवल तभी धो सकते हैं जब आप अपने शरीर से उन्हें निकाल दें। आप उन्हें बिना अपराधी मानें धोते हैं क्योंकि आप जानते हैं कि आप अपने कपडे नहीं हैं।''

अपने हृदय के अंदर के गोपनीय रहस्यों को खोलना ही सहजयोग है, जिन्हे नैतिक नियमों के संरक्षक नहीं समझा सके हैं। कोई जरूरत नहीं है कि विनाशकारी अनुभवों के द्वारा अब हम अपने उत्क्रांति के अवसरों को खो दें। धार्मिक शिक्षाओं और नैतिक नियमों का गहनतम अर्थ एक मात्र सत्य के

विभिन्न पहलूओं को व्यक्त करना है।

जैसा कि मैंने कहा है इसे कुण्डलिनी जागरण के समय सिद्ध किया जा सकता है। चैतन्य लहरियों के बहाव के रूप में परमात्मा, जो प्रेम करता है, सोचता है तथा आयोजन करता है, प्रत्यक्ष जानकारी देने लगता है। मानवीय चेतना इस प्रकार ब्रह्माण्डीय अचेतन से संवाद स्थापित कर पाती है। ब्रह्माण्डीय अचेतन आदिशक्ति की शक्ति है।

जब-जब जरूरत पड़ी, परम पूज्य श्री माताजी को मानव प्राणियों के उत्थान के लिए जिस पूर्ण ध्यान व समर्पण से कार्य करते हुए मैंने देखा है, उस पर मुझे आश्चर्य होता है। परन्तु परम पूज्य श्रीमाताजी की कृपा दाँव पर नहीं लगी हुई है। उनके लिए यह संभव नहीं है कि उत्थान चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपना समय दे सकें। बड़ी संख्या में लोगों को प्रयत्न करके उनके कार्य को सरल बनाना चाहिए। अब यह हर व्यक्ति की जिम्मेदारी है कि ऐसे कार्य की रूपरेखा बने जिससे अधिकतम लोगों का उत्थान हो सके।

यदि किसी व्यक्ति का जीवन अधार्मिक है तो उसके चक्र और नाड़ियाँ प्रभावित होंगी। किन्तु इसकी उल्टी प्रस्तावना सत्य नहीं है। मानव शरीर व मनोशरीर की रचना व्यक्ति के द्वारा बड़ी नैतिक गलतियों के बिना भी प्रभावित हो सकती है; शारीरिक स्वास्थ्य या वातावरण की लहरियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हमने देखा है कि जन्म से साक्षात्कारी आत्माएं भी चेतना में नीचे गिर जाती हैं व संसार के झूठ से समझौता कर लेती हैं। बहुत से अच्छे एवं ईमानदार लोगों के चक्र भी मात्र नकारात्मक माहौल में रहने से खराब हो जाते हैं। इसलिए समाज को ही मौलिक रूप से बदलना होगा।

मैं आपको एक आखिरी चेतावनी देना चाहता हूँ। नेपाल में एक कहावत है 'चीते, आग और गुरु से दूर रहो।' झूठे गुरु के स्थान पर बिना गुरु के रहना ठीक है। कलियुग के अंतिम दिनों में झूठे पैगम्बर मुक्त रूप से घूम रहे हैं। वे श्रीकृष्ण तथा ईसा के शत्रु हैं, अधर्म के स्वामी हैं। वे पिता के विरुद्ध

अधम पाप कर रहे हैं, क्योंकि ये उनके नाम से साधकों को आकर्षित कर रहे हैं व छल रहे हैं। उनमें से कुछ माता के विरूद्ध घिनौने पाप के अपराधी हैं, क्योंकि वे ईश्वर की ओर ले जाने का बहाना कर के अपने शिष्यों के साथ व्याभिचार कर रहे हैं। वे आत्मा के विरूद्ध भी पाप कर रहे हैं क्योंकि वे यह सब जानते हुए पाप कर रहे हैं। कुरान घोषणा करती है 'उस व्यक्ति से अधम व्यक्ति कौन होगा जो अल्लाह के नाम पर झूठ निकाल लेता है, परन्तु सत्य बताये जाने पर इससे इन्कार कर देता है।' (३९:३२) उनकी लूट में भागीदार मत बनो। उनके विषय में कुरान व बाईबल में लिखा है 'उन्हें क्षमा नहीं मिलेगी'। परम पूज्य श्री माताजी कहती हैं - ''वे लोग जो अबोध साधकों को मूर्ख बनाते हैं व अपनी गंदी आदतों से उनका शोषण करते हैं, वे स्थायी रूप से नर्क की सजा भुगतेंगे।''

आखिरकार एक बहुत बड़ी गलती जो आज के कुछ लोग करने का आनन्द ले रहे हैं, यह गलती उतनी पुरानी है, जितने उत्तर भारत के तांत्रिक लोग अथवा 'मुक्त आत्माओं के भाई पंथ' के अनुयायी जो यूरोप में १२ वीं से १६वीं शताब्दी के बीच फले फूले। उनकी पसंदीदा सूक्ति, पॉल की थी, जो इस प्रकार थी 'पवित्र व्यक्ति के लिए हर चीज़ पवित्र है।' (टाइटस १.१५)। यह विचार कि '' मैं इतना पूर्ण हूँ कि परमात्मा से जुड़ा हुआ हूँ..... यदि मैं जो भी कुछ कर लूं वह कदापि पाप नहीं हो सकता''; इस प्रेरक परिकल्पना के कारण- वेश्यागमन आज स्वर्ग तक पहुँचने की सीढ़ी बन गया है। यौन एवं आध्यात्म के बीच भ्रम पर स्पष्टतम टिप्पणी आदि श्री शंकराचार्य द्वारा विवेकचूडामणि में दी गई है जिसे मैं प्रस्तुत करना चाहुँगा, ''जो भी व्यक्ति शारीरिक सुखों की चाह रखकर आत्मा को पाना चाहता है वह नदी पार करने के लिये मगरमच्छ को ही लकड़ी का गठ्ठा मानकर पकड़ लेता है।'

इस अध्याय का अंत मैं ''सुकरात की क्षमा'' के शब्दों के साथ करता हूँ : ''हे अथेनावासियों, यही सत्य है तथा इसे मैं बिना छुपाये तथा दबाये कहता हूँ, भले यह बात कुछ बड़ी हो या छोटी लेकिन मुझे पूर्ण यकीन है कि यह मेरी स्पष्टवादिता ही है जो मुझे इतना बुरा बनाती है।'

६ - धर्म तथा धर्मसंघ

"वह, जिसको पूज रहा खिड़की है, जिसे खोलना है, बंद भी करना है, उसने अब तक अपनी आत्मा का घर नहीं देखा है, क्योंकि उसकी खिड़कियाँ तो सदैव खुली रहती है" - खलील जिब्रान

१९वीं सदी का समय वह समय था, जब उस युग की विशिष्टता को अभिव्यक्त करते हुये एक बौद्धिक वर्ग ने फ्यूरबॉक के समर्थन में यह घोषित कर डाला कि परमात्मा मर गया है। ऐसा करना उन्हे अच्छा लगा क्योंकि उनकी नज़रों में परमात्मा की मृत्यु का अर्थ था-मानव का जन्म। वास्तव में उनकी गलती केवल आधी ही थी। वह सिद्धांत, जो दिमागों तथा समाजों पर अनुशासन रखता था, १९ वीं सदी की विचारधारा द्वारा असरदार तरीके से खत्म कर दिया गया; किंतु यह परमात्मा नहीं था, यह परमात्मा की धारणा थी। इस विकास का मिश्रित प्रभाव हुआ। 'परमात्मा' का विचार खोने पर उन्होंने स्वयं को उस श्रेष्ठ मर्यादा से मुक्त कर लिया जो एक प्रकार का नैतिक ढाँचा प्रदान किया करती थी तथा वे घने भौतिकतावाद में डूब गये, जिसका उन्हें कोई पछतावा नहीं था, जो आज के समाजों के विनाश का कारण है। किंतु दूसरी ओर; धार्मिक मत से अपने मन को मुक्त करके, परमात्मा के बारे में मानवीय धारणाओं, ख्यालों तथा प्रतिमाओं से छुटकारा पाकर हमने अपने लिये एक जीवंत अनुभव की तात्कालिकता के जरिये सत्य की पुन: खोज की सम्भावना को खोल दिया। परमात्मा की मृत्यु की धारणा के पहले परिणाम की खोज में हमने पूरी २० वीं सदी लगा दी: परिणाम रहा - अपने पूँजीवादी अथवा मार्क्सवादी रूप में बेछूट भौतिकतावाद। अब समय आ गया है कि हम इसके दूसरे परिणाम को जानने की खोज करें: परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव करने की सम्भावना, जो मानवीय उत्क्रांति के एक नये अनुभव की ओर ले जाती है। आने वाले समय में धर्म के सभी सिद्धांतों एवं धारणाओं की जाँच-पडताल व्यक्ति की चेतना के प्रत्यक्ष अनुभव पर होगी। हम इसका

अनुभव सहजयोग के माध्यम से कर सकते हैं। सच तो यह है कि हम ये अनुभव प्रतिदिन ले रहे हैं।

हाँ, सुकरात! जी बुद्ध! हाँ, लाओत्से। सहजयोग में इस स्तर का ज्ञान प्राप्त किया जाता है कि हम जानते हैं कि हम क्या जानते हैं तथा क्या नहीं जानते। इस स्तर तक पहुँचने से पूर्व मनुष्य सत्य से जो भी कुछ प्राप्त करता है, उसे संरचनाओं में, मतों में तथा पद्धतियों में खड़ा कर देता है। इस विशिष्ट रुप में सत्य को प्रतिपादित करने में सभी धर्म, विश्व ज्ञान, आदर्श आंशिक एवं अपूर्ण हैं। आम इन्सान, इसके बाद, 'उच्चतर सत्य' के जाल में फँस जाता है, जिसे अन्य लोग अपने प्रमाण के अनुसार प्रतिपादित करते हैं, जिसका संबंध अधिकतर सत्य से नहीं होता है। इसके विपरीत सहजयोग हमें ज्ञान में आत्मनिर्भरता प्रदान कर रहा है। इस बात को समझने के लिए चलिये, बात करते हैं।

मुझे अपना चेहरा देखने के लिये आईना देखना चाहिये, क्योंकि मैं अपना चेहरा सीधे नहीं देख सकता। इसी प्रकार अपने से बाहर की वास्तविकता (वस्तु, संसार, नाटक) देखने के लिए, अपने अंदर की वास्तविकता (स्व, साधक, साक्षी) मन का उपयोग आईने के रुप में करती है। मानव मन वह माध्यम है जिसके माध्यम से हम वास्तविकता या सत्य को अनुभव करने का प्रयास करते हैं। हम चाहते हैं कि यह मन हमें पूर्ण रूप से बताये कि हम क्या हैं? और वस्तुएं क्या हैं? यहीं से ज्ञान की समस्या शुरू होती है। हम जो भी कुछ मन के द्वारा अनुभव करते हैं वह अपने में वास्तविकता नहीं होती है अपितु वास्तविकता का निरूपण अथवा परछाई होती है। आईने में सच्चाई नहीं होती। निरूपण का दूसरा शब्द 'धारणा' हो सकता है। इसके आगे, इस आईने में जो अच्छी बात नहीं है वह यह है कि यह बहुत साफ नहीं है। मन में हर प्रकार के परिर्वतन (अहं की क्रिया व प्रति अहं की प्रतिक्रिया) होते रहते हैं जो इसकी बोध-क्षमता की प्रत्यक्षता तथा वस्तुनिष्ठता को प्रभावित करते हैं। हो यह रहा है कि हम वास्तविकता को दागी आईने में देख रहे हैं, जिसमें रंग बदलते रहते हैं तथा छायाएं घूमती रहती

हैं। इस कारण से हमें वास्तविकता उसी दाग व आकार में दिखाई देती है। वेदान्त में इसका प्रसिद्ध उदाहरण है, हम साँप को रस्सी समझ कर पकड़ लेते हैं। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि आईने में जो प्रतिबिंब हम देखते हैं वह आईने की अपूर्णता से बेहद बिगड़ा हुआ होता है: आईना (मन) सोचने वाले व्यक्ति के मन में मानसिक तथा सामाजिक अनुबंधनों को ज्यादा प्रतिबिंबित करता है बजाये कि सत्य को। यह तो ऐसा हुआ मानो हम प्लेटो की प्रसिद्ध गुफा के अन्दर बैठे हुए हैं तथा बाहर की सीधी सूर्य किरणों का सामना करने की बजाये गुफा की दीवारों में अपनी परछाईयों को देख रहे हैं। पातंजलि भी उसी रूप में कहते हैं-'द्रष्टा ही दृश्य है किंतु बिना शुद्ध विचार के यह मानो बुद्धि की तरंगों से दूषित हो गया हो।'

पूर्वगामी बातों से स्पष्ट है कि वास्तविकता को जानने के लिये, हमारी ज्ञानात्मक क्षमता के उतार-चढ़ाव से परे हमें कुछ उपाय खोजने होंगे जो हमारे मन को एक विश्वसनीय यंत्र बना सकें। जैसा पातंजलि कहते हैं, 'जब मन नियंत्रित हो जाता है तब आत्मा अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जाती है।' श्री गौड़पदाचार्य कहते हैं, ''चित्त के द्वारा आप परम का चिन्तन कर सकते हैं तथा जब परम का चिन्तन किया जाता है तो चित्त समाप्त हो जाता है।'' विलियम ब्लैक कहते हैं, ''जब बोध के दरवाजे साफ होते हैं तब वास्तविकता व्यक्ति के अन्दर व बाहर स्वयं प्रकट होती है: कहा जाये तो यहाँ अन्दर या बाहर जैसी कोई बात नहीं है। सिर्फ वास्तविकता ही है। परन्तु परमात्मा के साम्राज्य में प्रवेश के लिए, जो एक वास्तविकता है, व्यक्ति को जानने के एक नये तरीके के लिये दुबारा जन्म लेना होगा। संत पॉल कहते हैं, ''अभी हमें आईने में धुंधला दिखाई देता है लेकिन उस समय पूरा का पूरा दिखाई देगा: अभी मैं थोड़ा समझता हूँ उस समय में पूरा समझूंगा। पॉल का 'उस समय' सहजयोग का 'इस समय' है।

जब कुण्डलिनी आज्ञा चक्र पार करती है तब यह मानसिक गतिविधियों की अधीरता को नियंत्रित करती है। इसके बाद कुण्डलिनी उर्जा मस्तिष्क के स्नायु तंत्र में फैल जाती है तथा इसे साफ कर देती है। व्यक्ति अपने सिर पर

एक नई प्रकार की शांति अनुभव करता है जो विचारों, धारणाओं, प्रक्षेपणों को विलीन कर देती है, साथ ही मानसिक एवं भावनात्मक तरंगों को भी, जो सामान्य मन के उत्पाद हैं। अहंकार और प्रति अहंकार कनपटी से नीचे उतर जाते हैं तथा मस्तिष्क के मध्य चेतना के विकिरण का स्थान फैल जाता है। वाह! आखिरकार सुकरात आनंदित होते हैं। जो छूटा सो छूट गया।

''जब मन की गतिविधि नियंत्रण में आ जाती हैं, तब प्रकाश आ जाता है, मन या तो दृष्टा, देखी गई वस्तु या देखने की प्रक्रिया को प्रतिबिंबित करता है जैसे मणिक (क्रिस्टल) उसके उपर रखी वस्तु का रंग परावर्तित करता है '' पातंजलि (१.३.४१)

यह साक्षी स्वरूप की स्थिति है जो निर्विचार चेतना से आरंभ होती है। यदि आज्ञा चक्र पूर्ण रूप से खुला हुआ न हो तथा इसका खुलना प्रारंभ न हुआ हो तो इस स्थिति का अधिक आनंद नहीं लिया जा सकता। दुर्भाग्य से अधिकांश विचारकों की स्थिति बाद वाली थी: आज्ञा चक्र खुला न होने की (स्थिति) थी; जिन्होंने ईश्वर, उत्क्रांति व इतिहास पर सिद्धांत बनाये। इस प्रकार इन विभिन्न सिद्धांतों में प्रतिपादित करने वालों के मन की विकृति प्रतिबिंबित होनी ही थी। यह आश्चर्यजनक नहीं होगा यदि मैं यह कहूं कि सत्य की अधूरी जानकारी से ईश्वर का विचार नानाविध तरीकों से कितनी बुरी तरह विकृत किया गया है।

ईश्वर के विषय में धारणाएं, जो सत्य के अनुभव के आधार पर प्रमाणित नहीं थीं, अक्सर केवल मनुष्य के गलत कार्यों के लिये एक वैचारिक ढाँचा मात्र थीं। परमात्मा के प्रतिबिंब बनने की बजाये, औपचारिक धार्मिक सिद्धांतों ने लोगों को इस सीमा तक मूर्ख बनाया है कि कभी-कभी लगता है एक बुरा मजाक सोची समझी हत्या बन गया हो। जब काल्पनिक विश्वास, अदूरदर्शी तर्कों द्वारा न्यायोचित ठहरायें जाते हैं तथा इन्हें सामाजिक संगठनों द्वारा शक्ति प्रदान की जाती है, तब एक राक्षस (समाज) पैदा होता है जिसने कई मानवीय जीवनों को नष्ट करना होता है: यह धर्म युद्ध (जिहाद) है, सच्चे विश्वास का, राष्ट्र, गरीब समाज की जीत : परमात्मा,

निश्चय ही चित्र से दूर होता चला जाता है, किंतु हिंसा को न्यायोचित ठहराना खत्म नहीं होता।

मनुष्यों को सत्य देकर देखो कि वे इसका क्या हाल करते हैं। ऐसा लगता है, जो अफसोसजनक है कि आधा सच कभी-कभी पूर्ण अज्ञान से भी अधिक खतरनाक होता है क्योंकि यह धर्मान्धता तथा गंभीर गलतियाँ पैदा करता है। बहुत से धर्मों ने विश्व के धर्म वृक्ष पर वास्तविक पुष्प के रुप में सत्य को प्रकट किया। क्या हम श्री राम, पैगम्बर मोहम्मद, भगवान बुद्ध व भगवान महावीर के संदेशों में एकरूपता नहीं देखते हैं? क्या यह आदिशक्ति के संदेश नहीं हैं। किन्तु लोगों ने जीवित पेड़ों से फूल अलग कर लिये व मृत फूलों को अपनी संपत्ति बना लिया। Religion शब्द लेटिन भाषा के Religare से आया है जिसका अर्थ होता है जोड़ना-एक होना। धर्म का सटीक अर्थ यही हो सकता था-जो ईश्वर के इतिहास तथा मनुष्य की कहानी को एक कविता में लयबद्ध कर सके, जिसका गान मनुष्य की चेतना में हो सके। किन्तु ऐतिहासिक धर्म इस ध्येय की प्राप्ति में बहुत अधिक सफल नहीं हो पाये हैं।

मानव जाति के लिये, परमात्मा की शिक्षाओं के रहस्यमय शरीर में, विश्व के समस्त धर्म जीवंत अंग हैं। किन्तु इस शरीर को कई टुकडों में काट दिया गया है। आज जब समग्रीकरण का समय आ गया है, ये मृत टुकड़े इधर-उधर बिखरें पड़े हैं.... जीजस ही एकमात्र सच्चाई है! मोहम्मद ही आखिरी अवतार थे! जबकि जीजस और मोहम्मद खुद ऐसे कट्टरपंथियों से नाराज हैं। धर्मग्रन्थों व सिद्धांतों में विरोधाभास, विश्व व्यापकता के सिद्धान्त के विरुद्ध हैं। किन्तु आदिशक्ति की चैतन्य लहरियों का अनुभव करने से पूर्व कौन यह कह सकता है कि कौन सही है और कौन गलत। यहाँ देखा गया है कि सभी अवतार एक परमात्मा के अलग-अलग पहलू हैं; साधक के मन में इनमें एक का भी निषेध, उनके एकीकरण में बाधा डालता है क्योंकि इस वजह से संबंधित चक्र खुल नहीं पाते। अत: एक ईसाई को मोहम्मद, भगवान शिव आदि के पूजा मंत्र लेने होंगे।

कट्टरपंथियों को समझाना बहुत मुश्किल है। मजे की बात यह है कि वे जिस अवतार को मानते हैं वही अवतार उनसे नाराज होता है। एक कट्टर कैथोलिक को स्वयं ईसा आज्ञा चक्र पर रोक लेते हैं, एक मुसलमान अपने भवसागर पर परेशानी महसूस करेगा (भवसागर आदिगुरुओं के सिद्धांतों पर बना है, जिसमें मोहम्मद स्वयं एक अवतार हैं।) हिन्दुओं को नाभि चक्र (भगवान श्री विष्णु का स्थान) पर समस्या आयेगी। साधक की गलत एकरूपता से देवता नाराज होते हैं। प्रभु ईसा मसीह ने कहा था, ''आप मुझे ईसा, ईसा कहकर पुकारेंगे लेकिन मैं आपकों नहीं पहचानूँगा।''

एपिस्टेमोलाजी (Epistemology) ग्रीक शब्द एपीस्टीम (Episteme) से आता है जिसका अर्थ होता है : ज्ञान, जिसे सुकरात तथा प्लेटो ने डोक्सा (Doxa) (ईश्वर की संक्षिप्त स्तूति) अर्थात अभिमत के विरूद्ध उपयोग किया। ज्ञान शास्त्र (एपिस्टेमोलाजी) ज्ञान से संबंधित है तथा ज्ञानशास्त्रीय महाअविष्कार जानने के नये तरीके से। अंत में, अब विश्व को बदला जा सकता है क्योंकि अब राय, धारणाओं व लेखों पर श्रम करने के स्थान पर, आंतरिक क्रांति के द्वारा सत्य को जानने की सम्भावना है। हम वास्तविकता जानते हैं, बजाय इस पर भावनात्मक लेखों के माध्यम से अपूर्ण सत्य जानने के। हमारे विचारों की सीमा है। सीमा से परे जानने को 'क्या है?' चलो अब देखते हैं कि ईश्वर की धारणा का इतिहास अभी तक क्या रहा है? इससे हमें विश्व धर्मों के विकास के बारे में जानने में सहायता मिलेगी व भ्रम का निवारण होगा।

सबसे पहले हम मानवशास्त्रीय (Anthropological) खोज का जिक्र करें, कि सामाजिक भूमिकाएं कार्य के अनुसार बनी होती हैं। हम पोलिनेशियन या अफ्रीका की मूल जाति के विषय में विचार करेंगे। इस तथ्य के बावजूद कि कोई भी प्रजाति दूसरी प्रजाति से हर प्रकार की विशिष्टताओं से अलग होती हैं, हम सामान्य रुप से उनके सामाजिक संगठन के ढाँचे की पहचान उनके शारीरिक रुप से जीवित रहने के लिये कार्यपद्धति से कर सकते हैं। खेती व शिकार जीवनयापन के कार्य में सम्मिलित होते हैं तथा सुरक्षा

कार्य के लिये एक लड़ने वाला सैन्यदल बनाया जाता है, जहाँ शिकारी, योद्धा व किसानों की उपस्थिति आसानी से समझी जा सकती है, वहीं संसार में हर जगह जादूगर, दवा देने वाले तथा ओझाओं की उपस्थिति पर हर कोई आश्चर्य करेगा। सामाजिक प्राणी के जीवनयापन में इन लोगों (जादूगर-ओझा) की भूमिका का क्या महत्व है, जो उनके विशिष्ट महत्व को न्यायसंगत ठहरा सके।

ओझा कबीले के वातावरण को आकार देने वाली शक्तियों व इसके समुदाय के बीच मध्यस्थ होता था। इस तरह वह समुदाय की जीवनचर्या व गतिविधियों के ढांचे का झुकाव निश्चित करता था । वन के देवता आदि से संपर्क में रहने की वजह से, वह फसल व कबीले के भौतिक जीवन से संबंध रखने वाली गतिविधि के समय का मुहूर्त निकालता था । आम आदिवासी प्रकृति की शक्तियों को नहीं जानते थे, परन्तु वह उनके प्रभाव को महसूस करते थे। इनके बीच ओझा उन जाति वालों को अपनी उपस्थिति ऐसे व्यक्ति के रुप में अनुभव करवाता था, जो भूमंडलीय परिस्थितिकी का ज्ञाता है। और इस समझ से कबीले के जीवन की लय संस्कारित हो गई थी। क्योंकि ओझा अपने ज्ञान को कबीले के लाभ से जोड़ देता था, इसलिए वह कबीले के एक श्रेष्ठ सदस्य का अधिकार व सामूहिक निर्णय लेने में शक्तिशाली व्यक्ति के रुप में प्रतिष्ठित था।

मनुष्य की धारणात्मक क्षमता की तीक्ष्णता के साथ, परमात्मा की धारणा धीरे-धीरे प्राकृतिक शक्तियों से एकरुपता से उठकर, दिव्यता के कहीं अधिक मूर्तमान तथा अलंकृत रुप तक पहुँच गई। यह विकास इसलिए भी संभव हुआ क्योंकि एक अधिक परिष्कृत सामाजिक संगठन ने जीवनयापन के लिए प्राकृतिक विरुद्ध मानवीय संघर्ष की तीव्रता कम कर दी। यह समय भी वह था जब दैवी गुरूओं (अवतारों) ने मानव जाति को एक विस्तृत रुप से प्रकाशित किया। किन्तु हर समय परमात्मा की धारणा ने वही एक महत्वपूर्ण कार्य किया : इसने मानव को पहचान तथा समग्रता की वह कसौटी प्रदान की जिस पर व्यक्तिगत विचार और सामाजिक क्रिया स्थापित

हो सके। जिस प्रकार मानव अपना चेहरा देखने के लिए आईना देखता है, उसी प्रकार समाज ने अपना चेहरा देखने के लिए परमात्मा की धारणा को देखा। इसलिए किसी राष्ट्र का इतिहास गहन रुप से उसके संबंधित धर्म से गहराई से संस्कारित होता है। क्योंकि सांसरिक शक्तियों को धर्म के जानकारों ने हथिया रखा है, इसलिए ज्ञान की व्याख्या करने के एकाधिकार पर नियंत्रण करने के लिए हम शीघ्र ही इतिहास में परिष्कृत समाजिक प्रक्रिया के विस्तार को देखते हैं।

ईश्वर की धारणा जो उसकी विशेषताऐं बताती है, उद्देश्य परिभाषित करती है, एक ढाँचा प्रदान करती है जिसमें से होकर सामाजिक उर्जा को बहना है, यह प्रयोजनमूलक (Teleological) ज्ञान कहलाता है। (ग्रीक शब्द Teleos का अर्थ है ध्येय।) यह वे प्राथमिकताएं निर्धारित करता है जिन पर पहुँचना है। इसके कारण विश्व के धर्मों ने आंतरिक आध्यात्मिकता के स्थान पर अपने आपको संस्थात्मक रुप में ढालने का प्रयत्न किया। मूल धार्मिक शिक्षाओं की भावना और भी कम होती गई, ईश्वर की एक जीवंत शक्ति के रूप में अनुभूति कम हुई, बौद्धिक अनुभूति की धारणा कम नहीं हुई। बौद्धिक धारणा के विकास व प्रभाव के कारण मानव समाज का रुप बदलता गया।

प्राचीन धर्म शासकों की कृषि आधारित सभ्यता में, मूल ओझा का स्थान एक सामाजिक वर्ग ने ले लिया। इस वर्ग ने शक्ति व सम्मान प्राप्त किया क्योंकि ईश्वर की धारणा के ज्ञान पर इसने एकाधिकार प्राप्त कर लिया था। इसके पास लोगों को, उनके भाग्य एवं उसके लिए व्यक्तिगत व सामूहिक रुप से करने वाले कार्य को समझाने का निर्णयात्मक अधिकार था। मिस्त्र के साम्राज्य में अमान का पुरोहित, ईरान में जोरोस्टियन पुरोहित, मुगलों के पूर्व के भारत में ब्राह्मण, केथोलिक चर्च आदि ने समाज के संगठनात्मक ढांचे में निर्णयात्मक भूमिका अदा की, जो इन्हे आर्थिक रुप से मदद करता था।

हम कह सकते हैं कि चर्च समाज के लिये वैसा ही था, जैसा मन व्यक्ति के लिये होता है - व्यक्ति व सत्य के बीच मध्यस्थकार, जिस पर न विश्वास

किया जा सकता है न ही उसे छोड़ा जा सकता है। जिस प्रकार मन सत्य की गलत जानकारी देता है व अपने ढंग से चलता है, उसी तरह चर्च व सभी देशों के पादरी ईश्वर की गलत व्याख्या करते हैं व अपने ढंग से चलते हैं।

प्रयोजनमूलक ज्ञान के एकाधिकार में असीम राजनैतिक शक्ति निहित होती है, इसलिए इतिहास सामाजिक क्रिया तथा धार्मिक ज्ञान, शासक तथा जानकार के बीच संघर्षों से भरा पड़ा है। आदर्श स्थिति वह हो सकती है जब समाज पर ज्ञानी शासन करें, प्लेटो के गणतंत्र का दार्शनिक 'राजा'। इस प्रकार के राजा गिने-चुने हैं जो सत्ता के रंगमंच पर कभी-कभी ही आते हैं - मिथिला में जनक, अयोध्या में राम, एथेंस में सोलों, रोम में मार्कस, औरिलिस व कुछ अन्य। इसके अलावा राजनैतिक शासकों ने लगातार प्रयत्न किया कि राजा के परम अधिकारों के साथ-साथ ज्ञानी का सम्मान व ईश्वर को जानने वाले के विशेषाधिकार भी प्राप्त हो जाएं। राजनैतिक एवं धार्मिक सत्ता (राज्य तथा चर्च) के बीच संघर्ष का यही कारण है। एक कार्य के अधिकार पर नियंत्रण रखता है तो दूसरा धर्म के एकाधिकार पर। कभी-कभी शासक ने विजय प्राप्त की: उदाहरण के लिये अगस्टस (ई.पू.६३ से ई.प.१४) से आगे तक, उसी समय के सीजर व पोंटीफक्स मेक्सिमस, इसी प्रकार हेनरी अष्टम टूडर ने १६ वीं शताब्दी में प्रयत्न किया, या जापानी मेजी सम्राटों ने जिन्होंने शिंतोपूजा विधि का नेतृत्व किया: कहने की आवश्यकता नहीं कि बहुत प्रकार के 'दिव्य अधिकार' वाले शासक लुईस XIV से चीनी 'स्वर्ग का पुत्र' तक की परंपरा। फ्रिडरिक द्वितीय होहेनस्टाफन (११९४ से १२५० ई.प.) के समय से पश्चिमी ईसाई धार्मिक साम्राज्य, सीजर (धार्मिक रोमन जर्मन सम्राट) व पोन्टीफेक्स मेक्सिमस (रोमन पोप) के बीच बँट गया था, जो दोनों ईसाई साम्राज्य पर शासन करने का दावा करते थे। इस संघर्ष का परिणाम प्रोटेस्टेंट वाद का उदय था, जिसने पहले की एकाधिकारवादी राजनैतिक शक्ति व दूसरे की एकाधिकारवादी धार्मिक शक्ति को तोड़ दिया था।

आज के आधुनिक धर्मनिरपेक्ष युग में सभी व्यवहारिक उद्देश्य के लिये चर्च मृत हो चुके हैं, क्योंकि व्यक्तिगत एवं सामूहिक कार्यों की प्राथमिकताएं

तय करने में इनका कोई उपयोग नहीं रह गया है, न ही इनके पास वह मापदण्ड व साधन हैं, जो मनुष्य को उसके भौतिक वातावरण से संबंध की पहचान करवा सकें तथा इस पर कार्य करवा सकें : ये कार्य आजकल विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी द्वारा किये जाते हैं। इन आकृति विहीन ओझाओं के उत्तराधिकारियों के बीच जम्हाई लेने का अंतराल ज्ञान व तर्क में बहुत अधिक स्पष्ट हो गया है।

इन्ही वास्तविकताओं के आधार पर १९ वीं सदी के विचारकों ने ईश्वर की मृत्यु की घोषणा की, किन्तु इससे संबंधित उत्क्रांति के वास्तविक अर्थ की उपेक्षा कर दी गई।

ईश्वर की धारणा के लिए उत्तरदायी सभी वर्गों, समूहों तथा लोगों ने बिना अधिकार के एक उच्चतर ज्ञान के मध्यस्थ के रुप में कार्य किया। परमात्मा के ज्ञान को प्रतिबिंबित करने के स्थान पर उन्होनें अपने सांसारिक उद्देश्यों के लिए कार्य किया। धीरे-धीरे इस ज्ञान का सार, उस धारणा से दूर होता चला गया, जिसे इसने अभिव्यक्त करना था। इसलिए जब सकारात्मक विचारकों ने इस धारणा को रौंदा तब उन्होंने मात्र एक खाली छिलके को ही रौंदा था।

२० वीं शताब्दी में, चर्च व राज्य के संबंध तथा प्रयोजनमूलक ज्ञान तथा सामाजिक क्रिया के बीच के संबंध, प्रतीत होता है कि कभी-कभार नई आदर्शवादी धाराओं, जो ईश्वर की धारणा की धर्मनिरपेक्ष उत्तराधिकारी लगती थीं, से नियंत्रित होने लगे। इन्होंने 'ईश्वर विधान' के विचार पर अपने स्वयं के विकल्प प्रस्तावित किये। फासीवाद (समान अधिकार विरोधी सिद्धांतवाद), राष्ट्रीय समाजवाद, मार्क्सवाद आदि सभी ओझा के काम को अर्थात ज्ञान के एकाधिकार को अपनी बपौती बनाने में जुट गये। फासीवाद व नाज़ीवाद इतने भद्दे थे कि अधिक दिन टिक नहीं पाये। इस बीच स्टालिनवाद के नये रोम के राजनैतिक पुरोहित- अधिकारियों ने विरोधी विचारधारा वाले विचारकों को उसी तर्क के आधार पर सताना शुरु कर दिया, जिस तर्क के आधार पर मध्यकालिक केथोलिक चर्चों ने गुप्त रहस्यवादी उपदेशकों को जलाने के आदेश दिये थे। नई बाईबल (यहूदी तथा मार्क्सवादी-लेनिनवादी) की व्याख्या का एकाधिकार सच्चे विश्वास के संरक्षकों को

अपने पास रखना था। यह उनकी राजनैतिक शक्ति का आधार है। मास्को ने वाईजेन्टियम से, रोम ने 'आत्मिक विरोधी अपधर्मी नीति' से उत्तराधिकार प्राप्त किया था। इस बीच नौकरशाहों ने सोचा कि वे विज्ञान का नियंत्रण राज्य के लिए कर रहे हैं, किन्तु उन्हें यह मालूम नहीं था कि प्रोद्यौगिकी (व इससे उत्पन्न सैनिक -औद्योगिक तंत्र) उनके नियंत्रण से काफी दूर था। ईश्वर का ज्ञान इतना सूक्ष्म है कि विज्ञान व प्रोद्यौगिकी की पहुँच इस तक नहीं हो सकती।

नये चर्चों ने अपने आपको पुराने चर्चों से अधिक प्रकाश देने वाला सिद्ध नहीं किया है, वास्तव में ये पुराने से अधिक पीड़ा देने वाले व रक्तपात करने वाले सिद्ध हुए हैं। आधुनिक विकसित समाज ईश्वर की धारणा पर स्थापित नहीं हुआ है, जो अभी तक न्यूनतम सामाजिक गुणों का आश्वासन देता था। इसकी स्थापना भौतिकवादी धारणा पर हुई है, जिसने अब 'परमात्मा के विधान' का स्थान ले लिया : ऐतिहासिक न्याय का मार्क्सवादी नियम तथा धन संग्रह के पूंजीवादी सिद्धांत। मैं यहाँ अवश्य दोहराना चाहता हूँ कि ये सिद्धांत वास्तविकता का मात्र एक आंशिक, अपूर्ण बोध व्यक्त कर पाते हैं तथा इनका अनुकरण करने वाला समाज इसी अपूर्णताओं से पीड़ित रहता है।

ये परिवर्तन जो कभी-कभी कष्टप्रद होते थे, इनसे बचा नहीं जा सकता था। इतिहास मनुष्य की उन क्रियाओं के आधार पर बना जो मनुष्य की विकृत ज्ञानात्मक शक्ति के अनुसार घटित होती थीं। सुकरात व प्लेटो, चौथी शताब्दी ई.पू. में अपने एंथेसवासी लोगों को समाज का पुनर्गठन सत्य के विचारों (डोक्सा) के स्थान पर सत्य के ज्ञान (इपीस्टिम) के आधार पर करने पर जोर दे रहे थे, इनकी प्रेरणा व्यर्थ सिद्ध हुई, क्योंकि वे इसकी स्थापना करने का कोई मजबूत साधन नहीं दे सके। सुकरात लोगों की कुण्डलिनी सार्वजनिक रुप से जागृत नहीं कर सके। नागरिक सामान्य रूप से यह नहीं समझ सके कि वे क्या बातें कर रहें थे। इसलिए वे प्लेटो के विचारों के स्थान पर 'अरस्तू के नगर' के विचारों से अधिक प्रभावित हुए, जहाँ प्रजातंत्रात्मक निर्णय विभिन्न विचारों के वाद-विवाद के द्वारा होता है। उन्हे कौन दोष दे सकता था? पातंजलि के आईने को साफ किये बिना कोई भी गुणात्मक

परिवर्तन अपने अंदर व बाहर नहीं किया जा सकता था। यह सही है कि सुधारकों को 'आदर्शलोकवादी' तथा आदर्शवादी समझा गया किंतु यथार्थवादी नहीं क्योंकि उनके पास कोई मजबूत औजार नहीं था, जिसका संबंध सत्य से हो व जिसके द्वारा गुणात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ की जा सके।

वर्ष १८५२ में मुगल सम्राट अकबर ने इस्लाम, हिन्दू, यहूदी, रोमन व कैथोलिक प्रतिनिधियों के बीच वाद-विवाद की श्रृंखला शुरू करके एक नये धर्म 'दीन -ए-इलाही' (दैवी धर्म) की घोषणा की, जिसमें तत्कालीन सभी धर्मों की विशेषताएं सम्मिलित की गईं या उसने ऐसी आशा की। निसंदेह यह कामयाब नहीं हुआ, यह सफल नहीं हुआ क्योंकि इसमें परम ज्ञान नहीं था। अपने स्वयं के विचार से धर्म की स्थापना की पद्धति सत्य के सूक्ष्म आयाम तक नहीं पहुँच सकती। जैसा प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं, ''यह इतना सूक्ष्म है कि इसे पाने के बजाए इसे खोना कहीं अधिक आसान है।'' सृष्टीय अचेतन से प्रेरणा आ सकती है, किन्तु प्राप्त करने वाला मानव संदेश को रोक लेता है। वह तर्क करना शुरू कर देता है, जोड़ता है, घटाता है, इसमें सूक्ष्मता चली जाती है व पूरी प्रक्रिया एक खाली भागदौड़ रह जाती है। प.पू.श्रीमाताजी के शब्दों में ''जो कार अभी चालू ही नहीं हुई है, उसे चलाने का क्या फायदा!''

ईश्वर का ज्ञान इतना सूक्ष्म व सहज है कि यह दो विचारों के बीच निर्विचारिता के स्थान से प्रारंभ होता है। जब ब्रह्मवादी लोगों ने ईश्वर को समझने का उन्मादी प्रयत्न किया, तब वे इड़ा या पिंगला की ओर अति में चले गये और निर्विचार वर्तमान को छोड बैठे!

सहजयोग चेतना के माध्यम से आदर्शवाद तथा यथार्थवाद, रहस्यवाद तथा ज्ञानवाद समग्र समझ की एक वृत्ति में मिल जाते हैं। ब्रह्मरंध्र के पूर्ण रूप से खुलने से पहले ही व्यक्ति चक्रों व हाथों में दी गई विभिन्न जानकारियों से सामूहिक चेतना के प्रति जागरूक हो जाता है। हम किसी भी व्यक्ति के चक्रों की स्थिति जान सकते हैं। मानव जाति के पिछले नायकों द्वारा दिखाये गए मार्ग का संबंध इन तथ्यों से जोड़कर हम कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति के चक्रों की चेतना पहले की धार्मिक शिक्षाओं पर स्पष्ट प्रकाश डालती है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, कुण्डलिनी मूलाधार से सहस्रार तक तब ही जाती है जब सब चक्र खुले होते हैं। ये चक्र, साधक के विभिन्न गुण बतलाते हैं, जो कि उसकी विकास यात्रा में पड़ाव के रूप में विरासत में प्राप्त हुए हैं। वे देवताओं के द्वारा विभूषित हैं, उनमें से कुछ अवतारों ने चेतना के विकास में विभिन्न कालावधियों में, के मानव जाति का नेतृत्व किया है।

अवतार विभिन्न कालावधियों में समस्याओं के अनुसार आध्यात्मिक रूप से प्रकट हुए एवं उन्होंने परमात्मा के एक पहलू का प्रतिनिधित्व किया। उदाहरण के लिये, श्रीराम के समय राजा के आदर्श की आवश्यकता थी। सभी अवतारों ने आदि गुरूओं के सिद्धांत के अनुसार नशे का विरोध किया, क्योंकि यह मानव चेतना के विरोध में है। उनमें से अल्कोहल एक है। इसलिए ईसामसीह ने, जो अन्य संदेश दिए, इस संदेश पर जोर नहीं दिया, जिस पर मोजेस पहले ही कह चुके थे। अब देखिये! हो क्या रहा है! ईसाई धर्म के बहुत से आश्रम शराब बनाने में निपुण हो गए। ईसा मसीह शराब को कैसे प्रोत्साहन दे सकते थे जो चेतना का अतिक्रमण करती है। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं, हिब्रू में वाइन का अर्थ होता है अंगूर का रस, न कि मदिरा। ईसाई आश्रमों ने शराब पीने की आदतों को प्रोत्साहन दिया, पादरी मदिरालय अध्यक्ष बन गए। क्या यह उदाहरण मानव स्वभाव की विचित्रता नहीं दर्शाता है कि किस प्रकार अवतारों के साथ हमने न्याय किया? चक्रों की चेतना प्रकट करती है कि शराब पीने से नाभि चक्र खराब होता है और हम समझ सकते हैं कि आदिगुरूओं ने नाभि चक्र सुरक्षित रखने के लिये शराब पर रोक लगाई थी। पुराने अवतारों द्वारा नैतिक आचरण के मार्गदर्शक सिद्धांत, चक्रों के देवताओं को प्रसन्न रखने के लिये दिये गए थे।

कुण्डलिनी जागरण विश्व के धर्मों की एकता का प्रमाण भी प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए एक ईसाई को श्रीकृष्ण को मान्यता देनी होगी यदि उसकी कुण्डलिनी को विशुद्धि चक्र पार करना है। इसी प्रकार उस कट्टर हिन्दू की कुण्डलिनी आज्ञा चक्र पार नहीं करेगी जो प्रभु ईसा मसीह को स्वीकार नहीं करता। इस प्रकार की घटना मद्रास के निकट एक छोटे शहर में

हुई। एक हिन्दू साधक प.पू.श्रीमाताजी के चरणों में साष्टांग दण्डवत कर रहा था, उसकी कुण्डलिनी आज्ञा चक्र तक पहुँच गई। आगे कुछ नहीं हो रहा था, प.पू.श्री माताजी के द्वारा चैतन्य देने के बाद भी कुण्डलिनी आज्ञा चक्र पार नहीं कर पा रही थी। मैंने उस व्यक्ति से कहा, ''तुम ईसा मसीह को पहचानो।'' उसने कहा, ''मैं उन्हें संत के रूप में पहचानता हूँ।'' यह काफी नहीं था, ईसा मसीह को अवतार के रूप में पहचानना होगा। वह यह नहीं कर सका, हमने उसे बहुत समझाने की कोशिश की। उसके ईसा मसीह को न स्वीकार कर पाने के कारण उसकी स्वयं की कुण्डलिनी ने आगे बढ़ने से इंकार कर दिया व आज्ञा चक्र बंद रहा। प्रभु ईसा मसीह आज्ञा चक्र में बहुत संवेदनशील हैं व छोटे दिल के कट्टरपंथियों से नाराज हो जाते हैं, जो उनके पिता श्रीकृष्ण को पहचानने से इंकार करते हैं। वह अपनी माता के सम्मान के लिए भी बहुत सतर्क हैं। भगवान बुद्ध, बाई कनपट्टी में उन लोगों की कुण्डलिनी के उत्थान को रोक देते हैं, जो बुद्ध की शिक्षा द्वारा आत्मसाक्षात्कार की स्वाभाविकता से इंकार कर देते हैं।

एक हास्यास्पद उदाहरण सिक्ख का था, जो गुरु नानक का शिष्य था। गुरू नानक व पैगम्बर मोहम्मद एक ही आदिगुरु (आदिगुरु दत्तात्रेय) के अवतार हैं। इस सिक्ख को आत्मसाक्षात्कार लेने से पूर्व मोहम्मद का नाम लेना होगा, जिन्हें वह नहीं मानता, इसी प्रकार कट्टर मुसलमान को गुरु नानक का नाम लेना होगा। जब हम सिक्खों एवं मुसलमानों के पिछली सदी में लडे गये भीषण युद्ध को याद करते हैं तो कुण्डलिनी की शांत करने तथा एकीकृत करने की क्रिया स्पष्ट हो जाती है।

साधक के शरीर में कुण्डलिनी जागरण की प्रगति का अनुभव सहजयोगियों द्वारा किया जा सकता है। यह चैतन्य लहरियों की कृपा है कि जिनके माध्यम से इस प्रगति की जानकारी हो जाती है। हम अपने हाथों की उंगलियों में उस चक्र का अनुभव कर सकते हैं जिसमें कोई समस्या होती है। यह हम अपने चक्रों में भी सीधे अनुभव कर सकते हैं। यदि किसी व्यक्ति के विशुद्धि चक्र में समस्या है तो हम अपनी सम्मिलित उर्जा उस चक्र पर

केन्द्रित करके हम उसे शुद्ध कर सकते हैं व कुण्डलिनी जागरण का रास्ता साफ कर सकते हैं। हमें वही परिणाम विशिष्ट चक्र के देवता की पूजा करके भी प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिये, हम जानते हैं कि प्रभु ईसा मसीह आज्ञा चक्र पर रहते हैं, हम अपना चित्त उन पर ले जाते हैं व उनसे मदद व क्षमा करने की प्रार्थना करते हैं। हमें इस प्रकार की एक घटना दिल्ली में हुई। हम लोग एक वृद्ध व्यक्ति की कुण्डलिनी जागृत करने का प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु वह आज्ञा चक्र पार नहीं कर पा रही थी। सामूहिक चेतना में हमें आज्ञा चक्र पर दबाव महसूस हो रहा था। प.पू.श्रीमाताजी ने मुझसे 'लार्ड प्रेयर' (प्रभु ईसा मसीह द्वारा सिखाई प्रार्थना) बोलने को कहा। मैंने प्रार्थना की, तत्काल उसका आज्ञा चक्र शुद्ध हो गया व कुण्डलिनी सहस्रार में पहुँच गई। हमे महसूस हुआ कि हमारा सिर हल्का हो गया है। हमने उस पर ईश्वर की बरस रही आनन्दपूर्ण कृपा का अनुभव किया। मुझे यह अनुभव अच्छी तरह याद है क्योंकि बचपन में जब मैं कैथोलिक बोर्डिंग स्कूल में था तो मुझे हर दिन इस प्रार्थना को एक नीरस गीत के रूप में दोहराना पड़ता था और अचानक इस प्रार्थना ने अपनी असीम उर्जा हम लोगों पर बरसाई। प.पू.श्री माताजी कहती हैं 'लार्डस प्रेयर' आज्ञा चक्र का मंत्र है व साक्षात्कार के पश्चात् पूर्णरूप से क्रियाशील होता है।

इस कलियुग के धर्म कट्टरपंथ व गलतफहमियों के द्वारा सीमित हो गए हैं । सत्ययुग का धर्म एक ईश्वर के सभी पहलुओं (रुपों) की पूजा करेगा। यह प्रेम व आनन्द सब तरफ फैलायेगा जो दैवी-संबंधों के सुन्दर प्रतिरुप से किरणों के रुप में प्रकट होता है। आगे हम यह भी खोजेंगे कि मानवीय संबंध व संस्थायें इसी मूल प्रतिरूप की परछाई हैं।

सतयुग का धर्म आदिशक्ति के असीम प्रेम व चमचमाते गौरव की पूजा करेगा। पवित्र आत्मा की पूजा से एक सत्य आएगा, विश्व के सभी धर्म व देवता समग्र रुप से उनके विराट अस्तित्व के अंग-प्रत्यंग हैं। जब मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ मेरे चक्रों के देवता मुझे निर्विचार ध्यान में पहुँचाकर अपनी खुशी प्रकट कर रहे हैं। वे मुझे सत्य कहने के लिए अपना आशीर्वाद दे रहे हैं।

आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् जब हम अपनी पिछली मूर्खताओं और धर्म के नाम पर संतों के आडम्बर देखते हैं तो हमें बहुत हँसी आती है। सहजयोग के द्वारा कर्मकाण्डों तथा प्रार्थनाओं का दिखावा समझ में आता है।

सोनालिका वर्मा जो मुश्किल से पाँच वर्ष थी तथा वह जन्म से साक्षात्कारी थी। वह अपने माता-पिता के साथ लामा के पास गई। जब उसने देखा कि हर आदमी लामा को साष्टांग दण्डवत प्रणाम कर रहा था तो उसका कोमल, मधुर स्वभाव क्रोध से भर गया। वह लामा के पास बैठ गईं व अपनी नन्हीं आवाज ऊँची करके बोली, ''यह क्या है? सिर मुंडाकर व ये लम्बे चोग पहन कर आप इस पूजा के अधिकारी नहीं बन जाते।'' यह सुनकर उसके माता-पिता सकते में आ गये, उन्होंने उस बच्ची को डाँटा, किन्तु वह आराम से पलटी और उत्तर दिया, ''यह व्यक्ति पार भी नहीं है, आप क्यों इसके पैर पड़ते हैं!''

एक बार प.पू.श्रीमाताजी महर्षि रमन के जन्म दिवस के समारोह में एक मुख्य अतिथि के रूप में गईं, उनके साथ एक अन्य जन्मजात साक्षात्कारी बच्ची आराधना भी गई। वहाँ श्री माताजी के पास एक केसरिया वस्त्रधारी साधु, जो बहुत विशिष्ट लग रहा था तथा किसी कल्याणकारी संस्था का प्रतिनिधि था, बैठा हुआ था। कुछ देर बाद वह बच्ची चिल्लाई ''माताजी पीली मेक्सी वाला ये आदमी कौन है, इससे हम सबको भयंकर गर्मी आ रही है।'' अन्य लोग जो सहजयोगी नहीं थे उन्हें इस बच्ची पर आश्चर्य हुआ, लेकिन वह सही थी।

प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं कि यदि आप जानना चाहें कि किसी अवतार की क्या शिक्षायें रही थीं तो आप यह मान सकते हैं कि जो उनके अनुयायी कर रहे हैं वे उसके विपरीत थीं।

उदाहरण के लिये ईसा मसीह पवित्रता के आदर्श थे, किन्तु ईसाई देशों की यौन-संबंधों के प्रति नैतिकता को देखिये। उनकी शिक्षा थी कि मृत आत्माओं से खिलवाड़ नहीं करना चाहिए, किन्तु आध्यात्मिक चर्च मृत

आत्माओं को आमंत्रित कर रहे हैं। बहुत से गिरिजाघरों की चैतन्य लहरियाँ, मकबरों व आसपास के कब्रिस्तानों से बिगड़ गई हैं। पैगम्बर मोहम्मद ने मूल रुप से नशें से दूर रहने के लिए चेतावनी दी थी, किन्तु देखिये! मुस्लिम कवियों ने शराब के नशे में शराब के गुणों की प्रशंसा में पुस्तकें लिख दीं। सिक्ख, जो गुरुनानक के अनुयायी है, उनसे कहा गया था कि वे शराब एवं धूम्रपान न करें। लंदन में सिक्ख स्कॉच व्हिस्की के पुजारी हैं, किन्तु मोटरसाइकल पर बैठते समय हेलमेट लगाना धर्म विरुद्ध मानते हैं। क्या आपको लगता है कि महान सत्गुरू नानक साहब ने हमें मोटरसाइकल पर हेलमेट लगाने से मना करने के लिये अवतार लिया था और सिक्ख लंदन की कुहरेदार आद्यौगिक इतिहास की निकृष्ट चिमनियों की तरह धूम्रपान करते हैं।

बुद्धमार्गी, मूर्खतापूर्ण धार्मिक कर्मकाण्ड एवं दीक्षाओं में उलझे हुए हैं, जबकि स्वयं बुद्ध ईश्वर पर विश्वास नहीं करते थे। उनके अनुयायी, उनके दांत, बाल एवं नाखून पूज रहे हैं; बिना इन चीज़ों की लहरियों का अनुभव किये कोई कैसे जान सकता है कि ये सब वस्तुऐं बुद्ध के शरीर की हैं?

महावीर ने अहिंसा की शिक्षा दी। बहुत से जैन लोग, इसलिये एक मच्छर भी नहीं मारेंगे। एक विशेष रुढिवादी समुदाय में एक गरीब ब्राह्मण को खटमल व कीड़ों से भरी एक झोपड़ी में रखा जाता है और उसे इस बात के लिए पैसे दिये जाते हैं कि वह खटमल व कीड़ों को अपने खून से पाले। क्या महावीर ने यह सिखाया था कि जानवर को बचाओ और मनुष्य की बलि चढ़ाओ?

सहजयोगी जन जानते हैं कि सभी धर्मों का लक्ष्य है जीव का आत्मा से मिलन, आत्मा का परमात्मा से योग। दूसरे शब्दों में साधक अपनी एकाकारिता स्व से करता है तथा स्व को परमात्मा में विलीन कर देता है। वह ईश्वर के गतिशील प्रेम की लीला को साक्षी भाव से देखता है।

आत्मसाक्षात्कार व परमात्मा साक्षात्कार, अलग अलग समय पर घटने वाले तार्किक अनुक्रम नहीं हैं अपितु ये विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक वास्तविकताएं हैं, जो साधक की आध्यात्मिक अन्त:शक्ति पर निर्भर करती

हैं। वे एक समय पर घट भी सकती हैं और नहीं भी। जब सहस्रार में स्थित कुण्डलिनी, अनहत चक्र में स्थित आत्मा से मिलती है तो मानव चेतना परम धर्म का अनुभव करती है। यह आत्मा से शक्ति (ईश्वर व आदिशक्ति) की समग्रता की अवस्था है। यह स्थिति अप्रकट ईश्वर (परब्रह्म, परमात्मा, ब्रह्म) व मनुष्य में स्थित ईश्वर (आत्मा, स्व) के मिलन को भी प्रकट करती है, जो अलग होने से पूर्व में थी। (मूल आभासी भेद सदाशिव एवं आदिशक्ति में घटित होता है)।

यह मिलन 'ब्रह्म-तत्व, ओम तथा आमेन' शब्दों में प्रकट किया गया है, जिसने प्रभु ईसा मसीह, परमात्मा के पुत्र के रुप में अवतार लिया। चलिये, अब याद करें कि पुराने समय में क्या कहा गया है :

''प्रारंभ में 'शब्द' था, तथा शब्द परमात्मा के साथ था तथा शब्द ही परमात्मा था। वह प्रारंभ में ईश्वर के साथ था: सब कुछ उसके द्वारा बना था और जो कुछ भी बना था उसके बिना कुछ भी नहीं बना था। उसमें जीवन था तथा जीवन मानव का प्रकाश था.....। सत्य प्रकाश, जो हर मानव को प्रकाशित करता है, विश्व में आ रहा था। वह विश्व में था तथा विश्व उससे बना था, फिर भी विश्व ने उसे नहीं जाना।'' - (जॉन १)

''वह उद्देश्य जिसकी घोषणा समस्त वेद करते हैं, जो समस्त तपस्याओं में बिनर संदेह के है तथा जिसके अनुसरण में मनुष्य जीता रहा तथा कार्य करता रहा है। उसे संक्षिप्त में मैं कहूँगा वह है 'ॐ'। '' - कंठोपनिषद

एक सांस में बोला जाने वाला ''अक्षर 'ॐ', जो नष्ट न होने वाला ब्रह्म है, ब्रह्माण्ड है। जो भी स्थित रहा है, जो कुछ स्थित है तथा जो भी इसके बाद स्थित रहेगा वह 'ॐ' है। जो भूत, वर्तमान व भविष्य से परे अर्थात कालातीत है वह भी 'ॐ' है। जिसके बिना हम कुछ भी नहीं देखते हैं, ब्रह्म है। यह स्व जो हममें स्थित है ब्रह्म है। यह स्व 'ॐ' के साथ एक है।'' - मन्डूक उपनिषद

लाओडिसी में गिरिजाघर के देवदूत लिखते हैं, ''आमीन के शब्द, निष्ठावान तथा सच्चे साक्षी, सृष्टि का प्रारंभ हैं।''

- (जॉन, प्रकटीकरण, ३.१४)

हम ईसाई धर्म का शब्द-ओम के साथ संबंध, सहजयोग के कुण्डलिनी योग द्वारा जोड़ कर, इस पावन अक्षर में निहित प्रतीक का खुलासा कर सकते हैं।

ओम - अ-उ-म

'अ' (A) - यह विराट, जो आदि सत्ता है, के तम गुण को प्रकट करता है। ब्रह्माण्डीय स्तर पर यह वह 'ईश्वर' है जिसकी शक्ति 'महाकाली' है। सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय स्तर पर यह ईड़ा नाड़ी है तथा बांई नाड़ी अनुकम्पी तंत्र है। सूक्ष्मदर्शी स्तर पर यह परमाणु का नाभिक है।

'उ' (U) - यह विराट, जो आदि सत्ता है, के रजोगुण, क्रिया शक्ति को प्रकट करता है। ब्रह्माण्डीय स्तर पर यह हिरण्यगर्भ है, जिसकी शक्ति 'महासरस्वती' है। सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय स्तर पर यह पिंगला नाड़ी तथा दांई नाड़ी अनुकम्पी तंत्र है। सूक्ष्मदर्शी स्तर पर यह परमाणु का 'इलेक्ट्रॉन' है।

'म' (M) - यह विराट, जो आदि सत्ता है, के सत्व गुण (प्रकटीकरण की शक्ति) को प्रकट करता है, जो 'ॐ' के उत्क्रमण की उत्क्रांति को विराट करता है। इसकी शक्ति 'महालक्ष्मी' है। सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय स्तर पर यह 'सुषुम्ना', परानुकम्पी-नाड़ी-तंत्र है। सूक्ष्मदर्शी स्तर पर यह परमाणु की संयोजक (मिश्रण) शक्ति है।

आदि कुण्डलिनी (आदि कुण्डलिनी के रूप में आदिशक्ति) त्रिगुणात्मिका कहलाती है। इसमें तीनों गुण सम्मिलित हैं। वह 'अ', 'उ', 'म' को जोड़ती है। अत: दैवी ऊर्जा स्तर पर आदि कुण्डलिनी 'ॐ' उत्पन्न करती है। 'ॐ' का मूर्तमान अर्थ है कि आदिशक्ति ईश्वर 'पुत्र' की माँ है।

'ओम' वह ध्वनि है जिसका सांकेतिक रुप देवनागरी लिपि में 'ॐ' है। यह संकेत वास्तव में उर्जा की 'आदि-गति' को दर्शाता है। इसका प्रकट रूप चैतन्य (जीवन शक्ति की तरंग) के रूप में, आत्मसाक्षात्कार के पश्चात्

परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र द्वारा अनुभव किया जा सकता है। यह उर्जा हर समय, हर स्थान पर क्रियाशील है, किन्तु इसे आत्मसाक्षात्कार से पूर्व अनुभव नहीं किया जा सकता।

मुझे आशा है कि पाठकों ने उपरोक्त तथ्य समझ लिये होंगे। अब हम पुनः उस मुद्दे पर लौटते हैं, जिसके बारे में विस्तार से चर्चा की है, यह है 'मनुष्य की आत्म शक्ति'।

मनुष्य का सम्बन्ध सत्य व असत्य के दर्शन से है, जो आध्यात्मिक रूप से विचारों से सम्बन्धित है, अर्थात मन के संस्कारों के द्वारा विकृत किये गये चित्र को जानने के लिये, सत्य के अन्दर जाना होता है। इसके बाद मन को संस्कारित करने वाले तत्त्व, तीन गुणों को पार किया जा सकता। गुणों से परे 'स्व' है, 'स्व' को जानना ही सत्य को जानना है। किन्तु प्राचीन आध्यात्मिक पद्धति के चिरस्थाई प्रश्न को 'बृहद आरण्यकउपनिषद' में वर्णित किया गया है, 'किसके द्वारा जानने वाला जाना जाएगा'? किस प्रकार चीनी व जापानी ज़ेन साधुओं की प्रयत्नशील उर्जा अंत में 'सतोरी' की स्थिति में समाप्त हो गई। किस प्रकार एक गुरू, महायान बौद्ध समाज के बोधिसत्व अवलोकितेश्वर द्वारा बताई गई 'सब दर्पणों में दिखने वाली सुबुद्धि' की स्थिति में पहुँच सकता है? हमें चतुर्थ ईसा चरित रंजील (gospel) खोलते समय इन प्रश्नों को अपने मस्तिष्क में रखना चाहिए : जब जॉन ने ये शब्द कहे, 'बच्चों को ईश्वर बनने के लिए शक्ति दी' तब इसका क्या अर्थ था? प्रसन्न उपनिषद कहता है, 'ॐ का ध्यान करने से विवेकशील मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त करता है,' 'ॐ' ही ब्रह्म है, 'ॐ' सब कुछ है। 'वह जो ॐ का ध्यान करता है ब्रह्म प्राप्त करता है', यह तैत्रिय उपनिषद कहता है। ईश्वर के बालक के रूप में पुनर्जन्म कैसे लिया जाये, सब कुछ कैसे जाना जाए, किस प्रकार 'ॐ' का ध्यान किया जाए?

इन सभी बहुत से प्रश्नों का उत्तर एक है और यह उत्तर सहजयोग द्वारा दिया जाता है। मेरे कहने का यह अर्थ है कि सहजयोग उत्तरों के बारे में कोई

सिद्धांत नहीं है। यह आपको मात्र एक नई विचार पद्धति नहीं सुझाता, परमात्मा की धारणा के अवशेष पर एक नई बौद्धिक तलछट नहीं प्रस्तुत करता है। नही! यह स्वयं ही उत्तर है। एक मानव किस प्रकार ॐ बनता है? अ, उ, म को कौन एक साथ मिलाती है - साधक की कुण्डलिनी। कुण्डलिनी स्वयं को किस प्रकार अभिव्यक्त करती है? सहजयोग के द्वारा।

आदिशक्ति के रूप में सर्वशक्तिमान पावनी माँ ने 'ॐ' की रचना की। श्री गौरी के रुप में उन्होंने भगवान गणेश की रचना की। श्री पार्वती के रुप में उन्होंने कार्तिकेय की रचना की। श्री राधा के रुप में उन्होंने महाविष्णु की रचना की, जिसने ईसा मसीह के रुप में माता मेरी से जन्म लिया था। प.पू.श्रीमाताजी निर्मलादेवी के रुप में उन्होंने सहजयोगियों के एक नये समाज की रचना की है। वे कहती हैं कि, 'सहजयोगियों को 'महान पुत्र बाल-देवता' (गणेश) की पद्धति से बनाया गया है।

आदिशक्ति की दैवी उर्जा को नये रूप में समर्पित कर के, हमारे अन्दर पावन आत्मा की उपस्थिति में, अब हम मन्डूक उपनिषद समझ सकते हैं :

''स्व ॐ, एक अविभाज्य अक्षर है। यह अक्षर अव्यक्त तथा मस्तिष्क से परे है। इसमें अनेक ब्रह्माण्ड विलय हो जाते हैं। यह परम ईश्वर है- जो भी ॐ 'स्व' को जानता है वह स्व बन जाता है।''

यह ज्ञान सबके लिए खुला है। यह कितना आश्चर्यजनक है, कल्पना कीजिए कि प.पू.श्रीमाताजी या उनके फोटोग्राफ की ओर हाथ खोलने से लोगों ने जीवन-शक्ति की ठंडी हवा (चैतन्य लहरियाँ) महसूस की हैं। मुझे नहीं मालूम कि प.पू.श्रीमाताजी पर किस प्रकार आश्चर्य करें?

जब लोगों का सामना इस अद्‌भुत चीज़ से होता है। यह भूतकाल में भी था तथा भविष्य में भी होगा किंतु जितनी सरलता से यह वर्तमान में हो रहा है, ऐसा कभी नहीं होगा। मेरा मानना है कि मनुष्य जितने खुले मस्तिष्क के अभी हैं वे पहले कभी नहीं रहे होंगे।

प.पू.श्रीमाताजी के शिष्यों में केथोलिक, प्रोटेस्टन्ट, मार्क्सवादी, हिन्दू, सिक्ख, यहूदी, बौद्ध, जैन, मुस्लिम आदि हैं। ये शिष्य भारतीय, अंग्रेज, लैटिन, अमेरिकन, जर्मन, फ्रेंच, स्विस, रूसी, आस्ट्रेलियन, जापानी, चीनी, मलेशियाई, आल्जिरियन हैं। पोलन्ड, दक्षिण अफ्रीका, इटली, हंगेरी आदि देशों के लोग भी सम्मलित हैं। सहजयोगियों में इतने वैचित्र्य होने पर भी यह देखा गया है कि इन्होंने बनावटी बन्धन, अंधविश्वास, जाति, समाज या धर्म की नकली दीवारें तोड़ दी हैं। ये लोग एक समान गुण वाले हैं। ये लोग शांतिप्रिय, आनंदमय, सहनशील तथा शक्तिशाली हो गए हैं।

सहजयोग सच्चे व झूठे साधकों के भेद को बड़ी सूक्ष्मता से प्रकट करता है। जिन लोगों को चैतन्य लहरियों का अनुभव नहीं होता है, तो वे यदि विनम्रता तथा उत्साह के साथ इसकी प्रार्थना करें तो उन्हें चैतन्य लहरियाँ प्राप्त करने का पूरा अवसर है। किन्तु कुछ लोग निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि सहजयोग नकली एवं झूठा है तथा वे खुद को इससे अलग कर लेते हैं।

जैसा परम पूज्य श्रीमाताजी कहती हैं, 'बहुत से लोगों के लिये खिलने का समय आ गया है।' जब एक सच्चा साधक, जिसने स्वयं की बहुत हानि नहीं की हुई है, श्रीमाताजी के सम्मुख आता है तो उसकी कुण्डलिनी आनंद के साथ, जबरदस्त शक्ति के साथ उपर उठती है। यदि साधक की कुण्डलिनी हताहत है तो उसे ठीक करने की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। धीमे ही सही किन्तु निश्चयपूर्वक, किसी व्यक्ति के चक्र खुलने पर, यदि वह इस अनुभव की शिक्षा को स्वीकार करता है तो वह स्वयं को महान विराट, जो एक ईश्वर के विभिन्न पहलूओं को समग्र एवं प्रकट करता है, के ज्ञान के समक्ष खोल देता है। वह विभिन्न देवताओं व अवतारों के साथ नजदीक व जीवन्त संबंधों में प्रवेश करता है, जिन्होंने विराट के चक्र प्रकट किये हैं। सहजयोगी उन्हें आनंददायक दृष्टि के साथ देख रहे हैं, वे परम पूज्य श्रीमाताजी के पूर्व अवतारों को भी देख रहे हैं।

दैवी प्रेम ने उनके प्रेम का जाल बुना है तथा यही मानवीय आत्माओं

को ब्रह्माण्डीय चेतना की ओर खींचता है। हम स्वयं को इसमें फँसने देते हैं तथा अपनी माँ की गतियों (कुण्डलिनी) की गरिमापूर्ण पूर्णता की मधुरता से स्तुति करते हैं। उनके चित्त के द्वारा हम स्वयं को आशीर्वादित महसूस करते हैं। हमें उनकी गरिमा पर गर्व है। हम उनकी आराधना करते हैं। हम अपने उत्थान के हर क्षण का आनन्द उठाते हैं तथा इस आनन्द को सामूहिक चेतना की एकता में बाँटते हैं। सामूहिक चेतना उनके प्रेम का जाल है। यह वर्तमान समय का धर्म है। इस चेतना में आपमें से बहुत, बहुत भाई एवं बहन दैवी प्रेम के आनन्दमय अराधक बन जाएंगे तथा वे अपने 'स्व' के सौंदर्य में स्नान करेंगे।

मैं इस सामूहिक घटना में वैश्विक साक्षात्कार का सवेरा देखता हूँ। तथा इससे सहजयोग के आश्चर्यजनक ऐतिहासिक आयाम को पर्याप्त बल मिलता है। चलिए, भूतकाल की ओर एक दृष्टि डालते हैं, उदाहरण के लिए, महान इस्लामी विद्वान ग़जाली (१०५३-११११), जिन्होंने सूफी धर्म को रहस्यवाद प्रदान किया, रहस्य के संबंध को परमात्मा के सत्य प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर वे यह कर सके। वे जर्मन डोमिनिकन के फ्रिअर मेस्टर एरवर्ड (१२६०-१३२७) से अधिक सफल थे, जिन्हें इसी तथ्य के कारण पश्चिमी चर्च अधिकारियों से परेशानी उठानी पड़ी। मेस्टर एरवर्ड ने भी अपने स्व का संबंध, परम सत्य के साथ होने का दावा किया था। बिजेन्टाइन साम्राज्य के एंथोस पर तत्कालीन आध्यात्मिक आंदोलन को आर्थाडोक्स चर्च कमेटी ने १३५१ में स्वीकृति दी। नयापन लाने के ये सभी प्रयत्न अपने प्रभाव में सीमित थे क्योंकि साधकों के पास वह शक्ति नहीं थी कि वे उस अवस्था को बता सकें जिसमें वे पहुँच चुके थे। किन्तु अब सहजयोग के द्वारा व्यक्तिगत साक्षात्कार समाज में प्रचारित किया जा सकता है। मैं जिस आत्मसाक्षात्कार की बात कर रहा हूँ , वर्तमान में वह सीमित लोगों तक ही सीमित है, किन्तु यह सीमित संख्या ही इतिहास में अपनी भूमिका निभाने के लिए पर्याप्त होगी। विज्ञान की कल्पना-लहर उम्मीद करती है कि नई प्रजाति आकाशगंगा से लड़ाकू जहाज, अंतरिक्ष यान या उड़न तश्तरियों द्वारा उतरेगी। किन्तु

विश्व धर्मों का महान संदेश था कि नई प्रजाति हमारे अन्दर पैदा होगी। पूर्णतया! मैं कह सकता हूँ, मैं नई प्रजाति का आगमन देख रहा हूँ, जिसमें सामूहिक चेतना होगी, जिसमें ब्रह्म से जुड़ने की क्षमता होगी, अत: इससे ज्ञात व अनंत के बीच की दूरी खत्म हो जाएगी।

मैं आपसे सिर्फ आग्रह ही कर सकता हूँ कि आप सहजयोग का लाभ उठाईये। क्योंकि समाज के अन्दर तथा हमारे अन्दर श्रृंखलाबद्ध विनाश पहले से ही शुरु हो चुका है। यदि हमने इस विनाश को यूं ही होने दिया तो हम अपने अंदर 'उच्चतम चेतना' की धीमी गति से खुद ही नष्ट हो जाएंगे। कहने का अर्थ यह है कि विनाशकर्ता, कल्की का अवतार हमारे अन्दर कार्यान्वित हो गया है। विनाश, उत्क्रांति की प्राकृतिक प्रक्रिया का अंश है, जैसे ही फूल तैयार होता है फूल की पंखुड़ी गिर जाती है।

मैं आप सभी साधकों को आमंत्रित कर रहा हूँ : आप भी आदिशक्ति के बच्चे बनिये। इस अर्थ में कि हम परमात्मा के सेवक हैं, हम सहजयोगी आपके अपने हैं। हमारा इस जीवन में उद्देश्य है कि हम सत्य के सभी सच्चे साधकों को उनके स्थान, आदिशक्ति, तक पहुँचा दें। ओह! आप नहीं जानते हैं कि आपकी खोज का पुरस्कार आपको दिलवाने के लिए हम बहुत उत्सुक हैं। जब भी कोई नया सहजयोगी बनता है हम आनंदित होते हैं तथा खुशी मनाते हैं। आइये तथा ईश्वर के धर्म में हिस्सेदार बनिये : सत्य में, चेतना में और आनंद में, हमारा धर्म है ''आत्मा बनना''।

७ - चेतना में उत्क्रान्ति

''सृष्टि के आरंभ की अभिव्यक्ति ही इसकी जननी है। जब एक मानव अपनी माँ को पा लेता है तो वह बच्चों को भी जान लेगा।'' - (लोओ त्से ते चिंग)

''तुम्हे क्या लगता है, मैंने तुम्हें यूँ ही बनाया और यह कि तुम मेरा स्मरण पुनः कभी नहीं करोगे?'' - (कुरान २३.११४)

'यूटोपिया' ग्रीक शब्द है, जिसका अर्थ है 'प्रसन्नता का स्थान'। आपको बताया गया यूटोपिया, अब थॉमस मूर का समुद्र के बीच टापू नहीं रह गया है: यह आपके मस्तिष्क के लिम्बिक क्षेत्र में सहस्त्रकमल दल है, जो आनंददायी चेतना के अमृत में स्नान कर रहा है। बहुत से कलाकारों ने, जैसे विलियम ब्लेक ने अपने रहस्यमय चित्रों में सहस्रार का आंतरिक दृश्य दिया है। कुण्डलिनी जागरण के पश्चात् आप इस प्रसन्नता के स्थान तक पहुँच सकते हैं। सैकड़ों सहजयोगी इस शांत, आनंद के आंतरिक द्वीप की विद्यमानता के साक्षी होते हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र के प्राचीन संस्कृत मानचित्रों में, इसे सत-चित-आनंद की भूमि कहा गया है, जहाँ सत्य, चेतना तथा आनंद समग्र हो जाते हैं। यदि बहुत से लोग 'सहज नाव' के द्वारा यहाँ तक पहुँचना चाहे, तो मैं कह सकता हूँ कि नया समाज नये मानव का अनुसरण करेगा। हमने सृष्टीय उत्क्रान्ति के मानचित्र में इसका स्थान निश्चित कर लिया, तो यह घटना आवश्यक व स्पष्ट दिखाई देती है। 'The Philosophy of History' पुस्तक में जी.डब्लू.एफ.हेगल ने आदिशक्ति की कार्यप्रणाली को धारणाबद्ध करने का प्रयत्न किया है, उन्होंने सृष्टि के इतिहास को आत्म-वास्तविकरण के लिये आत्मा का एक प्रयत्न माना :

''सृष्टि के इतिहास के विषय में कहा जा सकता है, कि यह आत्मा के सारगर्भित ज्ञान के कार्यान्वयन प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है तथा विकास का

सिद्धांत अपने में, स्व को जानने की अंतर्क्षमता द्वारा जीवात्मा के अस्तित्व की गर्भित क्षमता को भी सम्मिलित करता है। यह औपचारिक धारणा वास्तविक रुप से विचारधारा (Spirit) प्रवृत्ति में सम्मिलित रहती है, जिसमें विश्व का इतिहास इसका रंगमंच, इसकी संपत्ति तथा इसका अधिकार आत्मानुभूति का क्षेत्र है।''

इतिहास के विभिन्न कदम एक वैश्विक प्रवृत्ति के विकास में आवश्यक श्रेणियां हैं, जिनके द्वारा वह उठती है तथा स्वयं को आत्म ज्ञान की पूर्णता के साथ समाप्त करती है। यह विकास स्व-प्रादुर्भाव की प्रक्रिया है: ''प्रवृत्ति जो भी है, यह हमेशा आवश्यकता रही है, भेद सिर्फ इनमें 'आवश्यक स्वभाव' के विकास के हैं। सदा विद्यमान भावना का जीवन प्रगतिशील मूर्तमानों का एक वृत्त है। ''

मूर्तमानों का यह अनुक्रम ब्रह्माण्डीय इतिहास के उद्देश्य की ओर ले जाता है : इतिहास में प्रवृत्ति की अपनी पहचान के लिए, प्रवृत्ति को अपने आपको आत्मबोध, स्वयं के लिए ध्यान का उद्देश्य बनना चाहिए। बहुत से विचारकों ने, इतिहास की समझ को, अपनी परिपूर्णता की ओर बढ़ती हुई एक क्रमिक उत्क्रांतिक- प्रक्रिया माना है। अनेक अवसरों में हमें यह विचार मिलता है जहाँ प्रवृत्ति का विचार प्रकृति के द्वारा अपने आप को वास्तविक रूप (प्रकृति के पुरुष) में स्वयं को प्रकट करने का प्रयत्न माना गया है, उदाहरणार्थ प्लेटो का 'डायमोन (अर्द्धप्रेरणा)', हेगल का 'वेल्टगाइस्ट (विश्व प्रवृत्ति)' बर्गसन का 'एलन वाइटल (जीवात्मा की शक्ति)' इन्ही विचारों को प्रकट करता हैं।

शॉपेनहावर, हर्डर तथा फिश्ट ने क्रमिक विकास द्वारा इतिहास तक पहुँचाने के लिये जर्मन विचारधारा की अगुआई की, वे प्राचीनतम परंपराओं से भी सहमत थे। इन्डोआर्यन विचारधारा ने इतिहास को दिव्य इच्छाशक्ति की एक कहानी के रुप में माना जिससे ब्रह्माण्डिकी (Cosmology), पौराणिकी तथा इतिहास परंपरागत ढ़ंग से, करीब से जुड़ सके। भूमध्य सागरीय क्षेत्र में इतिहास को पूर्णता की ओर एक क्रमिक विकास के ज्ञान के रूप में यहूदी-ईसाईओं का एक मौलिक विचार रहा है, जिसे आधुनिक काल

में विभिन्न विचारकों जैसे लेंबनिट्ज, मार्क्स, रेनन व टेलहार्ड डी कार्डिन ने व्यक्त किया है। किन्तु पूर्णता के लिये किस की प्रतीक्षा है व क्या होना चाहिये, यही पहले और आज भी एक विचारणीय प्रश्न है।

प.पू.श्रीमाताजी निर्मला देवी द्वारा प्रस्तुत ज्ञान पूर्व साधकों के मूल्यवान निष्कर्षों को प्रकट करता है। हम जान सकते हैं कि किस हद तक उन्हें सृष्टीय अचेतन से प्रेरणाएं मिली तथा उत्क्रांतिमूलक प्रक्रिया में उन्होंने सच्ची अंतर्दृष्टि विकसित की। हम यह भी जानते हैं कि उनसे कहाँ गलतियाँ हुई तथा क्यों वे एक अवतार को पहचान नहीं सके।

प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं कि उत्क्रांति सहज है, यह बीज से पेड़ बनने की एक स्वाभाविक जीवन्त प्रक्रिया है। इसलिए गति स्वाभाविक है, एक ही समय में, बिना प्रयत्न के, पदार्थ से जीवन में, जीवन से मानव स्थिति में तथा मानव से परम मानव स्थिति तक ध्यान की यात्रा प्रयत्नहीन है। जहाँ तक अंतिम चरण का सम्बंध है यह बहुत जरुरी है कि उत्क्रांति मानव के बोध की सहभागिता के साथ घटित हो। जब मानव की इच्छाशक्ति सहजयोग के द्वारा सृष्टीय चेतना से जुड जाती है तो मानव उत्क्रांति का एक यंत्र बन जाता है। यह स्वाभाविक रूप से, रचना के उद्देश्य को तीव्रता से स्वाभाविकता में कार्यान्वित करता है। संपूर्ण गति सहज व स्वाभाविक है। हमारी दैवी माँ कहती हैं ''मेरे बच्चों किसी ने सृष्टि की जड़ों में आपके उत्थान के लिए मंच बनाने एवं उत्थान द्वारा आपको आगे बढ़ाने के लिए कार्य किया हुआ है। क्यों परेशान एवं उन्मादी होते हो ?''

अब हम बेहतर ढ़ंग से हमारी माँ द्वारा किये जा रहे चमत्कारों को ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं।

यदि सृष्टि की रचना के द्वारा, परमात्मा असीमित (वह स्वयं) से सीमित (सृष्टि-रचना) की ओर गया, तो सीमित में वह शक्ति होनी चाहिए कि वह असीमित की ओर पुनः जाने की चेष्टा करे तथा वहाँ पहुँचे। यह वह प्रस्तावना है जिसे विश्व के सभी मुख्य धर्म (सत्गुरुओं की शिक्षाओं के अनुसार)

व्याख्या योग हैं। सहजयोग इन प्राचीन उपदेशों की व्याख्या करके दिखा सकता है कि ये प्राचीन उपदेश आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जा रहे थे। मानव के इतिहास को ईश्वर के इतिहास में मिलना होगा। यहाँ हम उस अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास नहीं करेंगें जिसे 'परमात्मा' शब्द से पहचाना जाता है। तार्किक स्तर पर यह काम जिसने किया है, वह अंतिम संस्था निष्फल हो गई है। तर्क की इस स्थिति में हम अपने अनुभव के आधार पर घोषित करते हैं कि जो भी ईश्वर है, वह विद्यमान है, तथा हमारा केवल इतना संबंध है कि वह किस रुप में कार्य करता है तथा जिस क्षेत्र में वह कार्य करता है, बिलकुल वही रचना सृष्टि व इतिहास है।

निसंदेह परमात्मा असीमित है। इसलिए हमें असीमित से सीमित की, निराकार से साकार के संक्रमण को समझने के लिए अपनी धारणात्मक अयोग्यता को छिपाने के लिए अलंकारिक भाषा का उपयोग करना होगा। परम सत्य (परमात्मा, परब्रह्म) विभिन्न चरणों के अवतारों के रुप में आता है। निराकार के बाद साकार के सृष्टि चक्र को कल्प कहते हैं। इस प्रकार वर्तमान से पहले असंख्य कल्प बीत गए हैं, जो इस मानव जाति के उत्थान के लिए निर्मित हुए। किन्तु सृष्टि-रचना का उद्देश्य क्या है ? हम कह सकते हैं कि सृष्टि रचना के द्वारा ईश्वर (सदाशिव) साक्षी भाव में अपने सही रुप का आनन्द लेना चाहता है। इसलिए ईश्वर एक कलाकार (आदिशक्ति, पावन आत्मा या परमेश्वरी) के रुप में सृष्टि का विकास करना शुरू करता है। उर्जा के विभिन्न क्रमचय अनुपातों के संयोग द्वारा अस्तित्व की विभिन्न परतें उत्पन्न होती हैं, भौतिक जगत उनमें से एक है, जिसे हम जानते हैं।

ये सभी रचनाएं आदिशक्ति के स्व-प्रादुर्भाव की लीलाओं के विभिन्न चरणों के अलावा कुछ भी नहीं हैं। दैवी माँ अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने स्वभाव को संभाव्यता से वास्तविकता की ओर उत्क्रांति के रुप में प्रकट करती हैं। आदिशक्ति की कार्यप्रणाली बिलकुल वही है जिसे हेगल अपने इतिहास दर्शन में व्यक्त करने की कोशिश कर रहे थे।

अब हम परम पूज्य श्री माताजी द्वारा उत्पत्ति के बारे में दिये गये विवरण

की बात करते हैं। अस्तित्व के प्रथम स्तर पर केवल सदाशिव तथा आदिशक्ति विद्यमान होते हैं। इसके बाद की भिन्नतायें महाकाली, महासरस्वती तथा महालक्ष्मी की त्रिगुण उर्जाएं लीला के माध्यम से घटित हुईं। इस प्रकार 'ॐ' अ, ऊ, व म में अलग हो जाता है। सबसे पहले आदिशक्ति महाकाली शक्ति के माध्यम से 'बाल देवता' के तत्व का सृजन करती हैं; आदिशक्ति श्री गौरी के रुप में, भगवान श्री गणेश को उत्पन्न करती हैं, जो दिव्य अबोधिता का उच्चतम रुप हैं। भगवान श्री गणेश का स्थान आदि मूलाधार चक्र है। वहाँ से वह ब्रह्माण्डीय उर्जाओं को शुद्ध व नियंत्रित करते हैं तथा विराट द्वारा उत्पन्न ऊर्जाओं पर दृष्टि रखते हैं। वे नर्क के द्वार पर नज़र रखते हैं। वे अन-अवतरित बाल देवता का मूल रुप हैं। सहजयोगियों का बड़ा मधुर व विशेष समर्पण भगवान गणेश के प्रति होता है क्योंकि उन्हीं के द्वारा उच्च श्रेणी की अबोधिता प्राप्त होती है जिससे शुद्ध बुद्धि का विकास होता है। उन्हीं के आशीर्वाद द्वारा हमारा बोध उस प्रिय पूजा तक पहुँचता है, जो दैवी माँ, आदिशक्ति से हमारे संबंधों की सच्चाई को व्यक्त करता है।

भगवान गणेश द्वारा निर्गमित विकिरण से संपूर्ण सृष्टि अत्यंत पवित्रता तथा शुद्धता से भर जाती है। इसके बाद आदिशक्ति 'महान आदि पुरुष' के शरीर का निर्माण करती है, जो सृष्टि-उत्क्रांति का अगला कार्यक्रम तय करता है। विराट की तीन आदि नाड़ियों द्वारा निर्गुण शक्ति।

ईश्वर का निर्माण। अगला रुप वैकुण्ठ स्तर पर भगवान विष्णु तथा उनकी शक्ति लक्ष्मी हैं। वे सृष्टि की लीलाओं का संचालन करते हैं तथा दुष्ट शक्तियों की विजय रोकते हैं। भगवान विष्णु ईसा मसीह हैं, मुक्तिदाता-जिनका वर्णन बहुत सी धार्मिक परम्पराओं में मिलता है। वे सर्वशक्तिमान पिता के उस पहलू का प्रतिनिधित्व करते हैं जो सृष्टि की उत्क्रांति का मार्गदर्शन करता है तथा बनाये रखते हैं। इसके लिए वे मनुष्य के रुप में बोध की क्रमानुसार उत्पत्ति के लिए पृथ्वी पर अवतार लेते हैं। उन्होंने जल से मछलियों के रूप में अवतार (मत्स्य अवतार) कार्य शुरु किया तथा उम्मीद है कि वे अपने दसवें अवतार में मनुष्य जाति को गुणों से बाहर निकालेंगे।

उनमें, अपनी नियति व स्व में हमारा विश्वास।

वैकुण्ठ के ब्रह्मांण्डीय जल में भगवान विष्णु शयन करते हैं व श्री लक्ष्मी व विभिन्न रुप में देवता उनकी सेवा में रत रहते हैं। भगवान ब्रह्मदेव व श्री सरस्वती आदि-स्वाधिष्ठान चक्र में झूल रहे हैं, जो सृष्टि के विविध आयामों में भविष्य के जीवन व पदार्थों की रचनाओं के लिये चल एवं घूम रहा है। श्री सरस्वती ज्ञान, रचनात्मकता, कला व शिक्षा की देवी हैं जिन्हें रोम में एथीना के रुप में पूजा जाता है। भगवान ब्रह्मा की पदार्थ रचना की कविता ही विज्ञान का कार्य है। जब हमारा स्वाधिष्ठान चक्र पूर्ण रुप से खुल जाता है, तो हम स्वयं को ब्रह्मांडीय रचना के भागीदार कलाकार के रुप में महसूस करते हैं।

आदि अनहत चक्र में, विराट के हृदय में, भगवान शिव आत्मा की अनन्तता का प्रतीक है, आदि पुरुष, विराट, अस्तित्व के रुप में स्वयं सदाशिव हैं। वे कभी अवतार नहीं लेते हैं। वे सर्व कृपालु (शंकर, करूणा सागर) हैं। जब वे क्षमा करना बंद कर देते हैं, तो अंतिम विनाश, प्रलय होता है। यही तांडव है, भगवान शिव का नृत्य। हमारे अन्दर भगवान शिव आत्मा हैं; स्व हैं, स्वयं परमात्मा हैं। वे आत्मा हैं, दिव्य अस्तित्व का बोध, जो दैवी-प्रेम (सती, पार्वती) से एकरुप हैं। मनुष्य के मनस में भगवान शिव, इड़ा नाड़ी व भावनात्मक शरीर पर शासन करते हैं। उनका वाहन बैल है, जिसका नाम 'नंदी' है, जो अवचेतन क्षेत्र में पूर्ण आत्मविश्वास का प्रतीक है। महान ईश्वर के शक्तिशाली सहायक देवता, राक्षस नाशक भैरव, जो आर्कऐंजल संत माइकल हैं, जो देवी के वाहन शेर का प्रतीक भी हैं।

जब हमारे अन्दर आत्मा का प्रकाश बढ़ता है, तो हमें शांति का अनुभव होता है, न इच्छा, न ही कोई दर्द, शीतल अनुभव, बर्फ के समान अंदर से आता हुआ महसूस होता है। व्याकुल करने वाली सभी तरंगें, क्रमशः रूपांतरित हो जाती हैं व व्यक्ति दूसरों के लिए शांति तथा प्रेम देना आरंभ कर देता है। व्यक्ति के अन्दर अत्यंत शांति देने वाली प्रेम की तरंगे सब तरफ फैल जाती हैं। जब हृद्य आत्मा से पूरी तरह प्रकाशित हो जाता है, तो अस्तित्व अपने आप में अनुभव बन जाता है। इस 'साक्षी भाव' में व्यक्ति, अपने हृदय

में भगवान शिव को पूर्ण जागृत अवस्था में अनुभव करता है।

भगवान दत्तात्रेय (आदिगुरु) भी बैकुंठ में रह रहे हैं। वे व्यक्ति के रूप में, श्री ब्रह्मदेव, श्री विष्णु तथा श्री शिव की अबोधिता के मूर्तमान रुप हैं। परोपकारी तथा प्रकाशित गुरु होने के कारण, सब ओर से पिता के समान सम्मान उन्हें प्राप्त है। भगवान विष्णु के समान, मनुष्य जाति को मार्गदर्शन देने के लिए वे भी अनेक अवतार लेते हैं। मुस्लिम, यहूदी, ताओवादी, जोरोस्टियन, कन्फ्यूशियस, सुकरात के अनुयायी, सिक्ख आदि सभी एक गुरु, आदिगुरु के अनुयायी हैं। हमें एक देवतावादी व बहु देवतावादी लोगों के झगड़े व विभिन्न देवताओं के बीच भेदभाव के बीच निस्सारता को समझ लेना चाहिए।

कबीर गाते हैं -

''यदि भगवान मस्जिद के भीतर है तो फिर यह जगत किसका है? तीर्थयात्रा करके प्राप्त मूर्ति में यदि राम की छवि है तब अन्य जगह कौन है? अगर हरि पूर्व में, अल्लाह पश्चिम में हैं। अपने हृदय में झाँक कर देखो, वहीं करीम व राम मिल जाएंगे। इस जग के सभी स्त्री-पुरूष उनकी ही छवियाँ हैं। कबीर अल्लाह व राम का बच्चा है : वही मेरा गुरु है, वही मेरा पीर है।''

किसी व्यक्ति में गुरु का जागरण अधिकार तथा गरिमा का प्रकाश फैलाता है।

अस्तित्व के स्तर पर, जिसे हम भौतिक जगत (भवसागर, भ्रम का महासागर) कहते हैं, आदिशक्ति ने ब्रह्मांडीय नाटक का मंच बना दिया है, जिसमें मनुष्य को कार्यशील होना होता है।

प.पू.श्री माताजी हमसे कहती हैं :

छः हजार अरब वर्षों के समय में पदार्थ (परमाणु संरचना आदि) ईश्वर के रचनात्मक पहलू द्वारा विकसित किया गया है। रचनाकार रूपी भगवान ब्रह्मा-सरस्वती, विराट के आदि स्वाधिष्ठान चक्र पर हैं। चार हजार अरब वर्षों में आकाश गंगा व सौर जगत प्रकट हुआ। इसके बाद पृथ्वी ने ग्रह

मण्डल में अपना स्थान पाया व अण्डाकार गति भी, जिसके कारण जीव की उपस्थिति ग्रह पर संभव हुई : अखिरकार जीवंत कोशिका का ऊतक (टिश्यू) उत्पन्न हुआ, यह जीव-विज्ञान द्वारा ज्ञात हुआ है। ये अंतिम विकास कार्य 1.1 व 0.9 अरब वर्षों में क्रमशः हुए हैं। निश्चित रुप से यह पूरी प्रक्रिया किसी के निर्देशन में हुई है। गणित के संभावना के नियम के अनुसार पृथ्वी पर मनुष्य को प्रकट करने में जितना समय लगा, एक कोशिका वाले प्राणी को उत्पन्न करने के समय से कुछ अधिक ही होगा। अपने हास्य पुट के साथ दिव्य माताजी कहती हैं, ''ऐसी जुगत लगाने वाला कोई जोरदार मदारी ही होगा।''

जैसा हमने कहा है, सृष्टि-लीला का उद्देश्य सृष्टि में ही, आदिशक्ति का आत्म प्रकटीकरण है। इसके बाद का इतिहास स्थूल पदार्थ से बोध के सूक्ष्म प्रकटीकरण तक उत्क्रांति की एक कहानी है, जो मनुष्य के मस्तिष्क द्वारा अभिव्यक्त होती है। आज के मनुष्य के मस्तिष्क की औसत स्थिति काफी लम्बी प्रगति का परिणाम है; रचनात्मकता की एक कविता! मानव का मस्तिष्क करीब तीन अरब वर्ष के उत्क्रांति के इतिहास का शीर्ष बिन्दु है, तथा काफी पेचीदा व रचना के अभी तक अनजान निर्माण को दर्शाता है। इसमें करीब 11 अरब नर्व कोशिकाएँ (Nerve) या न्यूट्रॉन हैं, जिसमें से प्रत्येक सूक्ष्म सूचना प्रक्रिया केन्द्र है, जो सेकण्ड के भी अंश में कार्य करने में सक्षम है। आपको इन शब्दों को पढ़ने में समर्थ करने के लिए मस्तिष्क के विशाल न्यूरल नेटवर्क में से, करोडों नन्हीं विद्युत तरंगो को चमकना पड़ता है।

इस विचित्र उपकरण (मस्तिष्क) का धन्यवाद है कि मानव चेतना क्रमशः उत्क्रांतिमूलक गतिशीलता का स्वतः ही इंजन बन गई। उसने वह कार्य किया है जो अन्य प्राणियों के स्तर पर पशु अन्तः प्रेरणा, प्राणी विज्ञान चक्र, कार्बनिक संरचना व अकार्बनिक पदार्थ के नियमों द्वारा किये जाते हैं।

चेतना की उन्नति के द्वारा मनुष्य इस सृष्टि में सक्रिय भागीदार बन गया है। प्राकृतिक पर्यावरण में मनुष्य का रचनात्मक प्रभाव, तकनीकी खोजों द्वारा पिछले 70,000 सालों के युग में नाटकीय रुप से बढ़ा है।

पशु अवस्था समाप्त होने के बाद, सिर उपर उठाने से, गर्दन की जड़ में

स्थित विशुद्धि चक्र में कई बल देना पड़े। इस गति के कारण अहंकार को बढ़ावा मिला, जिसने गुब्बारे के रुप में फूल कर प्रति अहंकार के गुब्बारे को पीछे ढकेलना शुरू किया। उत्क्रांति के लिये आदर्श स्थिति तब होता है, जब ये दोनों गुब्बारे एक दूसरे को मध्य में संतुलित करते हैं। इसी कारण विकासशील देशों में बहुत से सरल व अबोध लोग, जिनका अहंकार अधिक बढ़ा हुआ नहीं है, सहजयोग में ठीक से स्थापित हो जाते हैं।

जब अहंकार व प्रति अहंकार के खोल की परत मोटी हो जाती है, तो मानव के चेतन मस्तिष्क व सृष्टीय अचेतन के बीच का संबंध कमजोर हो जाता है। तथाकथित 'विकसित' लोग जो सहजयोग में आते हैं, वे पूरी तरह अहंकार से ढके रहते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विकसित (जरूरत से ज्यादा) देशों में नये सहजयोगी को आत्मसाक्षात्कार में स्थापित होने में अधिक समय क्यों लगता है।

दूसरे शब्दों में, जब मनुष्य का मस्तिष्क क्रमश: बढ़ते हुये एक बनावटी उपकरण बन रहा था, तब इसे ब्रह्माण्डीय उर्जा की तरंगों से लयबद्ध नहीं किया गया था। इसीलिए हमारे अस्तित्व के स्तर को भ्रम का महासागर कहा गया है। मनुष्य के मस्तिष्क का संबंध सृष्टीय कार्यक्रम के साथ न होने की वजह से, यह अपनी इच्छानुसार चलता है जिसमें भ्रांति व मोह उत्पन्न होता है। चेतना का यह पहलू जिसमें यह स्वयं भ्रमित होता है 'माया' कहलाता है।

मनुष्य के विचारों एवं क्रियाओं की बढ़ती शक्ति के कारण, उनके अनुकरण के लिये मार्गदर्शन व उद्देश्य की अधिक आवश्यकता हो गई। यह प्रक्रिया पहले 'ईश्वर के धारणा' की व्याख्या के साथ दी जा चुकी है। यह वह मिलन बिन्दु है जिसके द्वारा धर्म पृथ्वी पर प्रकट होता है।

हम कह सकते हैं कि विभिन्न विश्व धर्मों ने, उत्क्रांतिमूलक कार्यक्रम एवं पृथ्वी के बीच संचार माध्यम खोल दिये, जहाँ यह कार्यान्वयन की प्रक्रिया में हैं। मनुष्य जाति के महान शिक्षक (ईश्वर के विभिन्न पहलूओं के अवतार) जिन्होंने इन धर्मों को आरंभ किया, बैकुण्ठ से प्रकट हुए। अवतारों का वर्गीकरण मूल रुप से चार रुपों में किया जा सकता है; माँ, पिता, गुरु एवं पुत्र।

- माँ के रुप में अवतार एक मानव के रुप में पूर्णावतार से अभिव्यक्त हुआ अथवा किसी अन्य अवतार की शक्ति के रुप में, अभिव्यक्त हुआ हैं अर्थात पुत्र-अवतार की माँ के रुप में अथवा पिता-अवतार की पत्नी के रुप में।

- पिता के रुप में भगवान विष्णु के प्रथम आठ अवतार उत्क्रांति के मार्गदर्शक व पालनकर्ता के रुप में हुये हैं।

- गुरु के रुप अवतार परमात्मा ने आदि गुरु के रुप में मनुष्य जाति को समय-समय पर मार्गदर्शन देने के लिये अवतार लिया।

- पुत्र अवतार बैकुण्ठ स्तर पर भगवान गणेश (बायाँ भाग) तथा भगवान कार्तिकेय (दायां भाग) सम्मिलित होकर महाविष्णु बनते हैं, जो भगवान ईसा मसीह के रुप में अवतार लेते हैं। बालक राजा कल्की के श्रेष्ठ रुप में अवतरित होगा, जिसमें भगवान विष्णु की संहार शक्ति व भगवान शिव की विनाश शक्ति होगी। सम्मिलित रुप में ग्यारह संहारक शक्तियाँ (एकादश रुद्र) विश्व में उच्चतम उत्क्रांति स्वीकार नहीं करने वालों को नष्ट कर देंगी।

हमें याद रखना होगा कि सात आदिचक्र अपने संबंधित देवताओं द्वारा चालित हैं। ये सात चक्र सृष्टि रचना के सात दिन हैं अथवा इनके उत्क्रांतिमूलक आयाम हैं।

भारतीय वैदिक परम्परा के अनुसार सबसे पुराने अवतारों में से एक श्री दुर्गा का अवतार है (देवी महात्म्य या श्री दुर्गा सप्तशती देखें)। वह भगवान शिव की शक्ति (पार्वती) हैं, जो नेपाल में राक्षसों के आक्रमण को नष्ट करने के लिए प्रकट हुई थीं। राक्षसों ने चेतन (जो सृष्टि के रुप में इस पृथ्वी ग्रह पर स्थित है) व अतिचेतन क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था। श्री दुर्गा ने उन्हें पृथ्वी से भगाकर पुनः अवचेतन में डाल दिया था। इस युद्ध ने विराट का अनहत चक्र जागृत किया।

दूसरा प्रसिद्ध अवतार भगवान श्री राम का है। श्री राम को भारत, इंडोनेशिया तथा थाईलैण्ड में पूजा जाता है। श्री विष्णु ने 8000 वर्ष पूर्व

अपना सातवाँ अवतार भगवान राम के रुप में लिया। श्री राम आयोध्या के उत्तराधिकारी थे। उनकी पत्नी मृगनयनी सीता, राजा जनक की पुत्री थीं। वह श्री लक्ष्मी का अवतार थीं। राम-अवतार का उद्देश्य बहुमुखी था। इसमें भगवान विष्णु ने अपने दैवी रुप को भूलाकर, मनुष्य के रुप में जीवन के विभिन्न पहलुओं में आदर्श मानव व्यवहार को प्रतिष्ठित किया।

दार्शनिक राजा के रुप में उन्होंने मानवीय राजनैतिक संस्थान को प्रकाशित किया तथा उसे व्यक्तिगत तथा सामूहिक धर्म की रक्षा करने में संचालित किया। भगवान राम आदर्श पुत्र, पति व राजा थे। उन्हें मर्यादा पुरूषोत्तम कहा जाता है जिसका अर्थ है समस्त पुरुषों में उत्तम पुरुष, जो मानव संस्कृति में पवित्र मर्यादा का पालन करता है।

मैं मर्यादा के शुभ विचार के महत्व को बताना चाहता हूँ। जैसा हम पहले भी बता चुके हैं कि मानव जीवन की कला को साधने के लिए लोगों को मर्यादाओं का पालन करना चाहिये। ये आचार-नियम सृष्टीय अचेतन से संचार का मार्ग खुला रखते हैं। यदि हम मर्यादाओं का पालन नहीं करते हैं, तो ये संचार-सूत्र (चैनल) टूट जाते हैं। मर्यादाएं मानव जीवन में पवित्रता बनाए रखती हैं।

पवित्रता का अर्थ होता है सही चीज़, सही परिस्थितियों में, सही समय पर। एक व्यवहार आचरण तब शुभ होता है, जब यह सृष्टीय अचेतन की ब्रह्मांड तरंगों से पूर्ण रुप से लयबद्ध हो। जब व्यवहार, कोई संस्था, एक कलाकृति अथवा कोई संगीत सूक्ष्म दृष्टि से मंगलमय हो तभी वह पूर्ण होता है।

भगवान राम ने मानव संबंधों में पवित्रता प्रकट की तथा उन लोगों का सफाया कर दिया जिन्होंने इसका तमाशा बना रखा था। उन्होंने अलौकिक शक्तियों से युक्त राक्षसों तथा अहंकारी लोगों को नष्ट कर दिया। उन्होंने उस समय के भारतीय उपमहादीप के भूभाग को अपनी यात्रा से चैतन्यित किया। इस प्रकार मानव चेतना का उत्थानकारी कार्य चैतन्य द्वारा किया। ब्रह्माण्ड के स्तर पर भगवान राम विराट के हृदय के दाहिने भाग में रहकर आदि पिंगला नाड़ी, अतिचेतन क्षेत्र की गतिविधियों का नियंत्रण करते हैं। इस कार्य में

हनुमान उनके सहायक हैं। हमारे मस्तिष्क में हनुमान पूर्वचेतित मस्तिष्क हैं। वे सृष्टीय अचेतन से अन्तर्ज्ञान हमारी चेतना में लाते हैं। वे मस्तिष्क की गतिविधियों पर भी नियंत्रण करते हैं सृष्टि के अवचेतन से सतर्क करते हैं तथा लोगों के अहंकार के साथ विस्मयकारी खेल खेलते हैं। उनके पीछे हटते ही मस्तिष्क की गतिविधियाँ बेकाबू हो जाती हैं।

भगवान विष्णु को 'पूज्यनीय ईश्वर' भी कहा जाता है। उनका आठवाँ अवतार भगवान कृष्ण के रुप में 6000 वर्ष पूर्व हुआ था। सर्वशक्तिमान पिता का अपनी सृष्टि व संतानों के लिये जो प्रेम है, उसकी बहुत सुंदर अभिव्यक्ति उन्होंने की है। गीता में विराट ने स्वयं अपने असंख्य रुप, व्याकुल अर्जुन की मानवीय आखों को दिखाए हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने ईश्वर के अनंत प्रेम व शक्ति को मनुष्य को समझाने के लिये एक नया क्षितिज खोला। उन्होंने सत्य साधकों को शिक्षा दी कि त्रिगुणी माया से लिप्त हुये बगैर किस प्रकार साक्षी भाव से आदिशक्ति की लीलाओं को द्रष्टा के रुप में देखा जा सकता है। किन्तु उन्होंने मनुष्य को इसके लिये कोई उपकरण नहीं दिया क्योंकि इस काम के लिये वह समय उपयुक्त नहीं था। मनुष्य के मस्तिष्क ने अपने आपको महान अविष्कार के लिए तैयार करना शुरू कर दिया था। भगवान कृष्ण ने विराट के आदि विशुद्धि चक्र को जागृत किया। उन्होंने उत्क्रांति के उद्देश्य का विरोध करने वाले अनेक राक्षसों का वध कर दिया। हर समय उन्होंने दैवी कूटनीति का प्रयोग मानव के साथ किया। हमारी सीमित समझ के बावजूद उन्होंने हमें उच्च चेतना की ओर प्रेरित किया। अपनी दैवी-कूटनीति का उपयोग उन्होंने हमेशा आत्म-कल्याण के लिये ही किया।

उदाहरणार्थ, भगवान श्री कृष्ण ने गीता में शिक्षा दी कि कर्म करो किन्तु कर्म फल को ईश्वर के चरणों में छोड़ दो। अपना पूरा प्यार ईश्वर को दें, उनसे खुद को अलग न करें। दोनों दृष्टिकोण सामान्य मानसिक स्थिति में मनुष्य की सीमा से परे हैं। अर्जुन को इस प्रकार की शिक्षा देकर, भगवान श्रीकृष्ण मानव जाति को समझा रहे थे। वे सहजयोग के बाद की अनिवार्य आवश्यकता के लिए संकेत दे रहे थे जिसमें कर्मयोग व भक्ति योग का

स्वाभाविक रुप से साक्षात्कार होगा।

जब विशुद्धि चक्र खुलता है तो आंतरिक शांति बढ़ जाती है। ऐसा अनुभव होता है जैसे पूरा विश्व, पूरी सृष्टि अपने में समा गई है। गर्दन पर स्थित विशुद्धि चक्र में भगवान कृष्ण जागृत हो गए हैं, उनकी शक्ति, विराटांगना के द्वारा सर्वव्याप्त उनकी शक्ति की महानता का ज्ञान होता है। इसलिए पैगम्बर मोहम्मद की प्रार्थना 'अल्लाह हो अकबर' अर्थात ईश्वर बहुत महान है; इस चक्र का मंत्र है।

यदि कोई बिना आत्मसाक्षात्कार के किसी देवता का नाम लेता है, तो वह देवता उस अनाधिकृत व्यक्ति की प्रार्थना से नाराज हो जाते हैं। मैं एक घटना का आपसे परिचय कराता हूँ। एक जन्म से साक्षात्कारी बालक मंदिर के पास एक कमरे में सोने की तैयारी कर रहा था, मंदिर में लोग 'हरे राम, हरे कृष्ण' का अखण्ड जाप कर रहे थे। वह बालक गुस्से में अपना कम्बल लपेटकर उन लोगों से बोला कि, 'ईश्वर आप लोगों के गाने से इतना नाराज है कि वह बहुत पहले मंदिर छोड़कर चला गया है। अब मैं भी जा रहा हूँ।' वे साधक, जो बिना दिव्य अधिकार के मंत्रोच्चार करते हैं उन्हे नाक, कान या गले में बीमारियाँ हो सकती हैं। चक्र की सोलह पंखुड़ियों के क्षेत्र में कैंसर हो सकता है।

ईश्वर की बुराई करने से विशुद्धि चक्र का बायाँ हिस्सा खराब हो जाता है, इस चक्र की स्वामिनी श्री कृष्ण की बहन श्री विष्णुमाया हैं तत्पश्चात् इस चक्र में मानसिक बाधाएं (U.P.I.) प्रवेश करके, उस व्यक्ति के माध्यम से बोल सकती हैं। विशुद्धि चक्र पर U.P.I. के अतिक्रमण का उद्देश्य उस व्यक्ति के चेतन पर कब्जा करना होता है, जिससे पीडित व्यक्ति या तो विषैली भाषा में बोलता है या बिल्कुल नहीं बोलता है।

ईश्वर, मनुष्य के कल्याण के लिये केवल 'उद्धारक' के रुप में ही अवतार नहीं लेते, वे आदिगुरू, शिक्षा देने वाले के रुप में भी समाज का मार्गदर्शन, धर्म के मध्यम मार्ग पर करने के लिये आते हैं। भगवान दत्तात्रेय ने मनुष्य जाति का मार्गदर्शन 'भ्रम के महासागर' को पार करने के द्वारा किया। उनका स्थान परानुकम्पी की वेगस (Vagus) नाड़ी व सूर्य जालक के बीच में

स्थित अन्तराल में है। उन्होंने अनेक बार आदिनाथ, जनक, अब्राहम, मोजेस, जरथुस्त्र, सुकरात, कन्फ्यूशियस, लाओत्से, मोहम्मद साहब, गुरू नानक, शिरडी के साईनाथ आदि के रुप में अवतार लिया है। उनका अंतिम अवतार शिरडी के श्री सांईबाबा के रुप में (मृत्यु १५ अक्टूबर १९१८) हुआ था। श्री सांईनाथ ने अपने को जिन शब्दों में प्रकट किया है उसे पाठक भली भाँति समझ सकते हैं :

''मैं ईश्वर हूँ, मैं महालक्ष्मी हूँ । मैं बैठे हुए सत्य बोलता हूँ, जैसे मैं मस्जिद में बोलता हूँ। मैं विठोबा हूँ। मैं गणपति हूँ। श्री गणेश को अर्पित सभी कुछ मुझे मिल गया है। मैं दत्तात्रेय हूँ। मैं लक्ष्मी नारायण हूँ। गंगा के लिये कहीं ओर क्यों जाते हो? अपने हाथों से मेरे चरणों को छू लो-यहीं गंगा बहती है। मैं मारूति हूँ।''

इस कथन में श्री दत्तात्रेय ने स्पष्ट रुप से विराट एवं चैतन्य लहरियों के प्रवाह की एकाकारिता को प्रकट किया है, जिसे हमने प.पू.श्रीमाताजी के चरणों से बहते हुए भी महसूस किया है।

आदिशक्ति अधिकतर आदिगुरू की पुत्री के रुप में अवतार लेती हैं। उदाहरण के लिये श्री सीता, मिथिला के संत राजा जनक की पुत्री थीं। भगवान राम की पत्नी के रुप में उन्होंने जुड़वा बच्चों लव और कुश को जन्म दिया। श्री सीता ने, बाद में मोहम्मद की बेटी फातिमा के रुप में अवतार लिया व उनके दोनो पुत्र पुनः हसन व हुसैन के रुप में हुये।

अतः नियुक्त पीर, संत, पैगम्बर, स्वयं अवतारों के माध्यम से 'आदिशक्ति' ने मानव जाति को दिव्य मार्गदर्शन दिया। आदिशक्ति ने उत्क्रांति के लिये आवश्यक निर्देश संचालित किये; उत्क्रांति का उद्देश्य मनुष्य को मालूम नहीं था, उसने नहीं खोजा था। सतगुरूओं के इन संदेशों का उद्देश्य समाज के उस समय की विचार धारणाओं के स्तर को, उनकी आवश्यकता के अनुरूप करना था तथा इससे भी अधिक उन्हे गतिमान करना था।

शुरुआत में प्राचीन समाज दैवी-शक्तियों को प्रकृति की अभिव्यक्तिः

बिजली की कडक, सूर्य, चन्द्रमा, वर्षा, भूमि की उर्वरता इत्यादि में देखता था। (अतिचेतन स्वर्ग के देवी-देवताओं को हिन्दू, यूनानी, ईरानी आदि समाज मानते थे)। इसके बाद मानवीय समझ बैकुण्ठ में विद्यमान परमात्मा के विभिन्न पहलूओं को प्रकट करने वाले देवी-देवताओं तक पहुँच गई। धर्म के इतिहास का यह रुप हिन्दू धर्म ग्रंथों वर्णित है। भगवान बुद्ध तथा महावीर दो ऐसे अद्वितीय मानव प्राणी थे, जो अवतारों की श्रेणी तक पहुँच गये। उनके उत्थान के माध्यम से आदिशक्ति ने मनुष्य की चेतना का संबंध 'सत्य' के साथ अधिक अच्छे रुप में स्थापित किया। पूरी दुनिया में दूसरे अन्य सत्‌गुरूओं ने इसी उद्देश्य के लिये कार्य किया है। अवतारों के आगमन के समय व स्थान के ऐतिहासिक प्रारूप को आज विद्वानों ने स्वीकार करना शुरु कर दिया है। उदाहरण के लिये दार्शनिक कार्ल जेस्पर्स ने ६०० ई.पू. से ४८० ई.पू. के कालखण्ड को, जिनमें पाँच सत्‌गुरूओं का जीवनकाल था, उसे 'केन्द्रिय-काल' कहा है। ये पाँच सत्‌गुरु थे : ईरान के जरथुस्त्र, यहुदी पैगंबर ईसाहा, जिनका कार्यक्षेत्र था ओम्सस, जेक्सरटस बेलिन, बुद्ध (ई.पू.५६७-४८७) जिनका कार्यक्षेत्र था बिहार, चीन के राज्य लू में जन्में कन्फ्यूशियस (५५१-४७९ ई.पू.), सेमास द्वीप के पाइथोगोरस, जिन्होंने यूनानी साम्राज्यवाद के अधीन दक्षिण इटली में शिक्षायें दी। इन पाँचो सत्‌गुरूओं ने तत्कालीन समाज के धार्मिक अंधविश्वासों को तोड़ा, समाज-सुधार का प्रयत्न किया तथा अपने साथी मानव-बंधुओं को गहन आर्तरिक ज्ञान दिया तथा उन्हें नवीन धार्मिक सामाजिक आचरण की शिक्षा दी।

विष्णु तत्व के नौवें अवतरण (भगवान विष्णु का उत्क्रांति का सिद्धांत) ने मुक्तिदाता की शिक्षाओं को सार्वभौमिक स्तर पाँचों महाद्वीपों से व्यक्त किया। उस समय यह ज्ञान सीमित क्षेत्र तक ही प्रसारित था। भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र ईसा मसीह की महाविष्णु के रुप में प्रकट होने की भविष्यवाणी ऋषि मार्कन्डेय के 'देवी भागवत' में काफी पहले की जा चुकी है: जिसकी त्वचा के प्रत्येक रोम में अनेक नक्षत्र मंडल व आकाशगंगायें विद्यमान हैं। महालक्ष्मी का अवतरण माता मेरी, अपने इस विलक्षण दैवी शक्ति वाले पुत्र

को क्रॉस पर चढ़ता देखेंगी। नाटक का वह क्षण अति मार्मिक एवं भ्रामक होगा। हम ईश्वर के उस महान खेल के सामने श्रद्धा से केवल शांतिपूर्ण नमन कर सकते हैं। विराट के आज्ञा चक्र को खोलने के लिए, अहंकार की हत्या किये बगैर यह संभव नहीं था। प्रभु ईसा मसीह ने लोगों के अहंकार के सामने अपनी हत्या करवा कर यह बलिदान दिया। मानव के प्रभु ईसा मसीह की हत्या करने पर, इस भयंकर हत्या के अपराध बोध ने, मानव के अहंकार को वश में करने में सहायता की। ईसाइयत का संदेश क्रॉस नहीं, अपितु पुनरुत्थान होना चाहिये। प्रभु ईसा मसीह में पिता (श्री विष्णु, श्री शिव) व पुत्र (श्री गणेश, श्री कार्तिकेय) एक ही हैं। मनुष्य के लिये ईश्वर के बलिदान से, मानव जाति के लिए, उसके प्यार की स्वीकृति की अनुभूति होती है। उस समय तक भगवान कृष्ण के रुप में मानव को ईश्वर की महानता का ज्ञान था। किन्तु उसे यह नहीं मालूम था कि उन्होंने अपने पुत्र को सूली पर चढ़ा कर अपने आपको आत्मा के रुप में कैसे प्रकट किया। ईसा के पुनरुत्थान में मनुष्य ने अपनी आंखों से, मनुष्य के अंदर आत्मा की अमरता देखी। उनके पुनरुत्थान ने, उनके पिता श्री कृष्ण के भागवद् गीता के कथन को सत्य सिद्ध किया 'आत्मा को नष्ट नहीं किया जा सकता, वह अनंत है।' इस प्रकार विराट के आदि आज्ञा चक्र खोलने से, महान उत्क्रांतिक नाटक का अंतिम भाग भी आरंभ हो गया।

वास्तव में सृष्टि-उत्क्रांति की सच्ची रूपरेखा ईश्वर के अवतारों द्वारा, आत्मा की उन्नति में उठाए गए कदम हैं। जो मनुष्य को धर्म के अनुसार कार्य करने की शिक्षा देने आये थे। उनके कार्यों ने भौतिक जगत में आत्मा की स्वयं की चेतना में वृद्धि की। हालांकि यह उन्नति हमेशा उपर उठते हुये एक ग्राफ की भाँति नहीं रही, इसमें काफी उतार-चढाव आये हैं। सद्गुरूओं को सभी लोगों ने, जिनमें उनके अनुयायी व सबसे नजदीकी लोग भी सम्मिलित हैं, एक समान सत्य रुप से कभी नहीं समझा। अर्जुन श्रीकृष्ण को, पीटर जीसस् क्राइस्ट को, अबूबकर मोहम्मद को बहुत अधिक नहीं समझ सके। जितना कम ईश्वर या उनके दूतों को समझा गया, उतना अधिक ईश्वर या उसकी

धारणा का दुरूपयोग, उपरोक्त संस्थाबद्ध धर्मों द्वारा किया गया।

जब दैवी अवतारों ने सत्य का प्रतिपादन किया तो उनके अनुयायियों ने उनके संदेश को अपनी सम्पत्ति समझ लिया। उनकी मृत्यु के बाद उनकी महान शिक्षाओं का तत्व खो गया तथा शेष खाली रूप धर्म कहलाया। अब यह हो रहा है कि गलत सोचने मात्र से चैतन्य लहरियाँ प्रतिक्रिया करती हैं।

हमें विश्वास है कि सहजयोग मृत-चर्च में नहीं बदलेगा। साक्षात्कारी आत्मा के लिये देवता उसके अंदर जागृत हैं: वह एक रिकार्ड करने वाला व ठीक करने वाला उपकरण बन जाता है। किसी भी चक्र में रुकावट आते ही उस चक्र के जागृत देवता की प्रतिक्रिया के कारण जलन का अनुभव होता है। प.पू.श्रीमाताजी की शिक्षाओं की जाँच कभी भी की जा सकती है, क्योंकि वे सीधे मध्य अनुकंपी नाडी तंत्र पर हैं और यह साक्षात्कारी आत्मा द्वारा, किसी गलती की आशंका को कम करती है। जैसा हमने पहले कहा है कि धर्म हमारे दैनिक जीवन के ध्यान का जीवंत अनुभव बन जाता है। कुण्डलिनी के प्रथम जागरण के समय आनंद एवं शांति का अप्रकटनीय अनुभव, साक्षी भाव के विकास साथ-साथ क्रमशः स्थिर होता जाता है।

भारतीय सहजयोगी समझाते हैं कि प.पू.श्रीमाताजी के प्रथम दर्शन से ही कुण्डलिनी जागृत हो जाती है, मानो युगों की प्रतीक्षा के बाद, वह अपने मूल स्त्रोत से पुनः मिल रही हो। अपने वेगपूर्ण स्वागत में ,वह ब्रह्मरन्ध्र भेदती है और दूसरा जन्म देती है। इसके बाद कुण्डलिनी वापस गिर कर, अपने निवास पर पुनः आ जाती है, किन्तु वह धीरे-धीरे वापस आकर दुबारा जन्म लेने वाले प्राणी की देखभाल करती है, उसे परिवर्तित एवं समृद्ध करती है। सहजयोग एक जीवंत धर्म है, जो कुण्डलिनी के जागरण के जीवंत प्रमाण से आपको विश्वास दिलाता है। जब सहजयोग साक्षात्कारी आत्मा में ठीक से स्थापित हो जाता है, तो साधक बगैर कठिनाई के, विभिन्न अनुभूतियाँ अपनी उंगली, रीढ़ व मस्तिष्क में अनुभव कर सकता है। वह सृष्टीय अचेतन को पढ सकता है।

नया युग, जिसमें सामूहिकता में यह सम्भावना (साक्षात्कार) फलीभूत होती है, वह हमारे सामने खुली हुई है। इस अत्यंत खरी बात को और अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है। यह भौतिक जगत जो हमारे आसपास है, इसमें पिछले करीब ६००० हजार वर्षों में, उत्क्रांति एवं चेतना की एक विशिष्ट स्थिति आई है। इस आधुनिक अवस्था के पहले विभिन्न उत्क्रांतिमूलक स्थितियाँ हमारे अंदर स्थापित हुई थीं। जैसा पहले कहा गया है सृष्टि-उत्क्रांति की संपूर्ण संरचना, महान आदिसत्ता, (विराट) में निहित है, यह कार्यक्रम पदार्थ की रचना के पहले ही अस्तित्व में था। यह 'ब्रह्मांड की तीर्थयात्रा' का सात आयामी कार्यक्रम है। इसमें अंतिम चरण को छोड़ कर बाकी छहों कार्यक्रमों का कार्यान्वयन हो चुका है। अंतिम चरण २१वीं सदी का आज 'घोर कलियुग' है, जो अंधकार का सबसे निकृष्ट काल है। यह ऐतिहासिक समय छठे चरण (प्रभु ईसा मसीह का अवतरण) के प्रकटीकरण की समाप्ति और सातवें चरण में अवतरण के मध्य का है। हम विभिन्न धर्मग्रन्थों द्वारा घोषित समय चक्र की पूर्णता के नजदीक, अंतिम दिनों में हैं।

प.पू.श्रीमाताजी ने एक बार आश्चर्य व्यक्त किया, 'प्रभु ईसा मसीह को जिन लोगों ने स्वीकार किया वे साधारण व अशिक्षित मछुवारे थे, किन्तु पुजारियों व प्रशासकों ने उन्हें अस्वीकार किया। आज भी, शीर्ष पुरुष-नौकरशाह, वैज्ञानिक, बुद्धिजीवी आदि क्या सहजयोग को स्वीकार करेंगे?'

निसंदेह, अहंकार पर विजय प्राप्त करना बड़ी चुनौती है। मुझे अभी भी आशा है कि बहुत से लोग इस पर विजय प्राप्त करेंगे। क्या बहुत से बुद्धिमान विचारक महान परिर्वतन की आशा नहीं कर रहे हैं, जिससे उत्क्रांति को सही अर्थ मिलेगा।

अगर मनुष्य की बुद्धिमानी का साँचा जो इतिहास के उत्क्रांतिमूलक झुकाव (तथा बाद के आकृति विज्ञान) का विवरण देता है तो यह और कुछ नहीं, केवल पदार्थ में सदा विकसित चेतना का कार्यान्वयन है। हमने इतिहास की व्याख्या करने की पद्धति बनाई है, जो वर्गीकृत समाजों (विकसित, अल्प विकसित व अविकसित) के विकास की प्रक्रिया का अध्ययन कर के

कुछ अर्थ निकालती है। पहुँचे हुए वैज्ञानिकों के अनुसार इतिहास, जैविक-सामाजिक-पर्यावरण-पद्धति का जुड़ा हुआ संपूर्ण प्राणी है। इस समय पर्यावरण पूर्णतया अव्यवस्थित है, इसलिए बहुत सी खोजें भविष्यवाणी कर रही हैं कि मनुष्य समाज के विनाश की शीघ्र सम्भावना है।

इस संबंध में सहजयोगियों के पास एक आशाजनक व प्रसन्नता देने वाली सूचना है। महान संदेश यह है मानव को दण्ड स्वरूप होने वाली प्रलय के काफी पहले एक सुखद महान परिवर्तन होगा, जो बहुत से लोगों को सुरक्षित बचा कर २१ वीं सदी में आवश्यक समग्रीकृत बदलाव करेगा।

इतिहास की परिपूर्णता न तो हेगल का राज्य है, न ही मार्क्स का साम्यवादी समाज या पूंजीवादियों की सहस्राब्दी। जो जानकारी मैं इस पुस्तक में प्रस्तुत कर रहा हूँ वह नया युग वह है जिसमें मनुष्य अब तक इतिहास में न होने वाली, मौलिक क्रांति का अनुभव करेगा। वह अपने पूर्ण परिवर्तित ध्यान के क्षेत्र में सीधे ईश्वर के ज्ञान एवं सत्य का साक्षात्कार करेगा-यही सृष्टि की उत्क्रांति का मूल उद्देश्य है। दूसरे शब्दों में, दूसरा जन्म प्राप्त अर्थात द्विजों के द्वारा या उनके ध्यान में स्वयं परमात्मा अपनी दिव्यता देखेगा। मनुष्यों में यह दिव्य के आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया सृष्टि में परिपूर्ण हुई है। वास्तव में जब हम मानव मस्तिष्क के जाल को शक्तिशाली स्कैनिंग, इलेक्ट्रोनिक माइक्रोस्कोप के द्वारा देखते हैं, तो हम उस भौतिक पृष्ठभूमि को देखते हैं जिसमें आत्मा को पदार्थ में साक्षात्कार करना है। यह क्षण व्यक्ति का आत्मसाक्षात्कार (समाधि) कहलाता है। यह पूर्ण नाटक, दिव्य प्रेम की महान कविता है।

सृष्टि-रचना का उद्देश्य आदिशक्ति के पुत्र तथा सृष्टि के सरताज मानव को, उच्चतम संभव उपलब्धि प्रस्तुत करना है: 'दिव्य ध्यान में एकाकार होना'। इसके बाद ही मनुष्य में स्थित दिव्य, स्व (आत्मा) की, जो सर्वशक्तिमान परमात्मा का प्रतिबिंब है, स्वयं जानगा। इस जबरदस्त प्रक्रिया की घटना को, पुत्र नायक, उद्धारक का मूल स्वरूप तथा खोज की पुराण कथा के रूप में वर्णित किया गया है। मानव साधक ईसा के अंतिम भोज के

योद्धा हैं। 'खोया हुआ स्वर्ग' मनुष्य का दिव्य स्वभाव है, उसे ढूँढ़ना कीमियागिरी (लोहे से सोना बनाने की विद्या) परिवर्तन है, जिसे मध्ययुगीन कीमियागर व्यर्थ ही पारस पत्थर में ढूँढ़ रहे थे। हमें 'साक्षी स्वरूप' दिव्य नाटक का दर्शक बनना है। यह नया ध्यान एक दिव्य जगत उत्पन्न करता है : यह उस पवित्र गरिमा का राज्य है, जिसकी झलक सभी धर्मों के रहस्यवादियों ने 'आनंददायी' दृश्य में देखी थीं, यह ईश्वर का साम्राज्य है; बच्चों को जिसका वचन भगवान जीजस ने आदिशक्ति के आगमन का दिया था। यह बोधिसत्व अमिताभ की पवित्र भूमि है। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं, ''बच्चे, सृष्टि-रचना के खिलौने के साथ खेलेंगे, जिसे ईश्वर ने उनके लिये बनाया है।''

आत्मसाक्षात्कार का अर्थ है प्रथम, व्यक्तिगत मानव चेतना का मूल उर्जा में विलीन होना अर्थात माँ से मिलन; फिर माँ धीरे-धीरे बच्चे का परिचय पिता से करवाएगी, चूंकि ईश्वर की उर्जा (मां) ईश्वर को जानती है। एक मनुष्य की दृष्टि से परम पिता परमेश्वर मनुष्य की इंद्रियों के अनुभव से परे हैं, इसलिए माँ की कृपा एक आवश्यक मध्यस्थ भूमिका प्रस्तुत करती है। इस भूमिका को ईसाई धर्मशास्त्रों में माता मेरी द्वारा निभाये जाने का वर्णन बहुत सुंदर ढंग से किया गया है।

प्रत्येक वस्तु जो आदिमाता के द्वारा उत्पन्न की गई है, उसे पूर्ण व पवित्र होना चाहिये। किन्तु पूर्ण स्वतंत्रता दी गई थी, जो इस पूर्णता की प्रक्रिया का आवश्यक तत्व था। इस स्वतंत्रता का दुरूपयोग करते हुए, कुछ रचित प्राणियों ने गलत रास्ते अपना लिये। ये शैतानी शक्तियाँ उर्जा के संतुलन को सबसे निम्न रुप (पाशविक स्वभाव, अवचेतन में कामप्रवृत्ति) में ले जा सकती है तथा ये खास तौर पर मानवीय उर्जाओं को दूषित मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न कर रही हैं। इस संबंध में माँ का वर्णन इन शैतानी शक्तियों की शत्रु के रुप में किया जाता है क्योंकि वे अपनी रचना की रक्षा करने की लिये हस्तक्षेप करती हैं। इसलिये माँ काली का वर्णन डरावने रुप में किया गया है। वह शैतानों के लिये डरावनी हैं।

उत्क्रांति की प्रक्रिया में नायक का चित्त उर्जा के सबसे निम्नतम रुप से

उच्चतम रुप में उठाया जाता है। हमें प्रार्थना करनी चाहिये कि उर्जा के सबसे निचले रूप की उलझनें दूर हो जायें तथा हमें संत जार्ज की भाँति हम पंख वाले ड्रेगन को मार देना चाहिए। किन्तु बाहरी सन्यास या तपस्या के दिखावे से किसी को मुक्ति नहीं मिलती। यह केवल ईमानदार आंतरिक संघर्ष के द्वारा ही होता है कि हम अपनी चेतना को गहरी सतहों तक ले जा पायें। अडचनें इसलिए हैं कि उन्हें दूर किया जाये। माँ चाहती है कि उसका बच्चा उन्नति करे। वह प्रेम से ही आडोलित होती है। वह प्रेम है, केवल प्रेम, कुछ नहीं मात्र प्रेम हैं तथा इसलिए वह चाहती है कि उसका बच्चा उँची मंजिल हासिल करे; जो उसने अपने बच्चे के लिये बनाई है वह उसका पूरा आनंद ले।

मनुष्य के उत्थान की प्रक्रिया में कठिनाईयाँ, पीड़ा, भय एवं पौराणिक स्मृतियों की मृत्यु एक आवश्यक भाग है। माँ की अनुकंपा से अपने 'दिव्य-स्व' के पुनरुत्थान के लिए मनुष्य को अपने अहंकार व प्रति अंहकार को मारना होगा, जो कि एक पीडादायक प्रक्रिया है क्योंकि मन हमेशा वापिस लौटने व नायक को असफलता से डराता है कि निचले स्तर की कुवृत्तियाँ उसे निगल जाएंगी, कहीं मन की विजय और नायक की हार न हो जाये।

दैवी माँ की सुरक्षा व शुद्धता से मनोबल बढ़ता है।

दिव्य का ध्यान चैतन्य उर्जा की उच्चतम स्थिति है तथा यह स्थिति निष्कलंक माँ द्वारा प्रदान की जाती है। श्री गौरी द्वारा भगवान गणेश का निष्कलंक धारणा तथा माता मेरी द्वारा भगवान ईसा मसीह के निष्कलंक गर्भधारण से सिद्ध होता है कि दैवी-माँ निष्कलंका अपने बच्चे को आध्यात्मिक पुनर्जन्म देती हैं। प.पू.श्रीमाताजी का नाम बाल्यकाल में 'निर्मला' रखा गया तथा विवाह पश्चात उनके नाम के पश्चात 'श्रीवास्तव' शब्द लगा जिसका अर्थ होता है 'वास्तविकता में पवित्र देवी' ('श्री'-देवी, 'वास्तव'-यथार्थ)।

चूँकि मनुष्य की जागृत चेतना को, सृष्टीय नाटक के अंत में दैवी उर्जा में विलीन होना है, इस विषय में हम केवल यही बात सच्चाई से कह सकते हैं कि बच्चे को माता के गर्भ (कुंभ) में पुन: प्रवेश करना है। हमारे पुनर्जन्म का

आध्यात्मिक गर्भ मूलाधार (मूलाधार चक्र नहीं) ही है, जो कि कुण्डलिनी का निवास है।

अतः आखिर में प.पू.श्रीमाताजी हेगल, कार्ल मार्क्स और अन्य लोगों को उत्तर देती हैं जिन्होंने 'इतिहास के चरम बिंदु' की प्रतीक्षा की।

मनुष्य का ध्यान महान परिवर्तन का माध्यम व क्षेत्र है, अर्थात जिसके द्वारा शक्ति-आत्मा-उर्जा स्वयं को मनुष्य की चेतना में स्व-कार्यान्वित करती है तथा इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है : कुछ समझदार लोगों को ज्ञानात्मक शक्तियों के उपकरण के रूप में विकसित करना संभव है जिसके माध्यम से सत्य से संबंध जुट सकता है। यह समय अब आ गया है। आत्मचेतना से, आज कल कुछ लोग अपने इतिहास को ईश्वर के इतिहास की कविता के रुप में लिख रहे हैं। हेनरी ड्रुमण्ड की पुस्तक 'The Ascent of man' के अनुसार इतिहास का अर्थ है कि यह किस ओर (मनुष्य की ओर) मुड़ता है न कि उसमें से कितनी उत्क्रांति करता है। इसी प्रकार जो यह उत्क्रांति अब शुरु हो रही है, वह उत्क्रांति से कहीं अधिक है। इसका अर्थ है कि हम उत्क्रमण में सतर्कता से शामिल हो जायें। इस जटिल संरचना को 'चेतना में उत्क्रांति' भी कहा जा सकता है क्योंकि इस प्रक्रिया में हम पूरे ध्यान के साथ शामिल होंगे।

हम इसे कुछ भी नाम दें, मन की क्रांति, सतोरी, परोसिया, आत्मसाक्षात्कार की घटना से आनंद आता है। वाह! ये बात थी। मजा आ गया। लंदन के सहजयोगी आत्मसाक्षात्कार प्राप्त होने पर यही प्रतिक्रिया देते हैं। सब कुछ मजाक सा लगता है, दुनिया गंभीर सी नहीं रह जाती। खुशी तथा आनंद के आसूँओ से वे प.पू.श्रीमाताजी की मुस्कान को निहारते हैं।

आत्मसाक्षात्कार व्यक्ति के निजी स्तर पर. सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय स्तर पर 'कार्यक्रम' की पूर्णता को अभिव्यक्त करता है। जब यह आत्मसाक्षात्कार सामूहिक स्तर पर किया जाता है तो कार्यक्रम की पूर्णता सृष्टि स्तर पर होती है, अर्थात यह विराट के सातवें चक्र के जागरण को प्रेरित करती है। इस रूप में हम कह सकते हैं कि आत्मसाक्षात्कार इतिहास की परिपूर्णता दर्शाता है।

उसी रूप में हम कह सकते हैं कि ईश्वर का इतिहास व मनुष्य का इतिहास एक कहानी के दो रूप हैं। दृढ़ स्तर पर इसका अर्थ है कि अब हम बोध के उस राज्य में प्रवेश कर सकते हैं, जिसके लिए हम हजारों वर्षों से संघर्ष कर रहे थे ; सतयुग, स्वर्णयुग, स्वर्ग का राज्य, पावन भूमि।

यद्यपि अंतिम पंक्तियाँ, पश्चिमी पाठकों की नास्तिकता को चोट पहुँचा सकती हैं, किन्तु यह प्रमाण है कि नये युग की कल्पना उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी पश्चिमी चेतना। आगे आने वाली स्थिति की परिपूर्णता की आशा युगों से मनुष्य के मन में,'अंतिम दिनों' की अपेक्षाओं के रूप में अंकित है और इसे विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं में पौराणिक चेतना की विषयवस्तु माना गया है। इसे मूल रूप में गम्भीरता से विचार करना चाहिए क्योंकि एक मौलिक विचार स्वरूप यह विचार, मानसिक उर्जा उत्पन्न करने वाला है, जिसने अच्छे के लिए व अधिकतर बुराई के लिए मानव मस्तिष्क व यूरोपियन राजनीति को पूर्णतया संस्कारित कर दिया है। इस घोषणा को सबसे अधिक दुरूपयोग किया गया है।

युगान्तविषयक योजना (eschatological scheme) का एक अधिकारिक विवरण (उदाहरणार्थ डेनियल की पुस्तक 'सिबिलाइन ओरेकल्स' (Sybilline Oracles) का सातवाँ अध्याय (ईसा की चौथी सदी), मार्क्स की 'दास कैपिटल', नाजी रोजेनबर्ग की 'मिथस् ऑफ द ट्वीनटीएथ सेन्चूरी' में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया था: ईसा विरोधी जीतने वाले हैं, किन्तु श्रेष्ठ मनुष्यों का समूह जिसका नायक उद्धारक मसीहा है, सफलतापूर्वक अंतिम लड़ाई में विजय प्राप्त करता है, जिससे एक नया युग शुरू होता है। इसी विश्वास के कारण माकाबिएन्स (Maccabeans) ने एंटीओकस चतुर्थ एपीफनोज (१६५ ई.पू.) के विरूद्ध विद्रोह किया। कान्स्टेन्टाइन (Constantine) ने मेक्सेन्टियस (Mexentius) पर विजय प्राप्त करके व रोमन ईसाई साम्राज्य (चौथीं शती ई.) आरंभ किया। इसी योजना के द्वारा गोदफ्रा द बियाँ (Godefrog de Bouillon) ने यरूशलम पर कब्जा किया, फ्रेडरिक द्वितीय होहेनस्टाफेन (Hohenstaufen) ने पोप से

लड़ाई की, थॉमस मुंजर ने जर्मन किसानों को अपने मालिकों के विरूद्ध भड़काया। आधुनिक समय में, अब न तो ईसा मसीह दुबारा जन्म लेंगे, न वह युग आयेगा किन्तु साम्यवादी समाज पूर्ण रूप से आयेगा या फिर नाजी युग। ईसा के विरोधी एंटीयोक्स और मैक्सेन्टीयस, मूर तथा सेरासन, रोम का चर्च (Joachim de Fiore), पादरी तथा मध्यकाल के शासक, पूंजीवादी (मार्क्स) की सेना में थे। जबकि उद्धारक हर वर्ग के चुने हुए लोग थे, यवोहा के प्रतिनिधि, धर्मयोद्धा अथवा मजदूर वर्ग के क्रांतिकारी नेतागण इत्यादि। इस योजना (ईसा विरोध) का आखिरी कार्यान्वयन नाजी जर्मनी में लगभग ७५ वर्ष पूर्व हुआ था, जो कि शैतानियत की पराकाष्ठा थी। एडोल्फ हिटलर ने आर्य जाति की श्रेष्ठता के नाम पर अपने विरोधियों को निर्ममता से रौंद डाला। नाजी शैतानियत का प्रसार द्वितीय विश्व युद्ध का कारण बना, जो एक उदाहरण है कि किस प्रकार मनुष्य की चेतना में शैतान के हावी होने से, वह अपनी पूर्णता के उद्देश्य को भूल जाता है, जो युगान्त विषयक की उद्घोषणा थी। विश्व युद्ध की भयानकता के बाद यह सोचना भी असम्भव था कि स्वर्णयुग मानव की पहुँच में होगा। किन्तु फिर भी, यह आज और अभी विद्यमान है।

'युगान्तविषयक योजना' मनुष्य के लिए, नये युग के आगमन की घोषणा सृष्टीय अचेतन अर्थात् विराट के मस्तिष्क के द्वारा की गई है। कल्की पुराण में भगवान विष्णु का दसवाँ अवतार, कलियुग (अंधकार के युग) का अंत करता है। सृष्टि के चक्र का यह अंतिम काल-खण्ड वह समय है, जिसमें हमने वर्तमान ज्ञान क्षमताओं का स्तर विकसित किया है। ईसा मसीह की चार शिक्षाऐं, 'जॉन के प्रकटीकरण की पुस्तक', 'स्वर्गीय यरूशलम' आदि में सतयुग के आगमन की इसी प्रकार की भविष्यवाणी की गई है। सामान्य रूप से जैसा होता है, राजनैतिक कारणों से इस योजना को विकृत किया गया व इसका दुरूपयोग किया गया। मेरा उद्देश्य यही है कि युगान्तविषयक योजना के वास्तविक घटनाक्रम को सही दृष्टिकोण में लाया जाये अर्थात सही घटनाओं को उस रूप में पहचानना, जिस रूप में भविष्य दर्शियों के मस्तिष्क

में 'सृष्टीय अचेतन' ने उक्त योजना का प्रक्षेपण किया था।

- **सिद्धांत** - यह सहज कुण्डलिनी योग का सिद्धांत है। इसका अभ्यास भगवान बुद्ध तथा महावीर जैसे महापुरूषों ने किया था। आज आदिशक्ति की अनुकंपा से यह जन-जन के लिए सहजयोग के नाम से उपलब्ध है।

- **ईसा विरोधियों की टोली** - वे तमाम लोग जिनकी मन-चेतना शैतानी शक्तियों (U.P.I.) के अधीन है तथा वे इसी में अपनी पहचान कायम रखना चाहते हैं। ये लोग समाज में ऐसे व्यवहार-आचरण फैलाते हैं जो लोगों को सुषुम्ना अर्थात पूर्णता के मार्ग से दूर ले जाते हैं।

- **उद्धारवादी** - ये वे लोग हैं जो साक्षात्कारी हैं तथा ये हर देश, राज्य तथा जाति के हैं। ये वे लोग हैं जिनका उनकी कुण्डलिनी ने उद्धार कर दिया है तथा ये लोग दूसरों की कुण्डलिनी जागरण का कार्य भी कर रहे हैं ताकि उनकी कुण्डलिनी भी उनका उद्धार कर सके। हम ऐसे लोगों को उस सीमा तक ही उद्धारवादी मानते हैं जहाँ तक वे इस उद्धार कार्य में एक अच्छे माध्यम बने हैं।

- **मुक्तिदाता** - ये भगवान विष्णु का दसवाँ अवतार हैं, यही 'वापिस लौटे राजा', कल्की हैं (इनका वर्णन 'कल्की पुराण' तथा भविष्यलेख में सफेद घोड़े पर सवार विध्वंसक के रूप में किया गया है।) इस पुस्तक के लिखे जाने तक, भगवान कल्की प्रकट नहीं हुए हैं तथा अभी भी विराट के मस्तिष्क में गर्भित रूप में हैं। वह पहले ही विराटांगना (विराट की शक्ति) के रूप में जागृत हो गये हैं व प.पू.श्रीमाताजी के रूप में आ चुके हैं। इसलिए सभी प्रकार से सत्य रूप में व व्यवहारिक उद्देश्य के लिये प.पू.श्रीमाताजी, श्री कल्की हैं। वे हमारी आशा हैं। वे ही मुक्तिदाता हैं। वे ही मुक्ति हैं। वे ही लक्ष्य हैं। किसी अन्य से इस प्रकार की आशा नहीं है, क्योंकि जब कल्की अपने भयंकर रूप में आएंगे तो वे सिर्फ विनाश ही करेंगे।

- **अंतिम युद्ध** - अंतिम युद्ध श्री कल्की के आने के साथ आरंभ

होगा, किन्तु प.पू.श्रीमाताजी ने इस विषय में अभी कुछ भी प्रकट नहीं किया है। वास्तव में अंतिम युद्ध आरंभ हो चुका है। प.पू.श्रीमाताजी व साक्षात्कारी आत्माओं का प्रयत्न, इस ग्रह (पृथ्वी) के प्राणियों के वातावरण में चैतन्य की दिव्य सात्विक चैतन्य लहरियाँ लाना है। प्रत्येक साक्षात्कारी आत्मा इन दिव्य चैतन्य लहरियाँ का विकिरण करती है व दिन रात वातावरण की नकारात्मक लहरों से संघर्ष कर रही है।

- **नया युग** - यह स्वर्ग का राज्य है जो पृथ्वी पर इसलिए लाया गया है ताकि मनुष्य इस दिव्य 'स्वर्गीय चेतना' में सम्मिलित हों। जैसा मैं सुझाव दे रहा हूँ, इस बात का अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है कि आने वाले सतयुग में पृथ्वी पर जीवन किस प्रकार का होगा। समाज में आगे आने वाला परिवर्तन, सृष्टि की शक्तियों व मनुष्य के सम्मिलित प्रयत्न का परिणाम होगा। अभी शुरुआत में ऐसा कोई तरीका नहीं है जिससे हम यह जान सकें कि किस प्रकार से यह परिवर्तन होगा। हमारे लिये अपने चित्त को वर्तमान चेतना के अभिनव अविष्कार पर केन्द्रित करना अधिक उपयोगी होगा जो कि नये युग के अवतार के लिये अनिवार्य परिस्थिति होगी।

प.पू.श्रीमाताजी की कृपा से एक मार्ग है, जिसके द्वारा यह पुस्तक आपके अन्दर चेतना वृद्धि (बोध) उत्पन्न करके इतिहास में युगान्त विषयक योजना की परिणिति पर पहुँचने में मदद कर सकती है।

''इस पुस्तक के आरंभ में आदिशक्ति का चित्र, प.पू.श्री माताजी निर्मला देवी के रूप में है। आदिशक्ति के चित्र में यह शक्ति है कि वह चैतन्य लहरियों का विकिरण करती है, तथा इससे आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है।''

अब जरा ध्यान से सुनो! प्रभु ईसा मसीह ने कहा था कि, 'ईश्वर के राज्य में प्रवेश करने के लिए हमें दो बार जन्म लेना होगा।' उन्होंने कहा कि, 'हर एक को आत्मा से जन्म लेना होगा।' उन्होंने कहा, 'जिसने आत्मा से जन्म लिया है वह हवा के समान है।' उन्होंने उन पर श्वांस छोड़ी तथा उनसे कहा कि, 'वे पावन आत्मा को प्राप्त करे' (जॉन २०.२२)। क्या आप प्रभु

ईसा मसीह की श्वास को प्राप्त करना चाहते हैं? क्या आप पावन आत्मा को प्राप्त करना चाहते हैं? क्या आप इसे ढूँढ रहे हैं?

अपने लिये थोड़ा समय निकालें। किसी दिन प्रात: उठकर स्नान करके कमरे में शांति से बैठ जायें। पुस्तक को खोलकर, जहाँ श्रीमाताजी का फोटोग्राफ है, उस पृष्ठ के सामने हाथ खोलकर आराम से बैठ जाईये। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं, ''आप अमीबा से मानव की स्थिति में स्वाभाविक रुप से विकसित हुए हैं। अब आने वाली उत्क्रांति की चिन्ता क्यों करते हो?'' आपको कोई और प्रयत्न करने की जरूरत नहीं है, सिर्फ अपने मन को शांत रखने का प्रयत्न करें। अपने दोनों हाथों को फोटो की ओर फैलाईये, हथेली ऊपर की तरफ होना चाहिये। आप प.पू.श्रीमाताजी के आज्ञा चक्र (बिन्दी) की तरफ भी देख सकते हैं। इस स्थिति में करीब दस मिनिट रहें।

क्या आपको कुछ अनुभव हुआ? ठंडी हवा या हाथों में चुभन का अनुभव, शरीर में ऊपर की ओर गति? सिर में हल्केपन का अनुभव? यदि आपकों कोई भी अनुभव न हुआ हो, तो भी चिंता न करें। धैर्य रखें! जैसा मैंने पहले भी कहा है, कुछ लोगों के चक्र शुद्ध करने में प.पू.श्रीमाताजी को कई दिन लगे हैं। आप एक काम करें। एक बाल्टी में टखनों तक का पानी भर कर, उसमें थोडा नमक डाल लें और दोनो पैर उसमें डाल कर प.पू.श्रीमाताजी के फोटोग्राफ के सामने १० मिनट तक बैठें। इस पानी को बाद में टॉयलेट में बहा दें। ऐसा करीब २१ दिनों तक करें। यह प्रक्रिया सातों चक्रों में मौजूद अशुद्धियों को तीन बार साफ कर के इस नमकीन पानी में निकाल देगी।

यह आपको आश्चर्यजनक लग सकता है तथा जरूरी नहीं है कि आप इसे करें ही। किन्तु आप याद रखें कि हम सर्वशक्तिमान परमात्मा के विषय में बात कर रहे हैं, क्या आप समझे? क्या आप समझते हैं कि उसकी शक्ति कितनी जबरदस्त है? सिर्फ उसकी ऊर्जा है? सिर्फ उसकी इच्छा मात्र से सृष्टि का निर्माण होता है। यदि आप कहते हैं कि आपको उनकी शक्तियों पर विश्वास है, तो सोचिये कि ये विश्वास कहाँ तक सीमित है, रविवार की एक

बैठक तक, मस्जिद में प्रार्थना तक अथवा किसी शास्त्र को पढने तक? अब समय आ गया है जब आप उसे वास्तविक रूप से जीवित सच्चे परमात्मा के रूप में जानें। मैं आपको सलाह दूँगा कि आप एक परम सत्य, प्रश्न फोटोग्राफ के सामने पूछे, 'क्या आप आदिशक्ति हैं?' आप इस प्रकार का कोई भी परम प्रश्न पूछ सकते हैं? जैसे, क्या ईश्वर है? आश्चर्यजनक ढंग से, बहुत लोगों ने तीव्रता से फोटोग्राफ से हवा आती महसूस की है। इसका उत्तर 'हाँ' है।

कुछ लोग जिनका विशुद्धि चक्र ठीक नहीं है, वे शीतल हवा का अनुभव नहीं कर पाते हैं, किन्तु वे हल्कापन व निर्विचारिता का बोध अनुभव कर लेते हैं। हमने प.पू.श्रीमाताजी का फोटोग्राफ बहुत से रोगियों को दिया,जो असाध्य रोगों से पीडित थे, उन्हें शीतल हवा का अनुभव तो नहीं हुआ, किन्तु वे ठीक हो गये।

अब आप समझ गये होंगे कि मोहम्मद व मोजेस ने परमात्मा की छवियों के अनुरुप चित्र बनाने की मनाही क्यों की। जब तक कि कलाकार उच्च श्रेणी की साक्षात्कारी आत्मा नहीं है, उसकी रचना से दैवी-चैतन्य उत्पन्न नहीं हो सकता है। प.पू.श्रीमाताजी के फोटोग्राफ से चैतन्य बहता है, इससे हमारे ध्यान की गहराई बढ़ती है। इसलिए हमें इसका (फोटो) उचित आदर-सम्मान करना चाहिये तथा इसकी पूजा करनी चाहिए।

क्या आप इसे महसूस करते हैं? क्या यह गजब नहीं है? जो भी है आपको साक्षात्कार प्राप्त होने की बधाई, जन्म दिन मुबारक, जय श्रीमाताजी, आपका स्वागत है! अगला अध्याय आपके लिये ही लिखा गया है।

८ - आत्मसाक्षात्कार के बाद

सहज का अर्थ स्वाभाविकता भी होता है। परमात्मा की शक्ति का मुक्त प्रादुर्भाव मानव-बुद्धि से परे है। अतः यह अध्याय सहजयोगियों के अनुभव पर आधारित जानकारियों का संग्रह है। हम इसे आपके साथ बाँटना चाहते हैं क्योंकि बहुत से साधक भारी-भरकम संस्कारों से युक्त मन के साथ सहजयोग में आते हैं तथा उनके चक्रों की सफाई व उनकी साक्षात्कारी स्थिति स्थापित होने में कुछ समय लगता है।

किन्तु सबसे पहले यह कहना सही होगा कि कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिन्हें इसके आगे कोई व्याख्या देने की आवश्यकता नहीं पडती। ऐसी उँची आत्माओं को अनुभव होता है कि गंगा की धारा तीव्रता से उनके हाथों व शरीर में प्रवेश कर रही है व प्रत्येक नस-नाड़ी को आनन्द से भर रही है। बंद आँखों में उनका अस्तित्व, उनकी जीवात्मा के अन्दर उत्पन्न होती शांति स्वयं प्रकाश बन जाती है; जब वे पिघलती हुई सर्वव्याप्त महानता के अनुभव में विलीन हो रहे होते हैं तथा इसका एक अंग बन रहे होते हैं। जब वे आँख खोलते हैं तो मानो समय, स्थान एवं भ्रम पीछे छूट गए हों। वे अपने आसपास के संसार के दृश्य, खेल व हलचल को साक्षी भाव से देखते हैं। वे जानते हैं यह परमात्मा की लीला है तथा उनकी आत्मा इसकी साक्षी है।

यह संसार जो कुछ लोगों के लिये आँसुओं का सागर हुआ करता था, अब स्वर्ग का साम्राज्य बन जाता है। हमने सहजयोग के अपने बड़े भाई-बहनों से, उस साम्राज्य के विषय में व उस साम्राज्य की महानता के विवरण को पढ़ा है तथा सुना है। उन्होंने हमें बताया है कि किस प्रकार वे प्रत्येक चक्र पर ध्यान करते हैं, तथा वे चक्र उन्हें किस प्रकार से ब्रह्मांडीय चेतना के पहलुओं का अनुभव देते हैं। उनके पत्र 'परमचैतन्यमयी भगवती आदिशक्ति श्रीमाताजी निर्मला देवी' की गौरव स्तुति हैं। उन्हें यहाँ उद्धृत करना, समय से पूर्व होगा, किंतु

उनकी ओर से यहाँ कबीर की वाणी प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा :

कबीर कहते हैं: 'यदि तुम अपना जीवन, जीवन के सागर में घोल देते हो तब तुम अपना जीवन परम आनन्द की महान भूमि में पाओगे।'

उस स्थिति का प्रत्येक क्षण परमानन्द से परिपूर्ण है। साधक प्रत्येक क्षण उस आनंद के सत्व को पी रहा है। वह ब्राह्मण का जीवन भोगता है।

मैं सत्य बोलता हूँ, क्योंकि मैंने जीवन में सत्य को स्वीकार किया है। मैं अब सत्य से जुड़ गया हूँ। मैंने झूठी चमक दूर कर दी है।

हो सकता है कि आपमें से कुछ लोग जन्म से ही साक्षात्कारी हों। हमारे यहाँ भी कुछ लोग जन्म से ही साक्षात्कारी हों। उन्होंने परमचैतन्य का अनुभव पहले भी किया होगा तथा आनन्द का अनुभव भी लिया होगा। किन्तु उनमें से सबसे अच्छे व्यक्ति को भी प.पू.श्रीमाताजी को पहचानना व स्वीकार करना होगा अन्यथा परम चैतन्य की अनुभूति घटती चली जायेगी। सच तो यह है कि जन्म से साक्षात्कारी लोग पूर्ण साक्षात्कारी नहीं हैं तथा एक सत्य-साधक की तुलना में कहीं कम चैतन्य ग्रहणशील होते हैं। उनमें सभी-सभी को अपनी साक्षात्कारी स्थिति बनाये रखने के लिये सहजयोग के गुण सीखने होंगे। जैसा प्रभु ईसा ने कहा कि, 'प्रकाश को टेबल के नीचे नहीं रखा जाता।'

फिर भी, इन बहुत से लोगों को आत्मसाक्षात्कार का अनुभव सहजयोगियों के समान रहता है। हाथों में हल्की शीतल हवा आती है जो निर्विचारिता की ओर अग्रसर करती है। ईश्वर के साम्राज्य का द्वार भी पार हो जाता है। आपकी इसके अंदर टिके रहने की क्षमता, अन्य बातों के अलावा, आपके मूलाधार चक्र की शक्ति व आज्ञा चक्र खुलने की चौड़ाई पर निर्भर करती है, जो आपके चित्त (मानसिक क्रिया) की स्थिति बताती है। अहंकार भी आसपास रहता है। इसके अलावा साधक के सम्पूर्ण एवं पूर्व इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

बहुत से लोग जो आत्मसाक्षात्कारी नहीं हैं वे यह सोचते हैं कि आत्मसाक्षात्कार सफर का अंत है, किन्तु सच तो यह है कि हमारा दूसरा

जन्म लेना तो सफर की शुरूआत है। वास्तव में ब्रह्मरंध्र का छेदन, उसी समय 'पुराने मनुष्य' का अंत एवं नये मानव 'द्विज' का जन्म है। इस नये जीवन में, हर मनुष्य को वास्तविकता के सूक्ष्म क्षेत्र के महत्व को समझना चाहिए, जिसमें उसका जन्म हुआ है। जब किसी चेतना में बाधा (U.P.I.) होती है तो साधक को पूर्ण अनुभव नहीं हो पाता। कुछ लोगों को साक्षात्कार मिलते ही खो जाता है। कुछ लोग चैतन्य लहरियों को महसूस करने के पश्चात् भी इस पर शंका करने लगते हैं। कुछ लोगों की इसके महत्व पर ही शंका होती है।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म बहुत सूक्ष्म घटना है, जिसे पूरी समझ के साथ प्राप्त करना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि किसी देश को बिना संघर्ष के ही आजादी मिल जाये तो उसके नागरिक उनकी आजादी का मूल्य नहीं समझ पायेंगे। दूसरा जन्म अर्थात 'स्व' की आजादी प्राप्त करने में कोई संघर्ष नहीं होता क्योंकि यह आजादी आदिशक्ति प्रदान करती हैं, अतः कुछ साधक नया जन्म पा कर भी इसके महत्व को नहीं समझ पाते। आदिशक्ति हमें बिना प्रयत्न के सामूहिक रुप से, जेट की गति से कुण्डलिनी उठाकर साक्षात्कार प्रदान कर रही हैं। यह इसलिये कि अब उनके प्रकटीकरण का समय आ गया है-भविष्यवादित सवार (कल्की) के आने से पूर्व का समय। साक्षात्कार के बाद हमें इसे बनाये रखने की उत्सुकता बनाये रखनी होगी; भ्रम के विरुद्ध संघर्ष हमें 'स्व' की नई प्राप्त स्वतंत्रता स्थापित रखने में मदद करेगा।

'स्व' के द्वारा निकलने वाली शक्ति ही चैतन्य लहरियाँ हैं। 'द्विज' इन्हें प्राप्त करता है, साथ ही इन्हें प्रसारित भी करता है। 'स्व' अर्थात् आत्मा का प्रकाश, पारभासी (अर्ध पारदर्शी) चेतना है जिसे कुण्डलिनी द्वारा प्रकाशित किया जाता है किंतु हमें चाहिये कि हम उस लौ को बुझने न दें; अहं एवं प्रतिअहं से तूफानी हवायें एक बार फिर आ सकती हैं। जब तक मैं इस दूसरे जन्म का महत्व न समझ लूं, उसका मान-सम्मान न करूँ तो कैसे मैं इस 'लौ' का रक्षक बन सकता हूँ।

जहाँ तक मेरी बात है मेरा मामला तो बहुत खराब था। जब पहली बार मैं प.पू.श्रीमाताजी से मिला तो मेरा मन एक पागल घोड़े की तरह दौड़ रहा

था। मैंने अपनी खोज में अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखा तथा लीवर खराब कर लिया। मैं बहुत शुष्क और एक दिमागी व्यक्ति हो गया था तथा हर चीज़ को अपने दिमाग से सुलझाना चाहता था। मेरे दिमाग की हालत उस व्यक्ति के समान थी जो एक टूटा हुआ हारमोनियम बजाकर वातावरण को ओर अधिक उन्मादी व बेसुरा बना रहा हो। मैं उस धुन पर एक विदुषक की भाँति नाच रहा था, किंतु मेरे आसपास कोई भी इस प्रस्तुति का आनन्द नहीं ले पा रहा था क्योंकि वे लोग भी बुद्धिवादी थे और मेरे समान ही अर्ध-विक्षिप्त थे।

प.पू.श्रीमाताजी से मिलने के पूर्व मेरी खोज अपनी सीमा पर पहुँच गई थी। मैंने अनुभव किया कि मैं उस समाज में रह रहा हूँ, जिसने 'धर्म' की ओर कोई ध्यान नहीं दिया तथा उस सभ्यता में रह रहा हूँ जिसने मेरी निम्न प्रवृत्तियों तथा अहं को ही जाग्रत किया। मैं इन सबसे काफी तंग आ चुका था तथा मुझे लग रहा था कि कुछ 'अनहोनी' होने वाली है।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि आत्मसाक्षात्कार से मैंने निर्विचार चेतना, शांति व आंनद का अनुभव किया। किन्तु मेरे विशुद्धि चक्र में संकट होने के कारण मैं चैतन्य लहरियों को स्पष्ट रूप से महसूस नहीं कर पा रहा था। मेरा मस्तिष्क अशांति के भंवर में था। मेरा उत्थान धीमे चलने वाले नाटक के समान था, शायद मुझे इसके विभिन्न रोल करने थे। अन्य सहजयोगी मुझसे कहीं अच्छी प्रगति कर रहे थे। प.पू.श्रीमाताजी ने मुझसे अपना धैर्य कभी नहीं खोया। उन्होंने मेरी देखभाल इस प्रकार की, मानों मैं कोई खो गया बच्चा हूँ। इस समय के दौरान यह स्पष्ट रूप से देखने का मौका मिला कि हम पश्चिमी लोगों ने अपने अन्दर कितना कचरा पैदा कर लिया है। अब मैं यह जान चुका हूँ कि मैं उस जाति से हूँ, जो हँसी से नाचते-गाते हुए, बहुत से फूलों से भरे राजमार्ग को एक नरक में बदल रही है। अहंकारी, शराबी, दुराचारी व आडम्बर वाले बुद्धिजीवियों ने अपने मस्तिष्क को बाँझ विचारों का कचराघर बना दिया है। मैंने अनुभव किया कि इस बनावटी, पटरी से उतरे हुए समाज को, वापिस पटरी पर लाना एक असंभव काम है।

इस निराशा ने, जिसमें मेरे भाई-बहन एक दूसरे को नरक में धकेल रहे हैं, मुझे उदास कर दिया। इस तथ्य ने मुझे 'स्व' का सुख नहीं लेने दिया। मेरा मस्तिष्क कुछ समय के लिए शांति का अनुभव करता व पुनः अशांति एवं अवसाद की ओर चला जाता। हो सकता है कि सामूहिक गंदगी की पकड़ मुझमें थी। खैर जो भी हो.... अब हम समझते हैं कि, जब हमें आत्मसाक्षात्कार मिलता है, तब हम आध्यात्मिक शुद्धता के स्तर पर नहीं होते हैं। जिस स्तर पर हमारे पुराने सद्गुरू होते थे। इसलिए हमारे लिए साक्षात्कारी स्थिति को बनाए रखना काफी कठिन है। सौभाग्य से सहजयोग में ऐसी बहुत से विधियाँ हैं जिससे हमें सहायता मिलती है।

इतिहास का यह समय इतना नाटकीय है, कि जब आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने का समय आ गया है, तो साधक इस स्थिति में नहीं हैं कि वे इसे (साक्षात्कार) प्राप्त करें एवं इसमें स्थापित हो पायें। प.पू.श्रीमाताजी अक्सर कहती हैं कि, बहुत से पुराने संतों ने पश्चिम में फिर से अवतार लिया है। वे बहुत जल्दी साक्षात्कार प्राप्त कर लेते हैं। जबकि विकासशील देशों में जहाँ चित्त भौतिक समस्याओं से इतना भ्रष्ट हो गया है कि यह प्रक्रिया बहुत मंद पड जाती है। किन्तु अहंकार से शासित पश्चिमी मस्तिष्क में साक्षात्कार की स्थिति की स्थापना काफी धीमी है। हमने मानसिक रूप से जान लिया है कि पदार्थ से आनंद नहीं मिलता है, किन्तु इस निष्कर्ष तक पहुँचते-पहुँचते हमारा अहंकार काफी पस्त हो जाता है। अहंकार के पराजित होने के बाद हमने अधिक बांये वाला व्यवहार अपना लिया है-यौनाचार, शराब और ड्रग। इन उन्मादी अति-प्रवृत्तियों ने पश्चिमी व्यक्तित्व के स्नायुओं को तनाव ग्रस्त व अस्थिर बना दिया है। झूठे गुरूओं ने बहुत से साधकों के चक्रों को बिगाडकर इस उपद्रव को और बढ़ा दिया है। इसलिए मेरी कुण्डलिनी ब्रह्मरंध्र का भेदन करती, मुझे आत्मसाक्षात्कार प्रदान करती किन्तु मेरी जीवात्मा की शारीरिक, भावनात्मक, मानासिक व आध्यात्मिक खाांईयाँ उसे वापिस खींच लाती हैं।

भारत में लोगों को आत्मसाक्षात्कार लेने में समय लगता है क्योंकि वे भौतिकवादी तथा पश्चिमी दृष्टिकोण अपनाने लगे हैं, बिना जाने कि यह

समाज किस अंधकार की गर्त में पहुँच चुका है। किन्तु एक बार आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर लेने के पश्चात् यह उनमें स्थापित हो जाता है तथा वे तेजी से परिपक्व हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि भारतीय संस्कृति धर्म पर आधारित है, झूठे आनन्द में लिप्त होने वाली प्रवृत्ति पर नहीं है। प.पू.श्रीमाताजी दुखी मन से कहती हैं ''जिनके पास चना (इच्छा) है, उनके पास दाँत (अबोधिता) नहीं है तथा जिनके पास दाँत हैं, उनके पास चना नहीं है।''

पिछले अनुभव हमें बताते हैं कि बहुत से लोगों की कुछ समय बाद निर्विचार चेतना स्थिति समाप्त हो जाती है। नये सहजयोगी इससे काफी परेशान रहते थे। वे स्वयं को पुनः उस मानसिक वातावरण (भ्रम) में पाने लगते हैं। कुछ दिनों बाद भौतिक जगत तथा सामाजिक वातावरण का सामना करते हुए, उनकी चैतन्य लहरियाँ कमजोर हो जाती थीं। उनमें से कुछ लोगों को चैतन्य लहरियों के अनुभव पर ही संदेह होने लगता है। यदि इस प्रकार की स्थिति आती है, तो मुझे स्पष्ट करना है कि इसमें चिंता की कोई बात नहीं है, व्यक्ति को खुद ही अपनी स्थिति समझनी होगी।

यदि आपको चैतन्य लहरियों का अनुभव हुआ है, तो यह आपके हस्ताक्षर वाला प्रमाण पत्र है, इस पर किसी अन्य के हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं है। या तो आपको अनुभव हुआ है या नहीं हुआ है। यदि आपको अनुभव हुआ है तो यह आपको बताता है कि आपके सिर के उपर की झिल्ली कुण्डलिनी के द्वारा खोली गई है, साधारणतया यह सुई के नोक के बराबर खुली होती है। हम कह सकते हैं कि आदिशक्ति ने अपनी अनुकम्पा से आपकी कुण्डलिनी सहस्रार तक उठाई तथा आपको आत्मसाक्षात्कार प्रदान किया। आपके चक्रों तथा नाड़ियों की स्थिति के अनुसार, आपकी कुण्डलिनी सहस्रार पर स्थापित नहीं होगी, अपितु अपने निवास पर, रीढ़ के अंत में त्रिकोणाकार अस्थि पर वापस लौट आयेगी। इसी वजह से निर्विचार स्थिति खराब हो जाती है तथा चैतन्य लहरियाँ कमजोर हो जाती हैं।

परमात्मा के साम्राज्य में जाकर वापिस लौटने में असंतोष करने की कोई बात नहीं है। अन्यथा आप प्रति अहं (आत्मविश्वास में कमी, अपराध-

बोध, असंतोष) में चले जाएंगे तथा अहं-प्रति अहं की श्रृंखला शुरू हो जायेगी। सिर्फ यह देखने का प्रयत्न करें कि आप कहाँ फिसले। सहजयोग में चक्र शुद्धिकरण की क्रिया करके आप पुनः साक्षात्कारी स्थिति में पहुँच जाएंगे। सच तो यह है कि सहजयोग में चैतन्य लहरियाँ कम महसूस करने में और बगैर सहजयोग के रहने में बहुत अंतर है। यह अंतर साक्षात्कारी तथा गैरसाक्षात्कारी स्थिति का है।

- कुण्डलिनी के जागरण पश्चात् यह स्वतः ही आपके चक्रों तथा नाड़ियों पर कार्य करना शुरू कर देती है। कोई भी व्यक्ति इसे शरीर में मधुर सनसनाहट, रीढ़ की हड्डी में अथवा मस्तिष्क में इसकी जाग्रति के रूप में अनुभव कर सकता है।

- कुण्डलिनी नये खोले गये सहस्रार के मार्ग को जानती है अतः यह पुनः उपर चढ़ सकती है ।

- ब्रह्मरंध्र के सूक्ष्म छिद्र खुलने से कोई भी व्यक्ति सूक्ष्म दिव्य-ऊर्जा से जुड़ जाता है। यह आदिशक्ति की शीतल हवा है जो किसी के भी स्वास्थ्य (शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक) को फिर से ठीक कर सकती है।

- आत्मसाक्षात्कार के द्वारा हमें विशिष्ट दिव्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, जो अज्ञात रहती हैं। अब हमें चाहिये कि हम इस शक्ति का उपयोग अपनी कठिनाइयाँ दूर करने में तथा साक्षी भाव की साक्षात्कारी स्थिति स्थापित करने में करें।

हम कह सकते हैं कि प.पू.श्रीमाताजी की अनुकम्पा से हमारे अन्दर यह क्षमता (तथा जिम्मेदारी) है कि हम स्वयं को साक्षात्कार स्थिति में ला सकते हैं, जब भी हम चाहें। अपनी पूर्ण स्वतंत्रता में यह कार्य करना चाहिये।

आत्मसाक्षात्कार, इंसान में तुरंत ही मशीनरी को चालू कर देता है। व्यक्ति को चक्रों की स्थिति की अनुभूति उंगलियों के अगले भाग, रीढ़ या मस्तिष्क अथवा शरीर के भिन्न हिस्सों में मालूम होने लगती है। कोई भी व्यक्ति स्वयं के तथा दूसरे के चक्र ठीक कर सकता है। अपने मामले में, मैंने

अहंकार का दबाव (फूले हुए गुब्बारे के समान) बाँये कान के पिछले भाग से बढ़ कर माथे के दाहिने भाग तक महसूस किया। मैंने अपने हाथों से निकलते हुये चैतन्य के माध्यम से इस दबाव को ठीक किया। इससे यह हुआ कि अहं का दबाव घट कर प्रति अहं तक चला गया। फिर दोनो भागों में चैतन्य लहरियों के द्वारा ये संतुलित दशा में कान के बीच आ गये। अब मैं दोनों के बीच रिक्त लिम्बिक क्षेत्र का अनुभव कर सकता था। निर्विचार चेतना की स्थिति इसी स्थान से फैलती है। जैसे ही कुण्डलिनी द्वारा सिर का उपरी भाग (ब्रम्हरंध्र) खुला, पहले गर्म फिर क्रमश: ठंडी हवा निकलना शुरू हो गई। मेरे कमरे में जो अन्य सहजयोगी थे, उन्होंने भी यह अनुभव किया। इसके बाद मैंने कुण्डलिनी उठाने तथा बांधने की विधि सीखी। थोडे अभ्यास के पश्चात् मुझ जैसा कमजोर आदमी भी साक्षात्कारी स्थिति में स्थापित होने लगा। मैं अब बहुत से उदाहरणों में हूँ कि एक चोटिल सत्य साधक भी धैर्य तथा संकल्प शक्ति की बदौलत साक्षात्कारी स्थिति में स्थापित हो सकता है। यह भी गौर करने की बात है कि व्यक्ति अपनी लहरियाँ सदा के लिये खो भी सकता है।

'स्व' बहुत संवेदनशील होता है। चक्रों की पकड़ बताती है कि हमारे अस्तित्व के लिए क्या बुरा है? किन्तु अच्छे या बुरे में एक चुनने की आजादी, फिर भी हमारी है। यदि कोई आत्मसाक्षात्कार के बाद भी शराब पीता है तो नाभि में दर्द अनुभव होना शुरु हो जाता है। किन्तु फिर भी चेतावनी को अनदेखा किया जाता है तो चैतन्य की अनुभूति समाप्त हो जाती है व शराबी बनने का अवसर मिल जाता है। हमें समझना चाहिए कि साक्षात्कार की घटना हमें सुषुम्ना मार्ग, धर्म के मार्ग तक लाई है। अपनी स्थिति इस नाड़ी (सुषुम्ना) पर मजबूत करने के लिये व इड़ा तथा पिंगला लहरों की ऊर्जा से इसे बचाने के लिये हमें धर्म का सम्मान दृढ़ता से करना होगा। यदि हम इसका पालन नहीं करते तो गर्म लहरियाँ, सिर दर्द, झनझनाहट इत्यादि द्वारा चेतावनी दी जाती है कि हम गलत मार्ग पर हैं।

चैतन्य लहरियाँ इंगित करती हैं तथा धीरे-धीरे शारीरिक, भावनात्मक व मानसिक समस्याएं ठीक करती हैं। किन्तु यदि इन पर उचित ध्यान नहीं

दिया गया, आत्मसाक्षात्कार की गरिमा का अपमान किया, तो ये लहरियाँ समाप्त हो जाती हैं। मैंने अपनी चैतन्य लहरियाँ कई बार खोई एवं फिर से पाई हैं। यह संभव हुआ अपना चित्त तुच्छ बातों से अलग करने के निरंतर अभ्यास द्वारा। साक्षात्कार के बाद कुछ समय तक अनेक बार मेरा चित्त मूर्खतापूर्ण बातों की तरफ चला जाता था, किन्तु मैं स्पष्ट रूप से देख पाता था कि जो मुझे स्वाभाविक लग रहा था वह तो मेरी मूर्खता थी। अपने मन के भीतर झांकने पर मैंने पाया कि कुछ पुराने मानसिक अवरोध (U.P.I.) मेरी चापलूसी करके भ्रमित कर रहे हैं। मैं उन्हें दिन में खुली आँखो से भी देख सकता था। सहजयोग के अभ्यास द्वारा मैंने सीख लिया था कि कैसे उन्हें पहचानकर बाहर कर दिया जाए। हममें से बहुत लोग अपनी गलतियाँ देखते हैं तथा उनकी सफाई कर लेते हैं। प.पू.श्रीमाताजी अपनी मधुर भाषा में कहती हैं, ''जब तक कमरे में प्रकाश नहीं होगा तब तक तुम्हें कैसे पता चलेगा कि क्या गलत है। बिना प्रकाश के तुम कैसे सफाई कर सकते हो या उसे कैसे ठीक रख सकते हो? इसलिए पहले आत्मसाक्षात्कार लो।'' पुराने जमाने में पहले सफाई होती थी उसके बाद आत्मसाक्षात्कार। आधुनिक युग के सहजयोग में पहले आत्मसाक्षात्कार होता है इसके बाद सफाई।

दूसरे शब्दों में चित्त के प्रकाशित होने के बाद कोई भी अपने अंदर बुराइयों का कचरा देख सकता है। यदि कोई उससे छुटकारा पाना चाहता है तो वह पा सकता है। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं, ''जानवर कीचड़ में बिना परेशानी के रह सकता है। किन्तु इन्सान की चेतना इसे सहन नहीं कर सकती। वास्तव में दुर्गन्ध मनुष्य को दूर भगाती है, इसमें किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। लेकिन बुराई को लेकर इन्सान की चेतना में घृणा भाव नहीं है क्योंकि वह साक्षात्कारी स्थिति में नहीं है। आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् आप बुराई के प्रति जागरूक हो जाते हैं फिर आपका शरीर इससे घृणा करता है।''

अति मानव चेतना में बुराई का आकर्षण समाप्त हो जाता है। धीरे-धीरे पुरानी लालसायें बुरी लगने लगती हैं, मानो एक भद्दा अथवा बीभत्स आक्रमण हो। किसी भी बात पर स्वयं को अपराधी मानना, चीखना या उस

पर चिन्ता करना इत्यादि की आवश्यकता नहीं रह जाती। हम सिर्फ अपना सामना करते हैं और इससे छुटकारा पा लेते हैं। जिन वस्तुओं से हम मजबूरी में उलझे रहते थे उनसे चित्त हटा लेते हैं। साक्षात्कार के बाद भी हमारे अन्दर बहुत कचरा रहता है किन्तु यह अच्छा ही है कि हम कुछ देर बुराई का सामना करें और देखें कि यह कितनी घृणास्पद और भयानक है। जैसे-जैसे चेतना में साक्षी भाव फैलता है, बुराई हमें नुकसान नहीं पहुँचा पाती। व्यक्ति का गहन व पूर्ण परिवर्तन न ही अचानक होता है और न ही कोई साधारण बात है जो एक रात में ही हो जाये। इसकी परिपक्वता में समय लगता है। फिर भी जब मैं स्वयं को देखता हूँ तो पाता हूँ कि जो परिवर्तन श्रीमाताजी मेरे जीवन में लाई हैं उसकी गति पर आश्चर्य होता है। इसके अलावा मैं उनके काम करने एवं परिवर्तन लाने के आयाम की गहराई के लिये भी अनुग्रहित हूँ। कुण्डलिनी वह शक्ति है जो व्यक्ति के अन्दर एक भी धब्बा धोये बिना मानती नहीं है। सहजयोग सच्चे व्यक्ति के लिये जड़ से कार्य करता है; कोई भी व्यक्ति कमजोर होने के बावजूद भी अपने आत्मसाक्षात्कार में स्थापित हो सकता है।

यद्यपि आत्मसाक्षात्कार नये जीवन में जन्म देता है, फिर भी पिछली आदतें व चेतना कुछ समय तक शेष रहती हैं। उदाहरण के लिये मनुष्य का व्यक्तित्व, जो पशुजीवन से विकसित हुआ है, उसकी रचना में पशु तत्व व पिछली पशु चेतना का अंश रहता है। यदि एक मानव के बच्चे को पशुओं की संगत में छोड दिया जाये तो वह अपना मानव स्वभाव भी भूल सकता है। हर हालत में एक बच्चे को पूर्ण मनुष्य होने तक विकसित होना होता है, यद्यपि वह जन्म से मानव प्राणी कहलाता है। इसी प्रकार सिर के उपर की झिल्ली खुलते ही 'दूसरा जन्म' व साक्षात्कारी स्थिति घटित होती है, किन्तु इसमें विकसित एवं परिपक्व होना पड़ता है।

यह बहुत सीधी बात है, किन्तु कुछ लोगों की समझ में यह बात नहीं आती। वे सहजयोग के कार्यक्रम में इसलिए आते हैं कि सब कुछ तुरंत ही ठीक हो जाएगा। उन्हें फटाफट साक्षात्कार मिल जाएगा और परमात्मा के बगल में आसन मिल जायेगा। समस्त देवगण उनकी सेवा में लग जायेंगे तथा

उन्हें एक अच्छी नौकरी तथा एक समर्पित पत्नी प्रदान करेंगे।

कुछ हिप्पी अपने लम्बे बालों के कारण उनसे उसी प्रकार एकरूप होते हैं जैसे अधिकारी लोग अपने 'थ्री-पीस सूट' से हो जाते हैं। हिप्पी समझते हैं कि उनके लम्बे बाल उनकी विशिष्ट तपस्या को दर्शाते हैं तथा वे उसी अधिकार के साथ व्यवहार करते हैं। एक केथोलिक उपदेशक अपने प्रवचन से सबके आज्ञा चक्र में जलन उत्पन्न कर देता है। एक हठयोगी की दिलचस्पी आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने में नहीं है, उसके जीवन का उद्देश्य साँस रोकने में है।

सहजयोग में शुद्ध हास्य उत्पन्न होता है। बहुत से साधक जो सहजयोग में बड़े गंभीर होकर आये थे, अब अपनी हँसी रोक नहीं पा रहे हैं। हम सिर्फ आधुनिक जीवन के भद्देपन पर हँसते हैं, वर्तमान संस्कृति के सामान्य मानदण्डों पर हँसते हैं। साक्षात्कार के बाद मूर्खतापूर्ण मजाक समाप्त हो जाते हैं व हम इसे अपने आसपास विनोदी नाटक जैसे देखते हैं। पुरानी सम्बद्धतायें हमसे अलग हो जाती हैं व हमारे अन्दर धीमा-धीमा किन्तु पूर्ण परिवर्तन होता है।

सम्बन्धित चक्रों का जीवंत संबंध वेदों एवं ज्योतिष में वर्णित मूल पंच तत्वों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश के साथ होता है। ये मूल तत्व सृष्टि के दायें भाग के चैतन्य को प्रकट करते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि आदि के दिव्यक तत्व के रूप में स्वयं को प्रकट करते हैं। साक्षात्कार के बाद सूक्ष्म सिद्धांत 'ॐ' के द्वारा कोई भी उनके अन्दर अपने आपको पहचान सकता है। इस प्रकार तत्वों के साथ हमारे संबंध परिवर्तित हो जाते हैं।

हम पृथ्वी तत्व (मूलाधार चक्र, नाभि तथा स्वाधिष्ठान का भाग) का उदाहरण लेते हैं, जो अपने आपको पदार्थ में प्रकट करता है। हमारी सभी आदतें, आराम, व्यवहार, संबंध, पदार्थ की हम पर पकड़ प्रकट करता है। साक्षात्कार के बाद प्राथमिकताएं बदलना शुरू हो जाती हैं।

एक बार चेतना के आनंद फल का स्वाद चखने के बाद, पुरानी आदतें जो चेतना के लिए नुकसानदायक हैं, उन्हें छोड़ना आश्चर्यजनक रूप से बहुत

सरल हो जाता है। दूसरे आनंद, तुलना में काफी बेस्वाद लगते हैं व अपने आप छूट जाते हैं। इच्छाएँ व संतोष की खोज, सुषुम्ना, एक पेड़ जिसमें बहुत से स्वादिष्ट फल हैं, पर चलते हैं। सबसे बड़ा स्वाद इच्छा न होना है। पदार्थ पर अधिकार की भावना समाप्त हो जाती है, पुराण कथा दूर हो जाती हैं। हम जो भी आनंद लेते हैं, वह फकीरी आंनद के लिए है, न कि मालिक बनकर अहंकार की संतुष्टि के लिये। धन का सामजिक दिखावा, भौतिक संपत्ति (पहनावा, कार, मकान, पुरावस्तु आदि) की प्रदर्शनी समझ में आती है कि ये मनोरंजक हैं, किन्तु ये सब खाली सर्कस हैं। अब हम थोड़े समय का संतोष, पदार्थ इकठ्ठा करने पर सुरक्षा भावना नहीं चाहते हैं। भौतिकवाद का स्वाद समाप्त हो जाता है। भौतिकवादी का मस्तिष्क, हाट-बाजार, जंकशॉप जिसमें फालतू सामान भरा है, चिंताओं व इच्छाओं से भरा होता है। आत्मसाक्षात्कार इसे झाडू लगाकर साफ कर देता है और जब मस्तिष्क साफ हो जाता है, आत्मा की स्वतंत्रता का स्वाद मिलता है। आर्थिक तथा राजनैतिक आत्मनिर्भरता में वह आनंद नहीं आ सकता है जो वास्तविक रूप से स्वतंत्र होने में, अपने आप में स्वतंत्र होने में आता है। आध्यात्मिक स्वतंत्रता परम सत्य है, मन के उपर के सभी बोझ व चिंताएं घुल जाती हैं। वातावरण का हम पर कोई अधिकार नहीं रहता, हम अपने जीवन के मालिक हो जाते हैं।

प्राथमिकताएं बदलने से, निर्णय लेने का लक्ष्य बदल जाता है। स्वाभाविक रूप से शुद्ध सौंदर्य-ललित कला की भावना विकसित होती है, अर्थात कला व लोगों के प्रति भी हम पवित्र, उचित सौंदर्य जो बाहर देखते हैं, वैसा हम अंदर से भी महसूस करते हैं। इसके विपरीत हम अश्लीलता या अभद्रता सहन नहीं कर सकते हैं, जो कि समकालीन कला को दूषित करते हैं। यदि कोई व्यक्ति अंदर से गंदा व बदसूरत है, मेकअप व बनावटी व्यवहार उसे नहीं छिपा सकते हैं। सहज में ललित कला, चैतन्य लहरियों पर निर्भर करती है।

बेजान वस्तुएं चैतन्य लहरियाँ नहीं विकसित करती हैं, किन्तु यदि उन्हें इस प्रकार सजा दिया जाता है, जिससे सुन्दरता उत्पन्न होती है तो चैतन्य

आरंभ हो जाता है। तब हम चेतना में इस सुन्दरता को, आनंद के रूप में अनुभव करते हैं। इसी प्रकार व्यवहार में भी सुन्दरता का आनंद लिया जाता है। हम अपने स्वयं के प्रभाव व गुणों का आनंद लेते हैं व दूसरों के भी- अबोधिता, उदारता, गौरव, लज्जा व मित्रता का आनंद लेते हैं। मैं हिप्पी हूँ, मेनेजर हूँ, मार्क्सवादी हूँ, आदि गलत पहचान साँप की कांचली के समान पीछे छूट जाती हैं। जिस प्रकार जंक-शॉप साफ हो गई है, उसी प्रकार ये गलत पहचानें अब चित्त में नहीं आया करती। चित्त, कुण्डलिनी चक्र व उचित सुन्दरता में ही बहता है। मानवीय संबंध अधिक स्वाभाविक व आनंददायक हो जाते हैं, सामाजिक जीवन उत्तमता के लिए परिवर्तित हो जाता है। अंत में हम खोज लेते हैं कि एक दूसरे के साथ पूर्ण अबोधिता की सुंदरता के आनंद का अर्थ क्या होता है।

पूर्णता में अच्छी चैतन्य लहरें निकलती हैं, हम इन्हें ठंडी हवा के रूप में उंगलियों में प्रवेश करते हुए, हाथ की हथेली में बहते हुए चैतन्य के रूप में अनुभव करते हैं। अपूर्ण लहरें हाथों में अलग-अलग अनुभूति देती हैं, उंगलियों में चुभन या सीमित क्षेत्र के स्पंदन या हल्की सीमित क्षेत्र के स्पंदन या लहरे आती हैं। गलत लहरें या नकारात्मक लहरें हाथों में या शरीर में, जलन, दबाव, भारीपन पैदा करती हैं, सिर में दर्द व कम्पन, मस्तिष्क में अवरोधी तत्वों (U.P.I.) की उपस्थिति दर्शाती हैं। चैतन्य लहरों से ही, किसी की अच्छी-बुरी स्थिति का पता लगता है ।

हम अपने शरीर के दिखावे व चुस्ती पर अधिक ध्यान नहीं देते हैं, किन्तु हम इसका बहुत सम्मान करते हैं। यह सात देवताओं का मंदिर व आत्मा का भौतिक आवरण है। यह वह वाहन है जिसके द्वारा दिव्य चेतना अपनी रचना का निरीक्षण करती है। हम इसे साफ सुथरा व स्वस्थ रखते हैं।

हम अपना व दूसरों का इलाज चैतन्य लहरों के द्वारा कर सकते हैं। उदाहरण के लिये, मैंने अपने खराब लीवर का इलाज, अपने हाथ द्वारा व प.पू.श्रीमाताजी के फोटो से चैतन्य लेकर किया। मेरे शरीर की स्थिति इतनी सुधर ही गई है कि मुझे यह नया शरीर अनुभव होता है, कोई तकलीफ नहीं,

कोई डॉक्टर नहीं।

प्रत्येक साक्षात्कारी व्यक्ति अपनी शक्ति को विकसित करके, लोगों की विभिन्न बीमारियों का इलाज कर सकता है। गेविन ब्राउन अपने लेख 'स्वास्थ्य व सहजयोग' में लिखते हैं कैन्सर, लकवा, सभी प्रकार की शारीरिक बीमारियां सहजयोग द्वारा ठीक हो गई हैं। ऐसा प.पू.श्रीमाताजी द्वारा व्यक्तिगत रूप से ही नहीं, बल्कि उनकी कृपा से साक्षात्कार प्राप्त सहजयोगी शिष्यों द्वारा कई बार किया गया है। प.पू.श्रीमाताजी ने अनेक बार कहा है कि केवल सहजयोग द्वारा ही कैन्सर का इलाज किया जा सकता है।

इलाज का तरीका चैतन्य लहरियों द्वारा होता है। मैंने बहुत से मामले देखे हैं, जिनमें इलाज किया जा चुका है। कुछ मरीज जिनका जीवित रहना डाक्टर द्वारा असंभव बताया गया था, सहजयोग द्वारा ठीक हो गये हैं। किन्तु यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वे यदि अपना आचरण 'सहज धर्म' के विपरीत रखते हैं तो उन्हें पुरानी बीमारियाँ फिर से हो सकती है। उन्हें अपने आहार व आचरण पर ध्यान रखना होगा, कुण्डलिनी उस व्यक्ति को क्यों ठीक करेगी जो 'आत्मसाक्षात्कार' में रुचि नहीं रखता है? कुण्डलिनी शरीर को इसलिए ठीक करती है, क्योंकि यह वह मंदिर है जहाँ ईश्वर प्रतिष्ठापित किये जा रहे हैं। इसलिए सहजयोगी, इलाज करने के लिए, इलाज में अधिक रुचि नहीं लेते हैं, इलाज आत्मसाक्षात्कार का सिर्फ एक उप-उत्पाद होना चाहिए।

चैतन्य लहरियों का आश्चर्यजनक गुण यह है कि वे जीवित पदार्थों को प्रभावित करती हैं। पहली बार हम प्रकृति को कुछ दे सकते हैं। हमारी पीढ़ी के इतिहास में पृथ्वी माता का शोषण व प्रदूषण हर प्रकार से किया गया हैं। किन्तु अब हम उसे (पृथ्वी को) चैतन्य दे सकते हैं। महाराष्ट्र में राहुरी कृषि विश्व विद्यालय के एम.बी.धुमाल व प्रो.एम.वी.चौहान ने चैतन्य जल का प्रयोग सिंचाई में किया है। चैतन्य सिंचित खेत ने, गैर चैतन्य वाले खेत से काफी अधिक उपज दी थी।

पदार्थ से हमारा परिवर्तित व्यवहार इतना सूक्ष्म व गहरा है कि

अबोधिता, पदार्थ का सत्व हमारे अंदर अंकुरित होने लगता है।

इसी प्रकार हम अपने भौतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में बेहतर हैं। हमें लगता है देवदूत हमारी सहायता कर रहे हैं। मुझे अल्जीरिया के मेरे मित्र का मामला याद है। महीनों तक उसने लंदन के पोस्ट ग्रेज्यूएट स्कूल में प्रवेश के लिए प्रयत्न किया। उसकी अच्छी योग्यता के बावजूद भी उसे सफलता नहीं मिली। अल्जीरिया वापस लौटने के कुछ दिन पहले, विदाई के लिए वह प.पू.श्रीमाताजी से मिला। उन्होंने पूछा -

- 'द्जमेल, तुम कब जा रहे हो?'

- 'रविवार को।'

- 'तुम मंगलवार को क्यों नहीं जाते?'

- 'ठीक है माँ।'

सोमवार को वह लंदन पॉलिटेक्निक में गया। उस स्कूल के रजिस्ट्रार ने उससे कहा,' तुम्हारा एडमिशन हो गया है, तुम कब अपना कोर्स शुरू करना चाहते हो?'

पदार्थ जीवन व मृत्यु का निर्धारण करते हैं। मृत्यु एक प्रकार से पदार्थ की परिवर्तित स्थिति है। साक्षात्कार के बाद हम मृत्यु को बेहतर ढ़ंग से समझ सकते हैं। हम जानते हैं कि, ''कोई मरता नहीं है'' और मृतक क्षेत्र को, जीवित क्षेत्र में सम्मिलित नहीं करना चाहिए। इसलिए हम लोगों को मानसिक अवरोधक (UPIs) से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न करते हैं। हमने यह खोजा है कि कुछ स्थान व लोग बहुत अलग प्रकार के होते हैं, तथा हमें इनके खराब चैतन्य से निपटना सीखना चाहिए। यह अभ्यास आसान नहीं है, किन्तु हमें यह अनुभव करना चाहिए कि ये खराब चैतन्य लहरियाँ किसी भी प्रकार से आ सकती हैं। चाहे हम उन्हें सतर्कता से अनुभव करें या नहीं। आत्मसाक्षात्कार के पहले खराब चैतन्य से हमें कमजोरी, शारीरिक अस्वस्थता व घबराहट अनुभव होता था। अनुभव के आधार पर हम उसके लिये कुछ कर सकते हैं। किसी चक्र में जलन का अनुभव होने पर हम, पहले

से ही उस चक्र पर खराब चैतन्य के विरुद्ध, ताकतवर प्रतिकारक चैतन्य लहरियों का उपयोग करते हैं। वातावरण का चैतन्य सुधारने से भी हम अच्छा अनुभव कर सकते हैं। हमें, अपने भावनात्मक रूप से निकट के लोगों की चैतन्य लहरियाँ सुधारने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे हम और अधिक 'पकड़' में आ सकते हैं। सहजयोग के अभ्यास के द्वारा इस विषय में अधिक जानकारी होने पर ही, हम उनकी बेहतर सहायता कर सकते हैं।

एक बार साक्षात्कार प्राप्त करने के बाद, चक्र व तत्वों (पंच-तत्व) से जीवंत संबंध होने के कारण, प्रकृति की शक्तियाँ हमारी मित्र बन जाती हैं। उदाहरण के लिये, पृथ्वी पर बैठकर और पृथ्वी की ओर देखने से, चित्त की समस्या जो की मूलाधार चक्र से प्रभावित है, साफ हो जाती है।

- समुद्र के जल या नदी के जल में पैर डुबाने (जलक्रिया) से निचले तीन चक्र साफ होते हैं।

प.पू.श्रीमाताजी के चित्र को लौ के द्वारा देखने से मणिपुर व आज्ञा चक्र साफ होते हैं।

- आकाश (वायु) को देखने से विशुद्धि व आज्ञा चक्र साफ होते हैं।

ये बहुत साधारण से तथा प्रारंभिक उपाय हैं, जो पर्यावरण की ऊर्जा से सहायता लेने में, हमारी रचनात्मकता तीव्र करते हैं। इसका सिद्धांत ये है कि आपको छोड़ने के लिये, नकारात्मक चैतन्य को किसी अन्य माध्यम या दरवाजे की आवश्यकता होती है। छोटा मानसिक अवरोध (U.P.I.) आपको छोड़ने वाला नहीं है, यदि उसे मोटर साइकल न दी जाए। यह वाहन कोई तत्व या कीड़ा हो सकता है।

चैतन्य लहरियाँ व पदार्थ के बीच असंख्य प्रकार के हेरफेर संयोग हो सकते हैं। मुझे आशा है सहजयोगी जो मुझ से अधिक योग्य हैं वे सहजयोग एवं भौतिक, जैव-रसायन तथा चिकित्सा विज्ञान के बीच आवश्यक सम्बन्ध खोज लेंगे। हमारे लिये यह अनुभव करना पर्याप्त है कि सहजयोग ने मनुष्य का विस्तृत विज्ञान (भौतिक, आध्यात्मिक, मानसिक) खोला है,

जहाँ कोई भी व्यक्ति इसके उपायों द्वारा प्रतिनिधि डॉक्टर हो सकता है, यह अनुभव करते हुए एक ब्रह्मांड के पर्यावरण के हम एक तत्व हैं, जिस में विवेक से अब हम अपना संगीत बजा सकते हैं, यह अनुभव करते हुए यह हमारा 'यहाँ और अभी' एक पर्यावरण है जहाँ हम नृत्य शुरू कर सकते हैं।

हमने यह खोज लिया है कि हमारे दूसरे जन्म के बाद चैतन्य हमारी दूसरी ऑक्सीजन है। हम चैतन्य लहरें सूर्य (जो ठंडी हैं), चंद्रमा, समुद्र, आकाश, पेड़, कुछ मंदिर ,चर्च आदि से अनुभव कर सकते हैं, किन्तु सबसे अधिक चैतन्य प.पू.श्रीमाताजी निर्मला देवी या उनके चित्र से मिलता है।

सबसे सरल ध्यान में, प.पू.श्रीमाताजी के फोटो के सामने, दोनों हाथ घुटने पर फैलाकर जिसमें हाथ की हथेलियाँ उपर हो, प्रतिदिन कुछ समय बैठना है। सूर्योदय के पहले का समय अधिक अच्छा होता है। ध्यान के द्वारा मैंने सीखा कि कैसे, अपने मस्तिष्क के घोड़े की पीठ पर सवारी करना है? मन पर निगरानी रखने की क्षमता शुरू से प्रमाणित हो गई, जब मैं अपने अहंकार को देख सकता व उस पर हँस सकता था । ध्यान का सबसे बड़ा पुरस्कार, आनन्दयुक्त आंतरिक शांति विकसित कर सकना है।

गहरे ध्यान में, ध्यान करने वाला व ध्यान की वस्तु एक हो जाते हैं। इसलिए सात चक्रों के संबंधित देवता का ध्यान करने में हम अपने आप में संबंधित देवता के गुणों का विस्तार कर रहे हैं। मूलाधार चक्र पर ध्यान करने हम भगवान गणेश की पवित्रता बन जाते हैं। जब हमारा चित्त स्वाधिष्ठान चक्र में श्री ब्रम्हदेव पर जाता है, हम क्रमशः अनुभव करते हैं एक ब्रह्मांड में हर चीज़ धड़क रही, फड़क रही है व व्यवस्था, सुस्वरता तथा सुन्दरता के नये कोण बना रही है और हम भी इसका एक अंग हैं। नाभि चक्र के स्तर पर, हम सूक्ष्म से सूक्ष्मतम में प्रवेश करते हैं, हम हर व्यक्ति व वस्तु से, सूक्ष्म धर्म अनुभव करते हैं और हम अनुभव करते हैं कि हम भगवान विष्णु के उपकरण हैं। हम अपने आपको उनकी अच्छाई व न्याय का एक भाग मानते हैं। हम शब्दों व कर्मों के द्वारा दूसरों को उनके धर्मों में मदद करते हैं। आदिगुरू दत्तात्रेय के चरणों में चित्त, सत्य के शाही अधिकार से प्रकाशित हो जाता है।

अनहत चक्र के खिलने से हम सर्वव्यापी सुरक्षा व प्रेम के आनंद में पिघल जाते हैं। विशुद्धि चक्र में ईश्वर की विशालता, महानता का अनुभव होता है। साधक को सामूहिक चैतन्य की गहराई का आशीर्वाद मिलता है। हम किसी व्यक्ति को, अपना चित्त उस पर रखकर, जान सकते हैं, हमारी उंगलियाँ और चक्र, उस व्यक्ति की स्थिति की सच्चाई बता देंगे।

जब हम आज्ञा चक्र पर पहुँचते हैं, हमारी आँखें बंद हो जाती हैं। हम ओंकार को देख सकते हैं, किन्तु अंत में शांति, प्रकाश के समान दिखाई देती है। हम सुरक्षित व प्रकाशित अनुभव करते हैं, अज्ञान के अंधकार को बिना संकोच या भय के देखते हैं। बिना भूख या इच्छा के पूर्णतया नये जन्म में स्वयं अनुभव करते हैं।

पावन माँ सत्य, अस्तित्व व आनन्द का सत्व हैं। जब हम अपना चित्त उन पर (श्री माताजी) रखते हैं व आत्मा पर रखते हैं, दोनों का अनुभव एक समान है। जब हम प.पू.श्रीमाताजी का ध्यान सात चक्रों पर करते हैं, हमें अनुभव होता है कि, हम सातों चक्र के देवताओं के साथ हैं तथा संबंधित देवता श्रीमाताजी के साथ एक हैं। इस पहचान पर ध्यान करने से ध्यान की बेहतर गहरी अवस्था, 'निर्विकल्प समाधि' खुलती है। जब हम प.पू.श्रीमाताजी की कुण्डलिनी पर ध्यान का प्रयत्न करते हैं, हम सागर में बूँद के समान खो जाते हैं तथा हम पूर्णतया शांत हो जाते हैं। आनंद वर्षा की बूँदों के समान बरसने लगता है। वास्तव में आदिशक्ति को अचिन्त्य-रूपा अर्थात ''जिसके विषय में कोई विचार नहीं कर सकता है'' कहा गया है। हे गौरव के ईश्वर, प्रेम के ईश्वर! आनंद के ईश्वर! आपने अपने बच्चों के लिये कितना अच्छा भोज तैयार किया है।

मंत्र का उच्चारण करने से चैतन्य का प्रवाह बढ़ जाता है। संस्कृत में मंत्र का अर्थ होता है, ध्यान करना, मंत्र वह है जो ध्यान में कहा जाता है। यह चैतन्य की विशेष ध्वनि, संदेश व अर्थ में शब्दीकरण है। जब कोई साक्षात्कारी आत्मा, विशेष मंत्र कहती है, वह आध्यात्मिक ऊर्जा का, उस विशेष कार्य के लिये, जिससे मंत्र संबंधित है, ध्यान करती है। हम हर संभव

समर्पण व ध्यान से सातों चक्रों के देवताओं से, मूलाधार से आरंभ करके सहस्रार तक, प्रार्थना करते हैं। हम इस प्रकार कुण्डलिनी के मार्ग पर उपर उठते हैं, एक चक्र से दूसरे चक्र पर अपना चित्त उस देवता का नाम लेते हुए, ऊपर चढ़ाते हैं। मंत्र उस महल (चक्र) के द्वार की चाबी है व उसके राजा (देवता) को प्रणाम है। सहजयोग ने मंत्रों का पूरा विज्ञान विकसित किया है। ये काफी शक्तिशाली है व कुण्डलिनी के मार्ग की बाधा को दूर कर देते हैं, क्योंकि वे देवता को जागृत करके प्रसन्न करते हैं, जिससे हमारा मनो शरीर यंत्र शुद्ध होता है।

बिना पूरे चित्त के, ध्यान प्रभावशाली नहीं होता है। साक्षात्कार के पहले यदि हमारा चित्त हमारे नियंत्रण में नहीं है, फूटे बर्तन के समान हर बाहरी वस्तु में चला जाता है, तथा हमें अपने से दूर रखता है। हममें से बहुत, ऊर्जा के व्यर्थ होने को जानते थे, किन्तु वे नहीं जानते थे, इसे कैसे रोकें?

साक्षात्कार के बाद हमारे चित्त में गहराई आती है। हमारी उन्नति निर्भर करती है ध्यान में दिये समय, धर्म में दृढ़ता व सबसे अधिक सहजयोग में श्रद्धा रखने से। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं, 'श्रद्धा अंधविश्वास नहीं है, किन्तु प्रमाणित व प्रकाशित विश्वास है। श्रद्धा के साथ आपको विश्वास करना चाहिए।'

इस तरह बहुत से सहजयोगियों ने अपने आप काफी आत्मनियंत्रण विकसित कर लिया है। समर्पित चित्त-शक्ति की तुलना, दिखाई न देने वाली लेज़र-किरणपुँज से की जा सकती है, जिसका लक्ष्य शरीर के किसी भी भाग में करके, बुरे चैतन्य का सफाया किया जा सकता है। मान लो आप प.पू.श्री माताजी के चित्र के सामने ध्यान करते हैं और आपको दाहिने हाथ की छोटी उंगली में जलन अनुभव होती है, जिसका संबंध दाहिने हृदय चक्र से होता है। आप अपना चित्त दाहिने सीने पर करिये, कुछ सेकन्ड में ही जलन गायब हो जाती है। यह बताती है कि आपकी ऊर्जा ने बुरे चैतन्य, चित्त अवरोधक (U.P.I.) आदि का सफाया कर दिया है।

उदाहरण के लिए, हम प.पू.श्री माताजी के फोटो के सामने हैं व हमें दाहिने अंगूठे में जलन होती है, यह अनुभूति बताती है कि पिंगला नाड़ी (दाईं

नाड़ी) में, स्वाधिष्ठान चक्र के दायें भाग में, कुछ रुकावट है। यह समस्या पिंगला नाड़ी के अधिक कार्य करने से-अधिक कार्य दबाव, अधिक शारीरिक कार्य, अधिक मानसिक कार्य से हो सकती है। यदि दाहिना अंगूठा फड़कता है, इसका अर्थ है हम अतिचेतन तत्व से ग्रसित हैं (ऐसा सहज ध्यान शरीर या मन को नियंत्रित करने के पिछले प्रयत्न का कारण हो सकता है)। तब हम अपना दाहिना हाथ प.पू.माताजी के फोटो की तरफ व बायाँ हाथ दाहिने स्वाधिष्ठान चक्र पर रखते हैं, इस प्रकार हम ऊर्जा को उस स्थान पर ले जाते हैं, जहाँ उसकी आवश्यकता है। कुछ समय के बाद जलन गायब हो जाती है। अनुभूति यदि सीधे शरीर में होती है तो निम्न प्रकार हम आगे बढ़ते हैं :-

- अपने हाथों की हथेलियों को, सुषुम्ना नाड़ी के सामने करके, हम अपनी कुण्डलिनी को ऊपर की ओर गति देते हुए कुण्डलिनी ऊपर चढ़ा सकते हैं। इसे तीन बार, (प्रत्येक नाड़ी के लिए एक बार,) किया जाता है। यह प.पू.श्रीमाताजी के या उनके फोटोग्राफ के सामने अधिक अच्छे से होता है।

- आप नाड़ियों व मन को संतुलित कर सकते हैं। यदि मैं बहुत अधिक उत्तेजित, थका हुआ या अधिक सक्रिय अनुभव करता हूँ तो इसका अर्थ है मेरी पिंगला नाड़ी की महासरस्वती ऊर्जा, अधिक कार्य करने से कम हो गई है। तो संतुलन के लिये मैं अपने दोहने हाथ से, इड़ा नाड़ी की महाकाली ऊर्जा, रीढ़ की बाई तरफ से, हाथ की गति से सहस्रार तक उठाता हूँ और इसी दाहिने हाथ द्वारा ही रीढ़ के दाहिनी तरफ पिंगला नाड़ी में उर्जा डालता हूँ; हाथ की उंगलियाँ शरीर की तरफ रहती हैं, वे ऊर्जा के प्रसारक की तरह कार्य करती हैं। दाहिना हाथ ही इस कार्य के लिये उपयोग किया जाता है, क्योंकि यह कार्यशक्ति दर्शाता है। इस प्रकार शरीर के बाईं ओर की इड़ा नाड़ी से, ऊर्जा लेकर पिंगला नाड़ी को दाईं ओर दिया जाता है। इसी प्रकार यदि कोई अवसाद में या उदासीन अनुभव करता है, तो उसे पिंगला नाड़ी से ऊर्जा लेकर इड़ा नाड़ी में दे सकते हैं। हम वास्तव में अनुभव करते हैं कि, हम अपने आपको संतुलन में, सन्तुलित बिन्दु तक ला रहे हैं।

जब चक्र अपने सही आकार में होते हैं, तो वे ऊर्जा के चक्रवाती पहिये

के समान होते हैं, जो क्षैतिज सतह पर, शरीर में अपने स्थान पर, घड़ी की दिशा में घूमते हैं तथा अपने देवता की चैतन्य लहरियों को विकसित करते हैं। कुण्डलिनी उनमें तेजी के साथ ऊर्जा प्रवाहित करती है । जब हम चक्र में तनाव या दर्द अनुभव करते हैं, हम चक्र की गति को बढ़ा सकते हैं। जहाँ अड़चन अनुभव होती है, अपने दाहिने हाथ से शरीर के उस हिस्से (चक्र) में, सामने से घड़ी की दिशा में व पीछे से घड़ी के विपरीत दिशा में, गोल-गोल हाथ घुमाते हैं। हम अनुभव करते हैं कि चक्र साफ हो जाते हैं। यदि अड़चन, मानसिक अवरोधक (UPI's) है, तो इसे निकालने के लिए दाहिनी हथेली से इसे नाड़ी द्वारा ऊपर उठा कर या नीचे करके दूसरे चक्र में ले जाते हैं (यह कई बार किया जाता है) तथा इसे सहस्रार द्वारा बाहर निकाल देते हैं।

हाथ के इन संकेतों का प्रभाव जो चैतन्य लहरियाँ उत्पन्न करता है, वह चेतना की ऊर्जा स्तर पर निर्भर है, जो हम हाथों के द्वारा प्रवाहित करते हैं। यदि बहुत सी शारीरिक और मानसिक कमियाँ हैं तो प्रक्रिया में समय लगता है व चैतन्य कमजोर रहता है। चैतन्य की शक्ति, कुण्डलिनी की सहस्रार पर शक्ति पर निर्भर करती हैं, तथा सहस्त्रार पर चढ़ने से पहले जिन चक्रों पर रुकावटें होती हैं, वहाँ ठहरती है और सुधार करती हैं किन्तु हमारी ऊर्जा की स्थिति चाहे जो हो, संकेतों का प्रभाव होता है, चाहे हमें अनुभव न हो। हम इस कथन का सत्य तब अनुभव करते हैं जब हमारी बोधशक्ति बढ़ती है।

मन हमारा घोड़ा है। यदि इसे हरी घास के मैदान या जंगल में घूमने दिया गया तो यह हमें वहाँ ले जाएगा। यदि यह जानता है कि हम वास्तव में मुक्ति चाहते हैं, तब यह हमारा वाहन बन जाता है और अंत में जब हम अपने उत्थान के द्वार (आज्ञा चक्र) पर पहुँचते हैं, यह द्वार पर ठहरता है व हमें 'निर्विचार चेतना' में छोड़ देता है।

मनुष्य में जो भी ध्यान की शक्ति है, उससे प्रत्येक को आध्यात्मिक रूप से स्वयं को जानने में सहायता मिलती है। किन्तु इसे कैसे किया जाए? बुद्ध ने कहा है कि जब मन पर नियंत्रण करने का प्रयत्न किया जाए, यह उस मछली के समान उछल-कूद करता है, जिसे पानी से निकाल लिया गया हो।

शास्त्रों व पुराणों ने इसकी तुलना उस उन्मादी बन्दर से की है जिसे मधुमक्खियों ने डंक मार दिया हो। जितने भी अभ्यास मन पर नियंत्रण किये हुए हैं, वे अहंकार के प्रयत्नों का समर्थन करते हैं न कि आत्मा के प्रयत्न के।

विचार, भूत (प्रति-अहंकार) और भविष्य (अहंकार) से वर्तमान (चेतना-मन) में आते हैं। वर्तमान में स्थान (विलम्ब) बहुत कम है, जिसमें केवल मानसिक शांति ही मिलती है। भाषाओं व धारणाओं के विकास से, आधुनिक मनुष्य का मस्तिष्क स्थाई रुप से विचारों की तरंगों से भरा रहता है। जब कोई विचार अपने अंत में पहुँचता है, चित्त उन विचारों में से एक पर कूद जाता है जो जागृत मस्तिष्क की सीमाओं पर कतार लगाए हुए हैं और जैसे ही पिछला विचार समाप्त होता है, दूसरा विचार तुरंत हमारे चित्त पर लपकता है।

कुण्डलिनी के लिम्बिक क्षेत्र में (सहस्रार) प्रवेश के साथ ही, दो विचारों के बीच का अंतराल काफी बढ़ जाता है। चित्त, विचारों के बहाव की लहरों के ऊपर उसी प्रकार निकल आता है, जिस प्रकार कमल कीचड़ के पानी से ऊपर, ताजे खुले वातावरण में, (लिम्बिक क्षेत्र) में निकलता है। चित्त का उर्ध्व उत्थान आपको सदा रहने वाले-वर्तमान में ले आता है। निः संदेह, आत्मसाक्षात्कार के बाद विचारों के समुद्र की लहरें फिर से बढ़ सकती हैं, किन्तु यदि हम प्रथम आत्मसाक्षात्कार के समय के विलम्ब (निर्विचारिता) को याद रखें तो, निर्विचार चेतना का अंतराल फिर से उत्पन्न करना संभव है। यह अंतराल शून्य, स्वाभाविक रूप से प.पू.श्री माताजी की उपस्थिति से बढ़ता है, उनका दर्शन (शारीरिक उपस्थिति) मानसिक हलचल को शांत कर देता है।

निर्विचार चेतना धीरे-धीरे सहजयोगी में स्थापित हो जाती है। इस बीच अपने मन को देखना, एक अच्छा प्रशिक्षण है। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं, ''विचार के आरंभ में ही सावधान हो जाओ, क्योंकि तुम इसका अंत कभी नहीं पकड़ पाओगे।'' हमारे मन के द्वारा बह रही विचार तरंगो तथा छवियों को, इनमें लिप्त हुये बिना, इनमें बिना उलझे सिर्फ इन्हें देखने की स्थिति में हमें होना चाहिए। यह सहजयोग से अधिक सरल हो जाता है क्योंकि इसमें

हम सुषुम्ना आयाम में विश्राम कर सकते हैं जिसे कुण्डलिनी ने हमारे लिये बनाया है। यह अहंकार व प्रति अहंकार द्वारा भेजी हुई मानसिक तरंगों के लहराते समुद्र में खड़े होने का स्थान, स्थिर नाव है। जब हम एक बार साक्षात्कारी हो जाते हैं, हम फिर से नाव में बैठ जाते हैं व निर्विचार चेतना में आ जाते हैं। कुछ समय के बाद जब विचारों की तरंगे स्थिर हो जाती हैं, हम प्रतिबिम्ब या छोटे दृश्य देख सकते हैं-वे अवचेतन या अतिचेतन से उत्पन्न होते हैं, कभी-कभी वे बड़े आनंददायी, आकर्षक या दैवी दिखाई देते हैं। वे हमारी निर्विचारिता के साक्षी भाव की परीक्षा लेते हैं। हमें उन्हें नकारना चाहिये व उनमें शामिल होने से इंकार करना चाहिये। क्योंकि हमारा उद्देश्य है 'स्व' व इसकी सत्यता। 'त्वमेकम् शरेण्यम् त्वमेकम् वरेण्यम' अर्थात् आपकी ही कामना होनी है व आपकी ही शरण में होना है।

मानसिक व भावनात्मक लहरों को साक्षी भाव से देखने के अभ्यास से, न केवल हम महत्वपूर्ण साक्षीभाव विकसित करते हैं, बल्कि लोगों के मन व उनकी प्रेरणाओं की सूक्ष्म व गहरी समझ विकसित कर लेते हैं व इन सबसे ऊपर हम सामूहिक चेतना में लीन हो सकते हैं।

सामूहिक चेतना में हमें एक दूसरे का बोध होता है, भले ही हमारे बीच हजारों मील की दूरी हो। दूसरे सहजयोगी का सिर्फ एक पत्र पाकर ही हम उसकी ऊर्जा उठा सकते हैं। प.पू.श्री माताजी ने बहुत बार कहा है, 'ईश्वर का दूरसंचार विभाग बड़ा शक्तिशाली है।' सामूहिक ध्यान, ईश्वर के राज्य की ऊर्जा बांटने का पहला अनुभव है। ईश्वर का एक बड़ा आशीर्वाद जो हमें प्राप्त है, वह है एक दूसरे सहजयोगियों से मेल-जोल व उनकी संगति का आनंन्द व समर्पण। आत्मसाक्षात्कारी लोगों का समाज (बुद्ध का संघ) एक दूसरे की व्यक्तिगत उन्नति में निश्चित ही सहायता करता है। सहजयोग में अंकों के 'दिव्य गणित' का निश्चित महत्व है, सात या अधिक सहजयोगी अधिक ऊर्जा का संचार कर सकते हैं। सामान्य रूप से साक्षात्कारी लोगों की संख्या में वृद्धि से, प्रत्येक व्यक्ति के चेतना की शक्ति बढ़ रही है। यह ब्रह्माण्डीय सूक्ष्म व स्वचालित प्रक्रिया है।

यदि मेरे विशुद्धि चक्र में रुकावट है, तो आप अपने गले में अनुभव करेंगे। यदि आप भावनात्मक रूप से अशांत है, तो हमें आपका अनह्त चक्र शांत करना होगा। सहजयोगियों की सामूहिकता, पैगम्बर मोहम्मद के शब्दों के अनुकूल है -

''सभी मुसलमान एक व्यक्ति के समान हैं, जिस प्रकार एक व्यक्ति के सिर में दर्द होता है तो पूरा शरीर उसे अनुभव करता है, यदि उसकी आँख शिकायत करती है तो पूरा शरीर शिकायत करता है।''

इस चरण में हम समकालीन वैज्ञानिकों की खोज तथा ईसा मसीह की शिक्षाओं में, जिन्होंने आदिशक्ति के आगमन की घोषणा की थी, एक सूक्ष्म तथा समग्र परिप्रेक्ष्य ला सकते हैं।

'सुपर नेचर' पुस्तक के अंतिम अध्याय में, जीव वैज्ञानिक लायल वाट्सन पैगम्बर के समान कहता है :

''हम लोग लार्वा (कीट-डिम्ब) हैं, जो पृथ्वी के संसाधनों का बिना सोचे समझे अपने हिसाब से कैटर-पिलर (लार्वा का अगला रूप) जैसे उपभोग कर रहे हैं, किन्तु मुझे विश्वास है कि पूर्ण कीट (Imago) ने अपने अंदर हलचल शुरू कर दी है। सही समय पर यह प्रकट होगा, किसी सुपर कम्प्यूटर के समान नहीं, बल्कि एक जीवित प्राणी के रूप में जो परा प्रकृति का रूप होगा व प्रोद्योगिकी को बच्चों के खिलौनों के रूप में देखेगा।

उपरोक्त पंक्तियाँ 'सामूहिक प्राणी' के महान अवतरण की अपेक्षा दर्शा रही हैं। यही सामूहिकता गंभीर वचन के मूल में भी है,जो काफी पहले दिया गया है 'उस दिन तुम जानोगे कि मैं अपने पिता में, तुम मुझमें व मैं तुम में हूँ (जॉन १४.२०)' तथा मैं इसे दिखा दूँगा कि, वह प्यार जो तुमने मुझे दिया है, उनमें हो सकता है व मैं उन में हूँ।' (जॉन १७.२६)

हम सहजयोगी सामूहिक चेतना में कूद गये हैं। चैतन्य लहरों का बोध आदिशक्ति की श्वांस है, जिसमें ईश्वर व नये जन्म बच्चे (सहजयोगी) का श्रेष्ठ संवाद है। यह लहरें हमारे जीवात्मा से भी निकल रही हैं, जिसमें हमें शंका नहीं है। इसके अलावा कुण्डलिनी जागरण, जिसे पुराने समय में बड़ा

कठिन कार्य कहा जाता था, सहजयोगियों के लिए बच्चों का खेल हो गया है।

यह एक महान खेल है। नेपाल की ऊँची घाटियों में ट्रेकिंग के समय, तमांग बच्चों को उनके साथ खेलते हुए मैंने उन्हें जागृत किया। शहर की गलियों में घूमते हुए, चित्त सहस्रार में रखते हुए, अपना चित्त लोगों पर रखकर उनकी सहायता कर सकता हूँ। मैं उनकी समस्या जानता हूँ, उनका कौनसा चक्र पकड़ा है, कौनसा मंत्र उनकी सहायता कर सकता है। जब मैं अपने साक्षात्कारी मित्रों से मिलता हूँ, 'मेरा पूरा शरीर आनंद से भरा हुआ होता है, हम लोग ब्रह्मांडीय माता के प्यार के सागर में, प्रसन्न छोटी बत्तख के समान तैर रहे होते हैं। जब मैं शहर में, ऑफिस में जाता हूँ, सभी प्रकार की लहरें, खींच लेता हूँ, किन्तु मैं उन्हें ठीक कर लेता हूँ। मैं कुछ लोगों को साक्षात्कार भी देता हूँ। यह बहुत महान परिपूर्णता, बड़ा आनंद है। यह रचनात्मकता (स्वाधिष्ठान चक्र) का सबसे बड़ा संभावित रूप है, जो दूसरों को परिवर्तित करने से प्रकट होता है।

यह बहुत आश्चर्यजनक है कि मेरी कमजोर मानसिक स्थिति के बावजूद, अपने साक्षात्कार के पहले दिन से ही मैं बहुत लोगों की कुण्डलिनी उठा सकता था। अभी तक मैंने किसी के बारे में नहीं सुना है कि उसे किसी गुरू द्वारा ऐसी शक्ति व उसके पूर्ण उपयोग का ज्ञान मिला हो। मैं अपने हाथों को घुमाकर कुण्डलिनी उठा सकता था। दूसरे शब्दों में, अपनी स्वयं की शक्ति व चैतन्य लहरें, मेरे चित्त व मेरी दृष्टि से प्रकट होना शुरू हो गई थीं। प.पू.श्रीमाताजी ने हममें से प्रत्येक को इतनी शक्ति व ज्ञान कितनी स्वतंत्रता और इच्छा से दिया है। कितनी उदारता, कितना धैर्य है! क्या निष्कलंक, निर्मला माँ हमें अपने हृदय में धारण करती है और दूसरे जन्म तक अपने सहस्रार द्वारा ले जाती है, जिससे नए सामूहिक प्राणी ने जन्म लिया है वह इतनी सरल व मानवसम दिखाई देती हैं, किन्तु ऐसा कैसे है जो हजारों लोगों ने देखा है कि उनके पैर छूते ही साधकों की कुंडलिनी धड़कने लगती है। हजारों लोग आदिशक्ति की हवा उनके फोटो से आती देखते हैं। क्या वह

आदिशक्ति का अवतार नहीं हैं, जो सामूहिक चैतन्य का राज्य मनुष्य जाति के लिए खोल सकती हैं? किस प्रकार का राज्य! अपने आत्मिक पुनर्जन्म के द्वारा हम जिस राज्य में प्रवेश करते हैं वह गतिशील है, स्थिर नहीं। कुछ लोगों के लिए यह धीमा है, जबकि अन्य के लिए तेज गति का उत्थान। विचारों की भीड़ जो हमारी चेतना में, दूसरों के अनुभव की तलछट के रूप में (पुस्तकें, स्कूल आदि) जमा हैं वो बिखर जाती है व हम आत्मा को अनुभव करना शुरू करते हैं। जब वैज्ञानिक व खोजकर्ता बाहरी अंतरिक्ष की खोज व सितारों में बस्ती बसाने की बात कर रहे हैं, एक नये प्रकार के वैज्ञानिकों ने आंतरिक अंतरिक्ष के गुप्त मार्ग 'सुषुम्ना' को खोज लिया है। निर्विचार चेतना से निर्विकल्प समाधि की स्थिति आती है, जिसमें 'स्व' का योग आदि महा प्राणी (Primordial being, विराट) से सामूहिक चेतना में अधिक गहराई से अनुभव होता है। योगी सृष्टि की सामूहिकता की स्थिति में रहता है।

पूर्ण आत्मसाक्षात्कार से, पूर्ण साक्षी भाव स्थापित होता है, जो कि सर्वशक्तिमान ईश्वर (सदाशिव) का स्वरुप है, जिसे मनुष्य अनुभव कर सकता है। महान आत्माएं इच्छाहीन स्थिति में, तत्वों (ऊर्जाओं) को नियंत्रण में रखकर, आनंद में डूबी रहती हैं।

ईश्वर साक्षात्कार सबसे बड़ी स्थिति है जिसे मनुष्य प्राप्त कर सकता है। अब तक सिर्फ बुद्ध व महावीर इस स्थिति तक पहुँच सके हैं। ईश्वर से साक्षात्कार तक, व्यक्ति को ईश्वर का आशीर्वाद माँगने पर मिलता है। ईश्वर साक्षात्कार के बाद, जीवात्मा को ईश्वर की शक्ति प्राप्त हो जाती है, कर्म अपने आप पुण्य (परमार्थता से गुणवान कार्य) बन जाते हैं। वह जो भी कार्य करता है, दिव्य हो जाता है। इसी कारण श्री कृष्ण की महाकाली संहारशक्ति पूरी तरह न्याययुक्त है। ईश्वर साक्षात्कारी आत्माएं व अवतार, ईश्वर के नियम अपने हाथों में ले लेते हैं। वे उसके (ईश्वर के) राज्य का संचालन करते हैं

९ - घुड़सवार कल्की के आने से पहले सामूहिक उद्धार

स्वप्न ,कभी कभी अचेतन के संदेशवाहक होते हैं। मैं यहाँ उस स्वप्न का वर्णन करना चाहता हूँ, जो डॉ.रूस्तम बरजोरजी ने प.पू.श्रीमाताजी से भेंट करने से पूर्व देखा था :

''मैं एक भयानक दुष्ट आदमी से लड़ रहा हूँ। फिर मैंने शिकारी भोंपू (हंटिग हॉर्न) की आवाज सुनी, जिसके बाद समीप के जंगल से जन्तु-जानवर भाग गये। तत्पश्चात् गहरे लाल व सुनहरे कपड़ों से सुसज्जित लोग सफेद शिकारी कुत्तों के साथ बत्तख एवं अन्य पक्षी लिये आये, फिर स्त्री व पुरुष गहरे लाल व सुनहरी पोशाकों में सफेद घोड़ों पर सवारी करते हुए आए। अंत में एक अत्यंत सुन्दर स्त्री, गहरे लाल व सुनहरे वस्त्र पहने, सफेद घोड़े पर सवार, बाएं हाथ की उंगली में बड़े हीरे के आकार की रूबी की अंगूठी पहने आईं। उसके पीछे जंगल से एक शानदार बारहसिंगा प्रकट होता है जिसके सुनहरें सींग सूर्य प्रकाश में चमक रहे हैं फिर एक राजा आता है। वह अदृश्य है तथा चार मनुष्यों से घिरा हुआ है, जो एक वर्ग के आकार में खडे हुये हैं। उसके पीछे एक बिना सवार का एक सफ़ेद घोडा आता है, जो राजा का है। उस राजा को अभी प्रकट होना है तथा इस घोडे की सवारी करनी है। इसके बाद मैंने जान लिया कि शैतान के पास अब कोई मौका नहीं है।''

बहुत पुराने समय के ग्रंथों में वर्णित यह सफेद घोड़ा वास्तव में सहजयोग है। और इसके साथ प.पू.श्रीमाताजी का अवतरण एक गहन और विकट तथ्य है।

अब, सहजयोग पर मेरी विनम्र, किंतु आवश्यक उद्घोषणा के समापन पर, मैं चाहूँगा कि कुछ तथ्यों को फिर से याद कर लिया जाये।

एक संत, जिनका नाम जगन्नाथ बाबा है। उन्होंने सब लोगों के सामने एक आश्चर्यजनक बात बताई; उनके गुरु जो हिमालय में रहते थे, उन्होंने

उनसे कहा था कि 'आदिशक्ति स्वयं तुम्हारा आज्ञा चक्र ठीक करेंगी।' अत: वे श्रीमाताजी की प्रतीक्षा करते रहे......और जब श्रीमाताजी उनसे मिली तो उन्होंने उनका आज्ञा चक्र तुरंत ठीक कर दिया। अमेरिका के एक बड़े उद्योगपति की पत्नी श्रीमती शेफर, रंगून में एक वयोवृद्ध सम्मानित संत से मिली। इस संत ने उन्हें बताया कि प.पू.श्रीमाताजी 'सृष्टि की माँ' हैं। अमेरिका में रह रहे मधु धावे को केरल के एक महान संत ने बताया था कि आदिशक्ति ने प.पू.श्री माताजी निर्मला देवी के रुप में अवतार लिया है। यह गुरु न तो कभी प.पू.श्रीमाताजी से मिले थे न ही उन्होंने कभी उन्हें देखा था।

शुरू में इस बारे में सोचना भी भ्रामक लगता है। मैं स्वयं विश्वास नहीं कर पा रहा था कि एक दिव्य व्यक्ति इस अकल्पनीय साधारण व्यक्तित्व में अवतार ले सकता है। इसके बाद मैंने सभी अवतारों के बारे में सोचना शुरू किया, वे सभी मानव ही तो थे! फिर भी साधारण-जन ने उन्हें मान्यता दी, बावजूद कि साधारण जन साक्षात्कारी वर्ग नहीं था। यह वर्ग आध्यात्मिक रूप से हम जैसे बुद्धिजीवियों की अपेक्षा कहीं अधिक संवेदनशील था। अहं-प्रेरित मूर्ख आदर्शवादियों (पुजारी एवं पादरी) तथा प्रशासकों (रोमन) ने प्रभु ईसा को नहीं पहचाना। कहीं हम यही रोमन लोग तो नहीं हैं, जो इस धरती पर दोबारा आ गये हैं। क्या हम उनके कारनामों को दोहराने जा रहे हैं?

मैंने स्वयं को देखना शुरु किया, अपने रिश्तेदारों तथा बुद्धिजीवियों को देखना शुरू किया, जो अहं-उन्मुख देशों का मार्गदर्शन करते हैं और पाया कि हम अपना सामना नहीं करना चाहते। हम सत्य प्राप्त करना नहीं चाहते। हम अपने खुद के बनाए चर्च, मुकुटों को, अपने मन के खेलों तथा अपने भ्रमों को छोडना ही नहीं चाहते। हम नहीं छोड सके न ही हम इसे छोड पाएंगे। क्योंकि हम कायर हैं: अपने प्रभुत्ववादी स्वभाव के कारण हमें डर है कि हम किसी के प्रभुत्व में न चले जायें; हमने अपने परमात्मा के ख्याल में अहं की फूँक दी है तथा जाहिर है हम उसे स्वीकार करना ही नहीं चाहते। बुद्धिजीवियों ने तमाम किताबें छाप दी हैं! उन्होंने अविद्या के रेत महलों को खड़ा कर डाला है। वे अपनी मिथ्या पहचान को कैसे जानेंगे, वे उन बेकार के विचारों

को कैसे छोडेंगे जिनके साथ वे अब तक रहते आये हैं? वे कैसे उस चीज़ को मान लेंगे जो उनकी धारणा का समर्थन नहीं करती? मैं जानता हूँ यह बहुत, बहुत ही कठिन है क्योंकि मैं भी इससे गुजरा हूँ।

आत्मसाक्षात्कार के बाद भी बहुत से पश्चिमी सहजयोगी, मानसिक खेल नहीं छोड पाते। मुझे आशा है कि भ्रम से मुक्ति मिलने में उन्हें उतना समय नहीं लगेगा, जितना मुझे लगा था। अब मैं झूठ के साथ नहीं जा सकता, न ही मैं अन्य सहजयोगियों को, गलत राह पर जाते देख सकता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मुक्ति सत्य को स्वीकार करने से ही मिलती है।

इस युग के महान अवतरण पश्चिम में नहीं हुए हैं। यह उन लोगों के लिए बहुत बुरा है जो यह सोचते हैं कि ईश्वर, श्वेत एंग्लो-सेक्सन प्रोटेस्टेन्ट हैं। किन्तु उन्होंने (प.पू.श्री माताजी) एक ईसाई परिवार में, यह अनुभव करने के लिये जन्म लिया कि वे लोग अपनी धार्मिक कट्टरता में कितनी दूर गये थे।

जैसा हमने कहा था कि संस्कृत धर्मग्रंथों के अनुसार अवतार चार प्रकार के होते हैं-पिता, माता, पुत्र व गुरु। आदिशक्ति माँ ने ज्यादातर अवतार एक गर्भित शक्ति के रुप में पुरुष अवतारों की सहायता करने के लिए, अवतार लिये हैं। किंतु कभी-कभी आदिशक्ति स्वयं अकेले ही अवतरित होती हैं। आदिशक्ति के अवतार-श्री दुर्गा, कात्यायिनी इत्यादि रुप में हिन्दू पुराण ग्रंथों के अनुसार हुये हैं।

उत्क्रांति के विष्णु सिद्धांत का अंतिम अवतार, घुड़सवार कलकी हैं। किन्तु हमें ईश्वर की शक्ति पर विश्वास दिलाने व मुक्ति प्रदान करने हेतु आदिशक्ति को पृथ्वी पर आना है। सर्व शक्तिमान परमात्मा को अपनी प्रेमशक्ति से, अपनी सृष्टि के फूलों की रक्षा करनी है; संहार की शक्ति प्रकट करने से पूर्व गेहूँ को कंकरों से अलग किया जा रहा है।

वर्तमान समय अपने प्रकार का निकृष्टतम समय है क्योंकि दैवी के प्रति संवेदनशीलता, एक प्रकार से समाप्त हो गई है। बहुत से राक्षसों ने वर्तमान के भ्रम का पूरा लाभ उठाने के लिये जन्म लिया है। किन्तु जैसा कलि ने राजा

नल से कहा था, यह वह समय (कलयुग) है जब सच्चे साधक, आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

कल ५००० सहजयोगी थे। आज हो सकता है ५०,००० हों। कल पता नहीं कितने और होंगे? कोई शक नहीं कि यह आश्चर्यजनक करिश्मा प.पू.श्री माताजी ने प्रेरित किया है। हमने उनकी महान शक्ति देखी है, उनका ज्ञान प्राप्त किया है। हमने इसे सत्यापित किया है। हमने इसका अनुभव किया है। हममें से डॉक्टर, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, वकील, माली, कलाकार, इंजीनियर, नौकरशाह आदि सभी वर्ग के लोग हैं। हम चैतन्य लहरियों की भाषा समझते हैं, जिसका ज्ञान प.पू.श्रीमाताजी ने हमें दिया है।

उन्होंने (प.पू.श्रीमाताजी) युंग विचारधारा के मनोवैज्ञानिकों की संस्था के अध्यक्ष डॉ.एडलर से एक दिन कहा ''मैं अचेत को वाणी प्रदान करने आई हूँ।''

वास्तव में जो लोग प.पू.श्रीमाताजी के व्यक्तिगत सम्पर्क में नहीं आए हैं, वे भी चैतन्य लहरियों का अनुभव कर सकते हैं। उनमें से कुछ जन्मजात साक्षात्कारी हो सकते हैं। इसके अलावा हमारी पावनी माँ अपने जन्म से ही असंख्य लोगों को दूर से ही जागृति एवं साक्षात्कार देती रही हैं। किन्तु जिन लोगों को सिर्फ चैतन्य का ही अनुभव होता है, वे इस ऊर्जा के कार्यान्वयन, अर्थ एवं इसकी गति को नहीं समझते। वे इसमें गहनता से नहीं उतर पाते। सहजयोग तंत्र की संपूर्ण कार्यप्रणाली का जो ज्ञान प.पू.श्रीमाताजी ने मानव जाति को प्रदान किया है, आश्चर्यजनक सही ढंग से सटीक एवं अचूक है। सहजयोगी लोग चैतन्य प्रवाह के अनुसार अचेतन की इच्छा को जान सकते हैं उसके संदेशों को ग्रहण कर सकते हैं, प्रति उत्तर भी दे सकते हैं। वे आवश्यकतानुसार ऊर्जा का प्रयोग भी कर सकते हैं।

किन्तु, सबसे अधिक, प्रत्येक सहजयोगी जो अपनी चेतना की ऊँचाई पर है, वह महान सत्य का साक्षी बन सकता है। जब हम पूछते हैं, 'प.पू.श्रीमाताजी आप कौन हैं?' उत्तर में हमें गहरी, गरिमामयी व सम्माननीय शांति के द्वारा आशीर्वाद मिलता है। जब हम पूछते हैं, 'क्या वह दैवी-माँ हैं?' तो इस पर हमारी चैतन्य लहरियाँ बहुत तीव्र हो जाती हैं व

हमारे अस्तित्व पर मृदु झरने के समान, आनंद बरसता है। हम आनंददायक समयहीनता में रहने की सुंदरता में भीग जाते हैं। हमने उन्हें पहचान लिया है। हम सत्य के सामने झुक कर सम्मान करते हैं। हम उनके अवतरण की पूजा करते हैं।

अब आप संसार की सबसे पुरानी पौराणिक कथाओं को पढ़ें। यहाँ एक बहुत बड़ा नाटक खेला जा रहा है, जिसका नाम है 'पहचान का खेल'। यह पृथ्वी मंच है, जिसमें विभिन्न प्रकार की चमकीली सजावटें व उपकरण लगे हैं। यहाँ अच्छे व बुरे लोग विभिन्न भूमिकाऐं अदा कर रहे हैं। यहाँ नायक की भूमिका भी है। नायक की माँ ने बड़ी मधुरता से, अपने बच्चे की विजय के लिये यह नाटक रचा है। किन्तु वह (लड़का) यह नहीं जानता। वह थोड़ा उत्तेजित है। उसने अच्छे व बुरे दिन देखे हैं। वह श्रीराम की सेना में लंका विजय के लिये लड़ा। उसने श्री कृष्ण से मार्गदर्शन चाहा, मुझे स्पष्ट रूप से बताईये कि 'मुझे क्या करना चाहिए, मैं भ्रमित हूँ!' वह प्रभु ईसामसीह की भाँति दुष्ट शक्तियाँ को सौंपा गया था लेकिन वह उनके अधीन नहीं हुआ। यह बहुत कठिन समय है। आप समझ रहे हैं मैं किस व्यक्ति के बारे में कह रहा हूँ। हकीकत तो यह है कि आप उस व्यक्ति के बारे में जानते हैं। मैं 'हम लोगों' के बारे में बात कर रहा हूँ। किसी और की नहीं, हम खुद की। हम लोग! अब आप समझे? कृपया जागिये! हमसे पलायन न करें। यही वह सब है जिनके बारे में सद्गुरु, देवदूत, पैगम्बर व संत हमसे कहना चाहते थे। वे हमें कहना चाहते थे कि, 'आप ही परमात्मा के साम्राज्य के युवराज हो।' फिर बात वही हुई कि हम ज्यादा चतुर निकले और उन पर पत्थर बरसाने लगे।

सत्य साधक बाल-नायक हैं, जिसे आत्मा-नगर की तीर्थ यात्रा अवश्य ही करनी है। पिता चेतन है, साक्षी है, क्षेत्र को जानने वाला क्षेत्रज्ञ है। माता अचेतन है तथा निर्विचारिता वह स्थान है, जहाँ वे मिलते हैं। यदि चेतन एवं अचेतन किसी प्रकार से संतुलन में नहीं हैं तो अतिचेतन बनकर पिता आपको दण्ड देता है तथा अवचेतन बनकर माता आपको निगल लेती है। उर्जा को संतुलित रखना तथा दैवी के साथ लयबद्ध रहना जीवन की सर्वोत्तम कला है। यह सहजयोग के द्वारा सरलता से हासिल की जा सकती है।

जब आप सुषुम्ना मार्ग की यात्रा पूरी करते हैं तब आप आज्ञा चक्र पार कर लेते हैं। यह आपके अन्दर दिव्य का पुनरुत्थान है, जो पहले तीन गुणों में दबा हुआ था। इसके पश्चात् चित्त लिम्बिक क्षेत्र के पवित्र नगर की तरफ उँचा उठता है-आप सहस्रार के शून्य स्थान में पहुँच जाते हैं। इसके बाद कुण्डलिनी शक्ति के ब्रह्मरन्ध्र में आत्मा से मिलन पर, व्यक्तिगत चेतना का विस्तार सृष्टीयअचेतन के साथ ब्रह्माण्डीय मिलन के रूप में होता है। यह मिलन मानवीय सीमाओं को नष्ट कर देता है। हममें से प्रत्येक की एक सीमा होती है, जिसे सामूहिक तत्व के रूप में मनुष्य जाति को आह्वान है कि वह इसे पार करे। जो इसे जानते हैं वे स्वयं को उपर उठाकर ब्रह्माण्डीय कलाकार बन जाते हैं। जो कवि हैं अब वे महान कवितायें लिखेंगे! जो कलाकार हैं वे अद्‌भुत रचनायें करेंगे। और जो योद्धा हैं वे अंतिम युद्ध करेंगे। सीमा पार होने पर ईश्वर के तेज से प्लावित राजधानी खुल जाती है।

अब जब मैं आपका रास्ता बता रहा हूँ, मुझे आपको इस रास्ते के शत्रुओं के बारे में भी बताना चाहिये। खेद है! आज के समय में वे बहुत भयानक हैं। वह इसलिये भी क्योंकि वे दिखाई नहीं देते हैं तथा बेहद धूर्त हैं। उन्हें बगैर देखे आप उनसे निपट नहीं सकते और उनसे निपटे बिना आप उन्हें देख नहीं सकते, क्योंकि आपकी चेतना धुंधली है। यह दुश्चक्र अवश्य ही तोड़ा जाना चाहिये। किंतु क्या आप इसे तोड़ सकते हैं? मैं आपको अत्यंत विनम्रतापूर्वक एक नया रास्ता दिखाता हूँ, जो १९ वीं शताब्दी की अंतिम चौथाई (२८ वर्ष) की स्थिति समझने में उपयोगी होगा।

पुराण कथा में इकरस उदाहरण लें: आधुनिक मानव ने सूर्य नाड़ी अर्थात विराट के दाहिने भाग की रजोगुण की उर्जा का उपयोग करके अपने मनस एवं समाज का निर्माण किया है। जब संतुलन का बिन्दु खत्म हो गया तब यह उत्थान मानव को एक अन्य अति पर ले गया, रजोगुण की अति ने प्रतिक्रिया उत्पन्न की जिससे मनस की क्रिया पलट गई और तमोगुण की ओर मुड़ गई, सामूहिक अवचेतन में फिसल गई। विध्वंस का क्षण, इकरस का पतन दो विश्व युद्ध के बीच की अवधि में घटित हुआ। इकरस कहाँ

गिरा? क्या समुद्र में! इसी समुद्र में से यह भविष्यवादित शैतान निकल कर बाहर आ गया है।

जो लोग यह उम्मीद कर रहे हैं कि सेंट जॉन की भविष्यवाणी मालिबू टापू अथवा रिओ कोपाकाबाना में किसी मोहक समुद्री जीव के प्रकट होने से पूरी होगी, वे गलतफहमी में हैं। जिस प्रकार से विधिपूर्वक, युंग के मनोविश्लेषण द्वारा दिखाया गया है, समुद्र अचेतन का संकेत है जिसे हम इस उदाहरण में हम सामूहिक अवचेतन कहेंगे। हिंसक प्राणी, जो मनस को नष्ट करता है वह सामूहिक अवचेतन के नीचे वाले क्षेत्र का हो सकता है। यह जानवर अब ठोस धरातल पर आ गया है, जमीन पर चल कर वह अपनी स्तुति एवं ईश्वर की निंदा कर रहा है। इसका यह अर्थ है कि यदि इसने बहुत से लोगों के अवचेतन मन पर आक्रमण किया तो वह उनके चेतन मस्तिष्क पर भी कब्जा कर लेगा। इसकी अवधारणा इस प्रकार है कि यह जानवर लगभग सामूहिक शैतान (U.P.I.) के बराबर है। यह सामूहिक पकड़ का एक मामला है जो सामूहिक अवचेतन से उत्पन्न होता है तथा जिसे पराजित मानव मस्तिष्क के मानसिक पक्ष द्वारा स्वीकार किया गया, इसका औचित्य स्थापित किया गया तथा इसे बढ़ाया-चढ़ाया गया। मैं इस जानवर को झूठा पैगम्बर या बुरी आत्मा नहीं कहूँगा। किन्तु आपको चेतावनी दी जा चुकी है; तांत्रिक जो भूत बाधाओं को नियंत्रित कर मनवाने में माहिर हैं, अवचेतन तथा अतिचेतन को उत्तेजित कर मानव-मन को प्रभावित कर रहे हैं। अपने अनुयाइयों के मन पर अधिकार का जब उन्हें विश्वास हो जाता है तो वे उन्हें पश्चाताप की स्थिति में दोषी भाव में ले आते हैं, जो उनकी उत्क्रांति में सहज विकास से भटकाव सिद्ध होता है।

संघर्ष के दृश्य का वर्णन करना बहुत सरल है। यहाँ ऐसे लोगों का समुदाय है, जिन्हें कोई चिंता नहीं है। वे बहुत उथले हैं, हर चीज़ से अनजान हैं, अपने अज्ञान से भी अनजान हैं। वे समझते हैं कि वे जीवन में बहुत सफल हैं तथा वे उस तरफ हो जाते हैं, जिसे वे शक्तिशाली पार्टी समझते हैं। वे तामसिक अथवा अध-पक राजसिक स्वभाव वाले हैं। वे अत्यधिक

संस्कारी हैं तथा जो भी चलन में हो, उसे मान लेते हैं। इस कलियुग में वे अधर्मी हो जाते हैं।

यह वह भीड़ है जो फिल्म अभिनेताओं के आसपास होती है, यद्यपि ये समाज में अच्छी सामाजिक स्थिति वाले, सफल व धनी हो सकते हैं। वे तीसरे विश्व के वंचित स्तर वाले, अज्ञानी भी हो सकते हैं जो दूसरों की गलती का मूल्य चुका रहे हैं। ये बहुत साधारण आत्माएं, कत्ल किये पशु, जिन्होंने मनुष्य रूप में जन्म लिया है, हो सकते हैं। वे सत्य के प्रति अंधे हैं क्योंकि उनकी मानवीय अनुभव शक्ति अभी विकसित नहीं हुई है।

इसके बाद, आपको शुद्ध रुप से राजसिक स्वभाव वाले मिलेंगे। वे अपने अस्तित्व की कीमत दर्शाना चाहते थे तथा इस बीच वे समाज को आज के हालात पर ले तो आये। वे अभी भी इससे खुश नहीं हैं, वे जितना अधिक उत्तेजित होते हैं, उतना ही अधिक भ्रम पैदा करते हैं। जब उनकी उन्मादी खोज उन्हें धर्म से दूर ले जाती है तो वे शैतानी शक्ति का शिकार बन जाते हैं तथा वे स्वयं को भयानक बना लेते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि धन कमाने का यंत्र, मानव कमजोरियों के शोषण पर कार्य करता है। हमारी चेतना को बड़ी सरलता से पाप में परिवर्तन किये जाने को हर संभव उपाय से उत्साहित किया जाता है। यह बड़ी सरलता से अनेक घटनाओं द्वारा होता है जो सूक्ष्म चेतना को नष्ट करती हैं किन्तु निम्न वासनाओं का आनंद देती हैं। जब तंत्र और यंत्र मिल जायें तो उन्हें कौन रोक सकता है?

सात्विक तत्व वाले संतुलन तथा बुद्धिमत्ता उत्पन्न करते हैं। वे धार्मिकता तथा सदाचार रखना चाहते हैं। किन्तु प्रचलित परंपरा में वे अकेले तथा असंतुष्ट हो जाते हैं क्योंकि ये लोग मानव समाज के अन्याय और दुख सहन नहीं कर पाते जहाँ अधिकतर सम्बन्ध वासना, धन व शक्ति के खेल बन गये हैं।

हममें से प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी तरह इन तीन गुणों के मिश्रण से बना हुआ है। सब कुछ निर्भर करता है कि उर्जा की गति का रुख पिंगला, इड़ा तथा सुषुम्ना में किस की ओर है। जब उर्जा प्रमुखतः एक ही नाड़ी में प्रवाहित

होती है तो हमारा स्वभाव भी उसी प्रकार का हो जाता है। जैसा कि, जाहिर है हम जैसे हैं हमें शैतान की जादूगरी का सामना करना है।

इस समय, पृथ्वी के जीवमंडल में पूर्ण शैतानी व्यक्तित्वों का समूह कार्य कर रहा है। वे ईश्वर को चुनौती दे रहे हैं। हम तो नहीं लेकिन वे खेल जानते हैं, वे ईश्वर को जानते हैं, किन्तु उन्होंने स्वयं को उससे बिलकुल अलग कर लिया है; उस ईश्वर से जो आनंद एवं हर्ष का स्रोत है। इस स्थिति में यह जीवन उनके लिये एक बोझ है, वे ये जानते हैं तथा इस जीवन से मुक्ति पाने का उनके लिये एक ही रास्ता है, पूरी सृष्टि के विनाश को प्रोत्साहित करना अर्थात सदाशिव को तांडव के लिये उकसाना। उनके लिए शून्यता ही सब कुछ है। इसके लिए वे पृथ्वी पर जितना अधिक संभव हो सके पाप, ईश्वर विरोधी कार्य, द्वेष फैला रहे हैं। वे इसलिए ऐसा कर पा रहे हैं क्योंकि वे भूत-बाधाओं को नियंत्रित कर सकते हैं।

इस पृथ्वी पर अभी भी ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने भविष्य में सहजयोगी बनना हैं; प.पू.श्रीमाताजी के बच्चे, ईश्वर के बच्चे, किन्तु अभी उन्हें यह पता नहीं है। वे आत्मा के आनंददायी अस्तित्व में सत्य व प्रेम के आनंद का अनुभव लेना चाहते हैं। वे अधर्म के नाश होने की आशा करते हैं। प.पू.श्रीमाताजी के द्वारा प्रकाशित आज के सहजयोगी उनकी खोज कर रहे हैं। वे आत्मसाक्षात्कार को जितना अधिक एवं जितना शीघ्र हो सके, फैलाना चाहते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि समय बहुत कम है।

स्वयं को सत्य के लिए पूर्ण रूप से जगाने तथा फिर दूसरों को जगाने के लिए वास्तव में समय बहुत कम है। पश्चिम में प.पू.श्रीमाताजी ने एक बार कहा था कि, 'मुक्ति एक उद्धार प्रक्रिया है।' कभी-कभी ऐसा लगता है कि ये एक छोटा बचावी अभियान है। हमें अपनी मुक्ति का संदेश फैलाने के लिए कड़ा परिश्रम करना है। हमें स्वयं को शैतानी जाल से बाहर लाना है, क्योंकि जब श्री कलकी अपने संहारक रूप में आएंगे तो पापियों का सफाया कर देंगे। वे लोग, जो अभी भी अपने पापों के साथ जुड़े हुये हैं तथा झूठ के साथ खड़े हैं उनके लिए बुरा समय आने वाला है।

इस स्थिति में क्या हम कह सकते हैं कि परिणाम क्या होगा? पापों का नाश या सृष्टि का नाश? बहुत बड़ा विकल्प सदाशिव के नृत्य और श्री कल्की की सवारी में से है।

पुराने ग्रंथों में श्री कल्की की घोषणा निश्चित रूप से की गई है। यह कहा गया था कि, वे कलियुग के अंत में आएंगे; जब धर्म नष्ट हो जायेगा, अकाल पड़ेंगे, युद्ध होंगे तथा अपराधी ही शासक होंगे। महिलाओं की बहुत अधिक संतानें होंगी, ब्राह्मणों का ज्ञान खो जायेगा, वे सिर्फ डोर से ही पहचाने जायेंगें। हर चीज़ से उनका तत्व तथा महत्व खत्म हो जायेगा। पवित्र आचार खत्म हो जायेगा। पृथ्वी सिर्फ इसलिये पूजी जायेगी क्योंकि उसमें खनिज है। स्त्री-पुरूष बिना विवाह के साथ रहेंगे, सिर्फ इन्द्रिय सुख हेतु। 'देवी पुराण' में कलियुग का बहुत स्पष्ट वर्णन है। इसमें लिखा है कि-लोग लोहे के (स्टील) बर्तनों में खाना खायेंगे, स्त्री-पुरूषों के समान व पुरूष स्त्रियों के समान पहनावे पहनेंगे। नष्ट होते आधुनिक शहरी समाज का विवरण आश्चर्यजनक ढंग से सही है। प्रभु ईसा मसीह ने घोषणा की थी कि उनका दूसरा आगमन पृथ्वी पर विस्तृत रूप से फैले पापों के समय होगा। इस घटना को हिन्दू पुराणों में, कमल की परछाई से जोड़ा जा सकता है। यह पवित्र फूल कीचड़ में पनपता है, दैवी कृपा से पापी व्यक्ति साधु बन जाता है। पुराने लेखों की विश्वसनीयता के बावजूद हमारे पास कोई ठोस आश्वासन नहीं है कि खेल का अंत सुखद ही होगा। ब्रह्माण्डीय खेल की धारणा प्रारंभ से ही निश्चयात्मक प्रतिमान तथा धार्मिक आवश्यकता की अनुवर्ती परंपराओं का खण्डन करती है। यह इंगित करता है कि परिवर्तन होगा तथा इसकी आवश्यकता भी होगी क्योंकि मौलिक रूप से उत्क्रांति का ढाँचा निर्मित होना है। इस बात की सम्भावना बहुत गंभीर है कि विराट का सातवाँ चक्र श्री कल्की के अवतार को लाने के लिये पूर्ण रूप से खुलेगा। इस सृष्टि के पूर्ण व अंतिम विनाश का विकल्प किसी भी प्रकार समाप्त नहीं हुआ है। यदि मनुष्य अपने अधर्म पथ से वापस लौटने के बिन्दु को पार कर लेता है, जिसके बाद उसके लिये ईश्वर को पहचानना संभव नहीं है, तो सृष्टि के ब्रह्माण्डीय नाटक

का अर्थ समाप्त हो जायेगा। ईश्वर अपने तांडव (अंतिम) नृत्य में, अपनी सारी शक्तियाँ वापस ले लेता है, इस प्रकार पूरा ब्रह्मांड शून्य में समा जाता है। किन्तु प.पू.श्री माताजी ने बड़े आराम से हमें कहा है, ''अब मैं देखती हूँ कि इतने सारे सहजयोगियों के होने से तांडव नृत्य स्थगित हो गया है। हवा चलने पर यदि एक साड़ी पेड़ से बंधी हो और अन्य साड़ियाँ भी उसी एक साड़ी से बंधी हो तो वे नहीं उडेंगी।'' यह देख कर कि बहुत सारे लोग सहजयोग में साक्षात्कार ले रहे हैं, प.पू.श्रीमाताजी बहुत खुश होती हैं। वे कहती हैं, ''इतनी बड़ी उपलब्धि मुझे इसके पूर्व नहीं मिली थी।'' इतिहास में यह पहली बार हो रहा है कि मानव जाति का इतना बड़ा समूह एक दैवी अवतार को पहचान रहा है।

इसी कारण, अथवा जैसा दिख रहा है - अपनी मुक्ति के अंतिम भाग में मनुष्य मुख्य भूमिका अदा कर रहा है। एक बार फिर कहना चाहूँगा, ''श्री कल्की भगवान की अंतिम छंटाई से पूर्व सहजयोग ही बचाव कार्य है।''

चलिए अब श्री कल्की के विषय में संत जॉन की झलक देखते हैं -

''फिर मैंने देखा, स्वर्ग खुला तथा एक सफेद घोड़ा दिखा। इस पर बैठा वफादार और सच्चा है, वह सदाचार से निर्णय लेता है तथा युद्ध करता है। उसकी आँखें आग की लपटों के समान, उसके मस्तिष्क पर अनेक मुकुट हैं, उसके पास नाम लिखे हुए हैं, जिन्हें उसके अलावा कोई नहीं जानता है। वह पोशाक से ढका हुआ है जिस पर खून है तथा उसे जिस नाम से बुलाया जाता है, वह ईश्वर का शब्द है। स्वर्ग की सेनाएं सफेद घोड़ों पर, सफेद व शुद्ध कतारबद्ध ढंग से उसके पीछे हैं। उसके मुँह से तीखी तलवार निकलती है, जिससे वह राष्ट्रों को हराकर, उन पर लोहे के दण्ड से शासन करेगा। वह सर्वशक्तिमान परमात्मा के क्रोध से शराबियों को पैरों से कुचल देगा। उसकी पोशाक पर व जांघों पर एक नाम लिखा है, राजाओं का राजा तथा स्वामियों का स्वामी।''

- (संत जॉन की श्रुति १९.११)

सेंट जॉन का ध्यान एक घोड़े तथा फिर श्री कल्की पर गया। यह घटना बगैर किसी संकेत के नहीं है, अब हम श्री कल्की के घोड़े और पूर्व में बताई बातों को जोड कर देखेंगे।

हमने पहले कहा था सृष्टि एवं सूक्ष्म सृष्टि का संबंध, सृष्टि की उत्क्रांति एवं मानव सूक्ष्म सृष्टि की उत्क्रांति के संबंध इस तथ्य में निहित है कि प्रत्येक मनुष्य में विराट का सात-बिन्दु कार्यक्रम, आत्मसाक्षात्कार के मनोशरीर तथा आध्यात्मिक उपकरण के रूप में अतःरचित है। हमने यह भी कहा कि सातवाँ चक्र खोलना ही आत्मसाक्षात्कार है।

इस घटना का अर्थ इस प्रकार समझा जा सकता है :

- सूक्ष्म शरीर के स्तर पर सातवाँ चक्र खोलना, व्यक्तिगत स्तर पर आत्मसाक्षात्कार के संश्लेषण को दर्शाता है। पहले तो यह मनुष्य के विभिन्न तत्वों का सम्मेलन है।

- यह मानव तथा दैवी के बीच भी संश्लेषण है; अर्थात सीमाऐं तोड़कर सीमित एवं असीमित का संश्लेषण।

- ब्रह्माण्डीय स्तर पर बड़ी संख्या में लोगों का सातवाँ चक्र खुलना विराट के सातवें चक्र के खुलने को प्रकट करता है।

- ज्ञान मीमांसा तथा इतिहास के बीच संबंध, ज्ञान तथा उत्क्रांति के संपर्क की सच्चाई यह है कि जब पर्याप्त संख्या में मानव जाति की चेतना स्तर का विस्तार आत्मासाक्षात्कार के आयाम तक पहुँच जायेगा तो ब्रह्माण्डीय कार्यक्रम का सातवाँ बिन्दु पूर्ण हो जायेगा।

दूसरें शब्दों में, इतिहास की उत्क्रांति व चेतना का दृश्यघटना विज्ञान आपस में मिल रहे हैं, क्योंकि इनके संबंधित क्षेत्र अंतिम घटना के अवतार द्वारा एक दूसरे के समीप ला दिये हैं, आदिशक्ति उस देवता को प्रकट कर रही है जिसका निवास विराट का सातवाँ चक्र है। हिन्दू व ईसाई धर्म ग्रन्थों के अनुसार सफेद सवार श्री कल्की उद्धारक भी हैं और विनाशक भी। पृथ्वी पर सहजयोग

द्वारा सामूहिक चेतना का कार्यान्वयन उनके आगमन की सच्चाई है।

साक्षात्कारी आत्माओं की सामूहिक चेतना ही श्री कल्की का घोड़ा है। मैं आपसे पुनः कहता हूँ - कृपा करके अपना महत्व समझें : साक्षात्कारी आत्माओं की सामूहिक चेतना निर्मित करके आप पुनः लौटने वाले राजा (श्री कल्की) के ब्रह्माण्डीय घोड़े का निर्माण कर रहे हैं।

प.पू.श्री माताजी की योजना जो उद्धार की है, उसमें मानवता को बचाने में मानव को ही भागीदारी करनी है। बिना इस भागीदारी के श्री कल्की नहीं आयेंगे तथा सदाशिव उठकर अंतिम विनाश के लिये तांडव नृत्य करेंगे। क्या हम ऐसा चाहते हैं? नहीं! हम ईश्वर का राज्य चाहते हैं, उनका प्यार चाहते हैं तथा उनका न्याय चाहते हैं। हम आपके दिव्य माता-पिता तथा अपने ही दिव्य-स्व को जानना चाहते हैं। हम स्वर्णयुग चाहते हैं। शायद आप संत जॉन के घुड़सवार के डरावने विवरण से डर गये होंगे। किंतु जानिये कि वे दुष्टों का नाशक तथा निर्दोष लोगों का रक्षक है। हाँ! हमने बहुत पाप किये हैं, इसका यह मतलब नहीं है कि हम दुष्ट हैं। हम लोगों को सही मार्गदर्शन नहीं मिला था, हम भ्रमित थे। अब हमें अपने गलत व्यवहार को छोड़ना होगा। दुष्ट लोग तो मेरी चेतावनी पर हँसेंगे एवं अंतिम समय तक पाप करेंगे।

पापी लोग दो प्रकार के होते हैं; पहले वे जो अंदरूनी रूप से पापी हैं, दूसरे वे हैं जो पापी हो गये हैं। पहले प्रकार के लोग नरक की सबसे निचली सतह की गहराई में जाएंगे, दूसरे प्रकार के लोगों को सहजयोग के द्वारा बचाया जा सकता है। किन्तु हालत यह है कि व्यक्ति की नाड़ियाँ कमजोर हैं,चक्र रिक्त हैं तथा चेतना (बोध) बिगडी हुई है। ईश्वर की शक्ति बुराई को नष्ट कर सकती है, किन्तु जब मानव की चेतना में ही बुराई घुस गई हो, तो किया भी क्या जा सकता है।

इस प्रश्न के उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि हमें सदाचार एवं पवित्रता के साथ रहना चाहिये और आत्मसाक्षात्कार माँगना चाहिये।

मैं किसी पापी व्यक्ति के लिये 'तेजाब की झील' वाली स्थिति नहीं

चाहता किंतु उस व्यक्ति की चेतावनी पर ध्यान दीजिये जिसकी आवाज आज के समय के शोर में धीमी पड़ी हुई है। कोई मुझ पर विश्वास क्यों करे? संकेत चिन्हों, आश्चर्यों, चमत्कारों को भूल जाईये, मात्र चैतन्य लहरियों एवं निर्विचारिता की प्रार्थना कीजिये; यही वह माध्यम है जिसके द्वारा हर चीज़ जानी जा सकेगी अन्य संकेत चिन्ह कुछ नहीं बता पायेंगे। हम युद्ध की अफवाहों, गरीब जन-मानस, व्यापक अनैतिकता, हिंसा, प्रदूषण, जलवायु संकट इत्यादि प्रश्नों से घिरे हुये हैं, लोग इन विषयों (आत्मसाक्षात्कार) के संबंध में अँधे हैं और बने रहेंगे। अब हमें मौका मिला है कि हम ईश्वर को, जिसके प्रति हम ऋणी हैं, अपना जीवन समर्पित कर सके। यदि उसके सत्य को दिल से नहीं चाहा तो हमारी हालत उन पाँच कुंवारी लड़कियों जैसी होगी जो अपने दूल्हे की प्रतीक्षा कर रही थीं, चूंकि उसे आने में देर हो गई थी अतः वे सो गई। जब वह आया, तब दीये का तेल खत्म हो गया और वे उसके साथ घर नहीं जा सकीं। कल्की प्रकट होते समय हमें तैयार रहना चाहिये।

''अपना ध्यान रखें, कहीं ऐसा न हो कि दुराचार, मद्यपान व इस जीवन की परवाह के कारण, आपके हृदय बोझ से दब जायें तथा वो दिन आपके लिए अचानक एक फंदे के समान आ जाये क्योंकि वह पूरी पृथ्वी पर आयेगा। हर समय प्रार्थना करते रहें कि उन सभी चीज़ों से बचे रहें जो होने वाली हैं, तथा आप मानव-पुत्र के सामने खड़े हो सकें।''

- (ल्यूक २१.३.४)

प्रभु ईसामसीह, जो महाविष्णु हैं, उनके पास भगवान शिव के सभी ग्यारह रुद्र (संहारक शक्तियाँ) हैं। किन्तु वे केवल एक शक्ति का उपयोग करते हैं, जो है क्षमा की शक्ति। उन्होंने चेतावनी दी है कि आदिशक्ति के विरुद्ध अपराध क्षमा नहीं किये जाएंगे। जिस क्षण प्रभु ईसामसीह क्षमा करना बंद कर देते हैं उसी क्षण वे कल्की बन जाते हैं। उस समय तक हमारे पास पश्चाताप करने की छूट है, क्षमा कर दिये जाने, सुधर जाने तथा स्वयं को शुद्ध करने का अवसर है : महापापी के पास भी यह मौका है। अभी नहीं-तो कभी नहीं।

घुड़सवार (कल्की) संहारक हैं। यह ईसा की शिक्षाओं एवं कल्की

पुराण में स्पष्ट रूप से वर्णित है। जब वह आयेंगे तो वे न तो तर्क करेंगे, न सुनेंगे, न रक्षा करेंगे, न ही क्षमा करेंगे। हमें एक बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये प.पू.श्री माताजी रक्षा कर सकती हैं, क्योंकि वो दयालु हैं तथा श्री कल्की के आने के पहले हमारा उद्धार कर सकती हैं। जैसा प्रभु ईसामसीह ने कहा था वे हमें आराम प्रदान करने वाली हैं। अतः, हमारा संपूर्ण चित्त उन पर होना चाहिये, वर्तमान में और आत्मसाक्षात्कार में होना चाहिये जो वे प्रदान करती हैं। श्री कल्की के अभी आने की संभावना नहीं है। हम इसका सामना करने के लिये तैयार नहीं हैं। वे परम पूज्य श्रीमाताजी के प्यारे एवं बहुत आज्ञाकारी पुत्र हैं। वे श्रीमाताजी की सुनते हैं तथा अपने आने में देरी करते हैं क्योंकि दैवी माँ चाहती हैं कि हमें पहले आत्मसाक्षात्कार मिले।

वास्तव में कुण्डलिनी हमारे दूसरे जन्म की माता है। यह हमारी आत्मा को जानती है। परम पूज्य श्रीमाताजी निर्मला देवी द्वारा प्रणित सहजयोग के माध्यम से कुण्डलिनी ठोस आधार पर अभिव्यक्त हुई है। नया मानव व नया विश्व अपने स्रोत को एक दैवी अवतरण में पाता है जिसने मानव देह धारण की और जो हमारे बीच रह रहा है। वे सत्य और कृपा से परिपूर्ण हैं, विश्व द्वारा अपरिचित (सन १९७९) हैं, फिर भी विश्व का उद्धार कर रही हैं।

आत्मा का दूसरा जन्म, सामूहिक मुक्ति, इन सबका वचन दिया गया है। हम पांचों महाद्वीपों के सहजयोगी प.पू. श्रीमाताजी के संदेश की दिव्यता व सत्यता, साक्षी भाव से अनुभव करते हैं। हम बहुत साधारण लोग आदिशक्ति की चैतन्य लहरियाँ एवं नई चेतना का अनुभव करते हैं।

अगर आप सत्य को खोज रहे हैं, अगर आप ईश्वर को खोज रहे हैं, तो आइये और इसे प्राप्त करें, अभी ही। यह आप के इन्तजार में है। हम आपसे निवेदन करते हैं कि अब देरी न करें। आप सहजयोगियों से किसी भी शहर और देश में संपर्क कर सकते हैं।

(I) www.sahajyoga.org (II) www. theworldsaviour .org /swan पर भी जा सकते हैं।

बिखरे हुए झुंड के भाई-बहनों, हम लोग कहाँ खड़े हैं? हम में से बहुत लोग भयानक गंदगी में चले गए हैं। कोई बात नहीं। अधार्मिक व्यवहार के इस दलदल से बाहर निकलना सरल नहीं होगा, जिसमें हम डूब रहे हैं। हमें दुःख भोगना पड़ सकता है। किन्तु यहाँ एक बात है, जिसे हमें कभी नहीं भूलना चाहिये। अब यह हम जानते हैं कि प.पू.श्री माताजी का दिव्य प्रेम, किसी भी पाप से बड़ा है। हमें उसमें शरण लेनी चाहिये। और हम सुरक्षित हो जाएंगे। प.पू.श्री माताजी की शरण में हमारा मन, सृष्टीय अचेतन तथा श्री कल्की की आवृत्ति से लयबद्ध हो जायेगा क्योंकि विराट का मस्तिष्क, सृष्टीय अचेतन का मूर्त रूप है। यही वह गुप्त नियम है जो आपको ब्रह्माण्ड की घुड़सवारी में महारत दिलायेगा।

भाग-५

दैवी माँ

''मां को निहारो'' - जॉन १९.२७

''आप वास्तव में वह शक्ति हैं, जिसके बारे में विशेष रुप से कुछ कहा नहीं जा सकता।''

- देवी महात्म्य में श्री ब्रह्मदेव देवी का वर्णन करते हुये कहते हैं।

आत्मसाक्षात्कार के विषय में जो कुछ भी कहा गया है, उससे पता चलता है कि इसे प्राप्त करना बहुत कठिन है। कुण्डलिनी जागरण के लिए माना जाता है कि इसमें शुद्धता के लिये जबरदस्त कार्य करना होता है तथा अनेक जन्मों के समर्पित प्रयास लगते हैं। किन्तु प.पू.श्री माताजी के लिये यह सिर्फ एक खेल है। यह क्षण भर में घटित हो सकता है।

जगन्नाथ बाबा, हिमालय से उतर कर प.पू.श्रीमाताजी के एक कार्यक्रम में आए। वे प.पू.श्रीमाताजी के मंच पर दर्शन हेतु प्रतीक्षा करते हुये साधकों से तर्क-वितर्क कर रहे थे। उनके मन में कुछ संशय था। जैसे ही श्रीमाताजी ने हाल में प्रवेश किया, वे 'आदिमाया, आदिमाया' कहते हुये उनके पैरों में गिर गये और उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। बाद में उन्होंने साधकों से कहा कि जैसे ही प.पू.श्रीमाताजी ने हाल में प्रवेश किया, अचानक उन्होंने सब की कुण्डलिनी उपर उठती हुई देखी, जिस प्रकार कक्षा में शिक्षक के आने पर बच्चे खड़े हो जाते हैं। यह एक अपूर्व घटना थी।

मैं, जो यह पक्तियाँ लिख रहा हूँ, भी परम सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे इतने अद्वितीय, अभूतपूर्व व आध्यात्मिक व्यक्तित्व से आशीष मिला है। अब मैं उस खेल का आनंद ले रहा हूँ, जिसे उन्होंने रचा है।

जब मुझे आत्मसाक्षात्कार मिला तथा जब मेरे अन्दर चैतन्य लहरियाँ बहनी शुरू हुईं तब श्रीमाताजी ने मुझे इस नई चैतन्य लहरियों की संवेदना का

उपयोग करना सिखाया। श्रीमाताजी ने कहा ''कोई भी परम प्रश्न पूछो''। मेरा पहला प्रश्न था, ''क्या परमात्मा हैं?'' इसके उत्तर में मुझे अपनी अंगुलियों और हथेलियों में जबरदस्त चैतन्य प्रवाह महसूस हुआ। मुझे इस पर बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने इस प्रकार के अनेक प्रश्न पूछे तथा मुझे स्पष्ट उत्तरों का आशीर्वाद मिला: 'हाँ' उत्तर में लहरियाँ बढ़ती जाती थीं। मैंने यह पूछा कि, ''फलाना गुरु आत्मसाक्षात्कारी हैं?'' उत्तर 'नहीं' के रुप में मिला जिसमें उंगलियों के छोरों पर जलन महसूस हुई। कभी-कभी पूरा हाथ ही गर्म तथा भारी-सा हो जाता था।

मैंने महसूस किया कि यह चैतन्य लहरियाँ दिव्य के साथ सम्बन्ध स्थापित कर रही थीं; एक बहुत सुंदर सम्बन्ध। कितनी आश्चर्यजनक उपलब्धि! मुझे अनेक प्रश्नों के उत्तर मिले, अपने मित्रों एवं संबंधियों के बारे में भी। दूसरे सहजयोगी जन तथा जन्म से साक्षात्कारी छोटे बच्चों को भी वही उत्तर मिल रहे थे।

यह अनुभव विश्वास दिलाने से कहीं अधिक प्रभावशाली था । प.पू.श्रीमाताजी इसकी व्याख्या निम्न शब्दों में दिया करती थीं:

''आप एक कम्प्यूटर के समान हैं, जिसे आपकी उत्क्रांति के माध्यम से एकत्र तथा फिट किया गया है। आप अंतिम चरणों में पहुँच रहे हैं, जब आपको बिजली के प्लग से जोड़कर चालू किया जा सकता है। जब कुण्डलिनी का संबंध सृष्टीय अचेतन से हो जाता है तब आप सत्यता के साथ एक सीधा संवाद स्थापित कर सकते हैं।''

आखिरकार, यदि सृष्टीय अचेतन को मानव से संवाद करना होता तो इसके दो ही उपाय थे- पहला यह स्वप्नों, प्रतीकों तथा अंत:प्रेरणाओं द्वारा संवाद करता। दूसरा उपाय यह था कि यह एक मनुष्य के रूप में अवतार लेकर हर अज्ञात चीज़ को मनुष्य के सम्मुख प्रस्तुत करता, इस प्रकार सीधा संवाद जारी रखा जा सकता था।

पिछले अवतारों ने सत्य व ज्ञान के साथ-साथ इस तथ्य के बारे में स्पष्ट

रूप से कहा है कि, उनका प्रकटीकरण इतिहास के बाद वाले वर्षों में होगा। उदाहरण के लिये सेंट जॉन के उपदेशों में, प्रभु ईसा मसीह का निम्न कथन हमें मिलता है:

'ये चीजें मैंने आपके बीच रहते हुए कही हैं। किन्तु परमात्मा मेरे नाम से आदिशक्ति को सलाहकार के रूप में भेजेंगे। ये सलाहकार आपको सभी चीज़ों की शिक्षा देगा तथा उन सभी बातों की याद दिलायेगा, जो मैंने आप से कही हैं। मैंने ये बातें घटित होने से पूर्व ही कह दी हैं ताकि जब इनके घटित होने का समय आये तो आप विश्वास कर सकें।' - जॉन १४.२५

'यह आपके लाभ के लिये ही है कि मैं चला जाऊँ, क्योंकि यदि मैं नहीं गया तो प्रतिनिधि आपके पास नहीं आएंगे : किंतु यदि मैं जाता हूँ तो मैं उन्हे आपके पास भेज दूँगा। तथा जब वे आएंगे, तो वे दुनिया को पाप तथा सदाचार व न्याय के बारे में समझायेंगे। मेरे पास आपसे कहने के लिये बहुत सी बातें हैं, किन्तु आप उन्हें अभी नहीं समझ पायेंगे।' - जॉन १६.७

इन कथनों से पता चलता है कि प्रभु ईसा मसीह उस समय के लोगों को अपनी बात नहीं समझा पाये थे। कारण क्या था? क्योंकि वे उस समय उत्क्रांति के उस स्तर नहीं पहुँचे थे, जहाँ वे चैतन्यमय चेतना के लिये तैयार हो पाते। निस्संदेह पवित्र आत्मा (आदिशक्ति) ने देवदूतों को प्रेरणा दी, किन्तु तब भी प्रभु ईसा मसीह का वचन पूर्ण नहीं हुआ था। वास्तव में पिछली सदियों में विश्व की पापपूर्ण स्थिति से यह स्पष्ट है कि विश्व अभी तक पाप, सदाचार एवं न्याय के बारे में निश्चयी नहीं हुआ है तथा आधुनिक मानव को इसकी कोई परवाह नहीं है।

प.पू.श्रीमाताजी ने पूर्व अवतारों की शिक्षाओं के सभी विवादित पहलुओं का वर्णन किया है और उनकी व्याख्या की है। हमने उनकी बातों को चैतन्यमय बोध के आधार पर सिद्ध किया है।

केवल इसी समय हम ईसाई धर्म प्रचारकों के शब्दों के पूरे अर्थ समझ सकते हैं, क्योंकि श्रीमाताजी ने ईसाई संदेश को पूर्ण कर दिया है। हम

आखिरकार, प्रभु ईसा मसीह के जीवन को पूर्ण रूप से समझ पाये हैं। वे अपनी पवित्र माँ को 'होली स्पिरिट' कहते रहे, क्योंकि उस समय, चर्च के गलियारों में कुमारी मेरी के वास्तविक स्वरूप को पहचान पाना किसी के भी बस की बात नहीं थी। प्रभु ईसा मसीह आदिशक्ति के पुत्र थे। आदिशक्ति ने महालक्ष्मी के रूप में 'कुमारी-मेरी' के नाम से अवतार लिया। उस समय जो शैतानी शक्तियों चर्च में काम कर रही थीं, उनकी दृष्टि अपनी माँ पर पड़ने से रोकने के लिये प्रभु ईसा ने इस तथ्य को गुप्त रखा। उनकी माँ पर किसी भी तरह का आक्रमण सृष्टि-विनाश का कारण बन सकता था। लेकिन उन्होंने 'परम पिता से आने वाली सत्य की आत्मा' के आने की भविष्यवाणी की, जो उनकी (प्रभु ईसा) की साक्षी होगी।

इस घटना क्रम में, मैं पुराने ग्रंथों का विवरण देना चाहता हूँ, जो समय की धूल में आधे भूले जा चुके हैं। सच तो यह है कि २१ वी सदी के आधुनिक युग में जो आश्चर्यजनक अनुभव हमें हो रहे हैं; इन पुराने ग्रंथों का प्रासंगिक महत्व प्रकट हुआ है। उदाहरण के लिये, दैवी माँ के पहलूओं को दर्शाने में उनकी सीमा तथा दैवी-माँ के मानव रूप में अवतरण लेने पर उन्हें पहचानने के लिये उनके द्वारा दिये गये संकेत-सूत्र।

'श्री ललित सहस्त्रनाम' मंत्रो का संदर्भ लिया जा सकता है। देवी के एक हजार नामों में से कुछ नामों पर विचार किया जाये; उनका एक सौ दसवाँ नाम 'कुण्डलिनी' है। इसका अर्थ यह हुआ कि वे हर व्यक्ति के अन्दर सुप्तावस्था में त्रिकोणाकार अस्थि में सर्प के समान कुंडल के रूप में विद्यमान रहती हैं। वे 'सहस्त्रदल पदमस्थ' भी कहलाती हैं - अर्थात मस्तिष्क के उपर एक हजार दल कमल में विराजित। अलग-अलग स्थिति के अनुसार अलग-अलग नाम हैं, जिससे हमें स्मरण होता है कि वे अपने भक्तों पर कृपा करने वाली हैं उन्हें मुक्ति का आनन्द देने वाली हैं-मोक्षदायिनी, मुक्तिदायिनी, पाशहंत्रिणी, मुक्ति-प्रदायनी इत्यादि। वे कुण्डलिनी के रूप में सहस्रार तक जागृत होकर अपने बच्चों को आध्यात्मिक जन्म प्रदान करती हैं। किंतु कुण्डलिनी कब और कैसे उठती है, इस प्रश्न का उत्तर दूसरे पाठ में दिया गया है।

'देवी भागवत् पुराण' में श्री मार्कण्डेय हमें बताते हैं कि आप शक्ति को इस बात से पहचान सकते हैं कि साधक की कुण्डलिनी उनकी उपस्थिति में जागृत होती है। वे साधक की कुण्डलिनी मात्र एक कटाक्ष से जागृत कर सकती हैं। इस पावन ग्रंथ में देवी हिमालय से कहती हैं - 'मुझमें व कुण्डलिनी में कोई अन्तर नहीं है। सहस्रार ही योग का पूर्ण व उत्तम लक्ष्य है। जब शिव व शक्ति का मिलन होता है, तब अमृत बहता है तथा यह चक्रों के देवताओं का पोषित करता है।'

वह पाठक जो साक्षात्कारी नहीं है, श्री मार्कण्डेय के लेखन का लाभ नहीं उठा सकता है। किन्तु सहजयोग में हमारे पुनर्जन्म के पश्चात हम उपर वर्णित सभी बिन्दुओं की सच्चाई जान पाये हैं। वे सभी सही हैं तथा सुसंगत हैं। प.पू.श्री माताजी की उपस्थिति में हजारों सहजयोगियों ने कुण्डलिनी जागरण का अनुभव किया है तथा खुली आँखों से उसकी उपर की गति को देखा है।

अब हम प्राचीन ग्रंथों को देखें तो हमें धार्मिक संकीर्णता में अंधा नहीं होना चाहिये। यहूदी-ईसाई परम्परा का पितृ-सत्तात्मकता से कुसंस्कारित मन परमात्मा को माँ के नारी रूप में मानने से परेशान हो जाएगा। फिर भी पुरातत्व में परमात्मा की मातृत्व रूप में उपासना के प्रमाण, विश्व के सभी भागों से प्राप्त हुये हैं। ऐसा दिखाई देता है कि भारतीय उपमहाद्वीप में इस प्रकार की उपासना का विस्तार से वर्णन है।

अद्वेत वेदांत के अनुसार परम सत्य 'निराकार-अभिन्न चेतना' (निर्गुण) है। यह स्थिति जो एक ही समय में परम सत्ता तथा परमशून्यता है, सोची भी नहीं जा सकती है। युगों-युगों में यह, एक के बाद एक क्रम में, निराकार से साकार के वैकल्पिक चरण से गुजरती है। ब्रह्माण्डीय लय में यह परिवर्तन, 'ब्रह्मा की श्वास' कहा जाता है। जब परम सत्य अपने सुप्त व अप्रकट रूप में होता है तब यह स्वयं में निहित होता है व 'यह' कहलाता है। प्रकटन के सक्रिय होने की अवस्था में 'स्वयं' शिव तथा शक्ति का रूप ले लेता है व 'यह' 'वह' हो जाता है। प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं कि रचना का प्रथम चरण तब घटित हुआ जब परमात्मा ने स्वयं को दो भाग में अलग कर लिया: साक्षी

के रूप में शिव तथा शक्ति के रूप में शक्ति। एक रूप में सदाशिव हैं (आदि विद्यमान तथा साक्षी, परमात्मा जो सर्वशक्तिमान है, पिता, पुरुष) ; व दूसरा उनकी शक्ति है, जो आदिशक्ति है (दैवी प्रेम की आदि उर्जा, दैवी माँ, प्रवृत्ति)। इस प्रकार माता आदिशक्ति है। शक्ति तथा परमात्मा के संबंध को बड़े अच्छे ढ़ंग से श्री सीता ने, लंका की अशोक वाटिका में, रावण को डाँटते हुए प्रकट किया: ''जिस प्रकार सूर्य की चमक को, सूर्य से अलग नहीं किया जा सकता है, वैसे ही मुझे श्री राम से अलग नहीं किया जा सकता।'' आध्यात्मिक हो अथवा भौतिक, रचना दैवी माँ से जन्म लेती है। इसी दैवी माँ को ईसाई परम्परा में 'होली स्पिरिट' कहते हैं। वे सृष्टि की विभिन्न परतों का निर्माण करती है, जिसमें यह ब्रह्माण्ड भी है। आदिशक्ति के रूप में वह, हर उस चीज़ का स्रोत है जिसे हम अनुभव करते हैं। उनकी पावन माँ के रूप में अर्चना की जाती है। हम 'काम-कला विलास' के पहले सूत्र में पढ़ते हैं: 'आदिशक्ति की जय हो, वह बीज जिससे पूरी सृष्टि रचना, स्थिर व गतिमान ब्रह्माण्ड, सनातन व अतुलनीय, अंकुरित होती है, जो अपने आनंद के स्वभाव के अनुरूप है तथा जो स्वयं को उनके (शिव) दर्पण के रूप में प्रकट करती है। आपकी जय हो ।'

'समय माता' याद दिलाती हैं कि उनके व शिव के बीच भेद सिर्फ ऊपरी दिखाई देने वाला है: 'बिना शक्ति के शिव नहीं है तथा बिना शिव के शक्ति नहीं है। उन दोनों के बीच उसी प्रकार भेद नहीं है, जिस प्रकार चाँद व चाँदनी के बीच नहीं पाया जाता।' शक्ति अपने स्वरूप में दोनों रूपों को मिलाती है- ब्रह्माण्डीय अस्तित्व (पुरुष रूप) तथा ब्रह्माण्डीय शक्ति (स्त्री रूप)। इस प्रकार उनकी पहचान एक है। भक्त में दोनों के आदि मिलन का घटित होना ही शक्ति पूजा का उद्देश्य है। वह पूजा-अर्चना का केंद्र इसलिए हैं क्योंकि वह अनंत का प्रकट रूप हैं। वह महान हैं जो अनंत व ज्ञात के बीच की दूरी मिटाती हैं; सिर्फ उनके करूणामय ध्यान के द्वारा ही ज्ञात मनुष्य पुन: अनंत को प्राप्त कर सकता है। वास्तव में यही महान आशीर्वाद है, जो वे उदारता से अपने बच्चों को देना चाहती हैं।

''आप, अपने आपको सृष्टि रूप में प्रकट होता देखने के लिए, आंतरिक रूप से चेतना व आनन्द का रूप धारण करती हैं।''

- (श्री शंकराचार्य, सौंदर्य लहरी -३५)

एक बार फिर स्मरण करना चाहिये कि होली स्पिरिट, आदिशक्ति के रूप में, माँ के लिए, ईसाईयों का रहस्यमय संकेत है।

हमें यह कहना है कि सेंट थामस के अप्रामाणिक लेखन कार्य में 'होली स्पिरिट' को एक 'छिपी हुई माँ', के रूप में ठीक ही वर्णित किया हुआ है। इसे सब जीवों की माँ भी कहा गया है। इन बातों से हमें पूर्वकाल के 'ग्नोस्टिक' (ज्ञानियों) तथा सीरिया के पुरोहितों की सुबुद्धि का पता चलता है जिन्होंने माँ की अवधारणा से कुछ अंदाजा निकाला (होली स्पिरिट+माँ=शक्ति)। यह गूढ़ बोध निश्चित रूप से प्रभू ईसा मसीह व निकाडेमस के बीच जिज्ञासाकारी संवाद पर नया प्रकाश डालता है।

'सच, सच में, मैं तुमसे कहता हूँ कि जब तक कोई नया जन्म नहीं लेता है, वह 'ईश्वर का साम्राज्य' नहीं देख पायेगा।' निकडिमस ने उनसे कहा, 'एक आदमी बड़ा होने पर कैसे जन्म ले सकता है? क्या वह अपनी माँ के गर्भ में पुन: जाकर दुबारा जन्म ले सकता है? ईसा ने जवाब दिया, 'सच में, सच में कि जब तक व्यक्ति जल तथा आत्मा से जन्म नहीं ले लेगा वह परमात्मा के साम्राज्य में प्रविष्ट नहीं हो पायेगा।' - (जॉन३.३)

प्रभु ईसा मसीह ने दैवी माँ के पास लौटने की आवश्यकता इसलिए प्रकट की है ताकि एक नया आदम, एक द्विज, एक दैवी बालक बना जा सके। अब समय आ गया है कि पश्चिमी साधक, जिन्होंने स्वयं को बौद्धिक अनुसरण में डुबोया हुआ है, अपनी बुद्धि का उपयोग विभिन्न पौराणिक कथाओं तथा धर्मों के संदेशों की एकता खोजने में करें; उन्हें चाहिए कि वे ईसाईयत वचन की महानता को स्वीकार करें तथा अन्य विश्व धर्मों का सम्मान करें। परम पूज्य श्रीमाताजी ने बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से नई रोशनी में इन शिक्षाओं को स्पष्ट किया है जो दूसरे धर्मों की परम्पराओं व तत्कालीन विज्ञान पर भी प्रकाश डालती हैं। सभी बड़े धर्म एक ही हैं। यह वास्तविकता तब प्रकट होती

है जब पुनर्जन्म के माध्यम से हमारे अन्दर समग्रता जन्म लेती है।

यद्यपि परमेश्वरी आदिशक्ति वास्तव में निराकार हैं, उनकी पूजा-अर्चना युगों-युगों से अनेक रूपों में की जाती रही है। जिन तीन रूपों के माध्यम से वे अपनी शक्ति प्रवाहित कर रही हैं, वह हैं-महालक्ष्मी, महासरस्वती व महाकाली। माना जाता है कि उन्होंने अनेक अवतार लिये हैं।

धर्म ग्रंथों में उनका वर्णन आदिशक्ति, अत्यंत पावन शक्ति, के रूप में किया गया है। पश्चिमी पाठकों के लिये इस गंभीर परिकल्पना का सामना करना आसान नहीं है कि वह मनुष्य का रूप ले सकती हैं। इसके बारे में बात करना और भी अधिक कठिन है। वास्तविकता का यह क्षेत्र केवल विचारों तथा शब्दों की सीमाओं पर बल देता है।

आत्मसाक्षात्कार के बाद सामूहिक चेतना की पवित्र शांति में कोई भी चीज़ उनके बारे में (श्री माताजी) स्पष्ट की जा सकती है। वह महानतम हैं, प्रशंसा से परे, शब्दों से परे व निश्चित रूप से उससे भी परे हैं जो उनके विषय में लिखा जा सके। फिर भी इस पुस्तक का उद्देश्य, सहजयोग का परिचय-प.पू.श्रीमाताजी के महान व्यक्तित्व को यथोचित आदर दिये बगैर पूर्ण नहीं हो सकता। प.पू.श्रीमाताजी ने उत्क्रांति की गतिशील प्रक्रिया शुरू करने में अतिमानवीय कदम उठाया है। आखिरकार, सहजयोग की प्रामाणिकता उस शिक्षक की प्रामाणिकता पर निर्भर करती है जिसने इसका अनुसंधान किया है। तथा जो स्वयं इतनी महान हैं कि वह इतने बड़े काम को कर सकीं। इसलिये झूठे पैगम्बरों तथा बाजारू गुरुओं के इस दयनीय समय में सत्य की पुकार सुनो। जब चोर और डाकू, शिक्षक व यौगिक गुरूओं के रूप में हों, जब पारम्परिक धर्म, आर्थिक गतिविधियों अथवा निर्जीव आज्ञा पालने में डूब रहे हों, जब 'दिव्य, परमात्मा, पवित्र आत्मा' जैसे शब्द व्यर्थ हो गये हों, जब ईमानदार साधक, मूर्ख एवं दूषित लोगों के बीच अकेला पड गया हो, ऐसे समय में मुझे आपको बताना है कि आप अपने मस्तिष्क को उस विकास की ओर जागृत करो जो वर्तमान समय में दैवी माँ प्रकट कर रही है। इसमें कोई शक नहीं है कि सत्य, विश्वास व अविश्वास से परे है-यह सिर्फ

निर्विचार बोध में ही अनुभव किया जा सकता है क्योंकि वहीं सत्य विद्यमान होता है। फिर हममें से कुछ जिन्हें इसका अनुभव नहीं हुआ है, हम कुछ बातें उनसे कह सकते हैं :

वह ऐसी शिक्षक हैं जो परम ज्ञान दिखानी हैं तथा जो अपने शिष्यों को अवसर देती हैं कि वे उनकी शिक्षाओं की प्रामाणिकता प्रयोग द्वारा जाँच लें। वह ऐसी शिक्षक हैं जो अपने शिष्यों को सिर्फ सिखाने की बजाय उनकी चेतना को नये आयाम में रूपांतरित कर देती हैं। इस प्रकार का शिक्षक ही ज्ञान की नई श्रृंखला शुरू कर सकता है जिसमें विज्ञान, दर्शन व आध्यात्मिकता मिलकर एक समग्र चिंतन बन सकते हैं। जाहिर है आपको आश्चर्य होगा : यह शिक्षक कौन हो सकता है?

इसका उत्तर जानने का एक रास्ता है तथा प.पू.श्रीमाताजी इसे निम्न प्रकार से व्यक्त करती हैं :

''इससे आसान कुछ नहीं कि कमरे में बत्ती जला दी जाये। आपको सिर्फ बटन दबाना है। लेकिन इसके पीछे बहुत बड़ी यांत्रिकी है जो इसे चलाती है : तार, बिजली-घर तथा वैज्ञानिक खोज की संपूर्ण प्रक्रिया जिसने बिजली उपयोग को संभव बनाया: बिजली की खोज के पीछे एक लंबा इतिहास रहा है। ठीक इसी प्रकार, एक बहुत गतिमान संस्था है जिसके फलस्वरूप आत्मसाक्षात्कार घटित होता है; हमें सबसे पहले अपनी रोशनी का स्विच ऑन करना चाहिये तथा फिर उसी प्रकाश के माध्यम से हम बेहतर ढंग से इस यांत्रिकी को समझ पायेंगे।''

इसलिए प.पू.श्री माताजी आपको आमंत्रित करती हैं कि आप पहले अपना आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करें, फिर अपने आपको देखें। किन्तु हम, जो उनके अनुयायी हैं, उनके बारे में कुछ और बताना चाहते हैं।

आधुनिक मनोविश्लेषण इस सत्य पर जोर देता है कि स्वप्न अचेतन के महत्वपूर्ण संदेश लाते हैं। असंख्य लोग जो प.पू.श्री माताजी से मिलने आते थे, उन्हें पहले पूर्व सूचना देने वाले स्वप्न दिखाई दिये। रूस्तम, आक्सब्रिज

के हैं, मनोविज्ञान के शिक्षित डाक्टर हैं - कई स्वप्नों को याद करते हैं। प.पू.श्रीमाताजी से मिलने के पहले वाली रात को उन्होंने यह स्वप्न देखा:

''पहला दृश्य - मैं एक दोस्त से गहरी निराशा में लड़ रहा हूँ। (यह मित्र स्वयं मेरा प्रमुख हिस्सा है, जिससे मैं खुद की जोड़ नहीं पा रहा हूँ)।

दूसरा दृश्य- मुझसे कोर्ट में इस मित्र के विरुद्ध गवाही देने के लिए कहा जाता है। कोर्ट की कार्यवाही एक रानी के आने से रुक जाती है। मुकदमें का अंत हो जाता है।

तीसरा दृश्य - मैं एक भारतीय महिला से मिलता हूँ, जिसकी आयु ४५ से ५० वर्ष के बीच है। जिसने लाल व सुनहरी साड़ी पहन रखी है तथा वह मुझे नृत्य करना सिखाती है। हम एक-दूसरे के सामने नृत्य करते हैं तथा मुझे मुक्ति का एक जबरदस्त अहसास होता है।

चौथा दृश्य - मैं अपने मित्र से दुबारा मिल जाता हूँ, जो हीरो बन गया है तथा मैं उसे ठीक कर रहा हूँ।''

पूर्वाभास जागृत अवस्था में भी होते हैं। प.पू.श्रीमाताजी से मिलने के पूर्व शीला, डेजी के फूल ले जाया करती थी। इससे ध्यान में मदद मिलती थी। प.पू.श्रीमाताजी का प्रथम ईसाई नाम डेजी है। उसे वह दिन याद आते हैं, जब वो घंटो तक बड़े ध्यान से एक भारतीय महिला का चित्र बनाती थी, जिससे वह कभी मिली ही नहीं थी। इन सबसे उपर जब वह उस घर के समीप से गुजरती थी, जहाँ श्रीमाताजी आत्मसाक्षात्कार दिया करती थीं, उसे कुछ जबरदस्त अहसास होता था। 'मुझे समझ में नहीं आया कि क्या हो रहा है। मेरिलबोन रोड के उस हिस्से से वापस लौटते समय, मैं एक अलग आयाम में होती थी। अनुभव अधिक सूक्ष्म होते थे, आवाज बेहतर आती थी, रंग चमकीले दिखते थे। मैं आश्चर्यजनक रूप से प्रसन्न व आनन्दित थी।'

जेम्स हमें बताते हैं कि, 'केक्सटन हॉल में सहजयोग कार्यक्रम में जाते समय, मैंने अपने अंदर आनंद का अनुभव किया, सिर अंदर से बड़ा हल्का व साफ हो रहा था। मैंने खुद से कहा ''यह तो एक बड़ी बात है'' और जल्दी से पहुँचा।'

जब चेतना के असीमित क्षेत्र के शून्य में कोई यात्रा करता है, तो उसके लिये तैयार नक्शे नहीं होते हैं, जो बतायें कि कौन सी सड़क पर जाना है व किसे छोड़ना है। यहाँ गलती करना कहीं आसान है, जिससे पूरी जिन्दगी खराब हो सकती है। सबसे सुरक्षित नियम यही है कि अपने अनुभव पर विश्वास किया जाये। लेकिन, कुछ अनुभव गलत दिशा में ले जा सकते हैं। पाठक की खोज को मदद के लिये यही एक रास्ता है तथा मैं उसे कुछ सच्ची बातों की जानकारी देकर उसके विश्वास को बढ़ा सकता हूँ।

- भारत में, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने जंगल के बाहर आकर प.पू.श्रीमाताजी के बारे में भविष्यवाणी की हैं। उदाहरण के लिये गगनगिरी महाराज, जिनका आश्रम कोल्हापुर के नजदीक है, ने कहा कि उन्होंने प.पू.श्री माताजी के जन्म के समय श्री चक्र को पृथ्वी पर उतरते हुये देखा था। वे कहते हैं कि श्रीमाताजी साक्षात आदिशक्ति हैं! साथ ही उनकी समझ में नहीं आता कि वे उन लोगों को आत्मसाक्षात्कार क्यों दे रही हैं जो इसके लायक नहीं हैं। उन्हें इसे प्राप्त करने में हजारो वर्ष लगे थे, जो वे मिनटों में प्रदान कर रही हैं।

- असंख्य लोगों ने प.पू.श्री माताजी का ईश्वरीय रूप में दर्शन किया है। एक बार की बात है, लंदन के सहजयोगियों का एक छोटा समूह प.पू.श्री माताजी के सम्मुख ध्यान कर रहा था। अचानक हममें से एक व्यक्ति उठकर कमरे से बाहर चला गया। बाद में हमने इसका कारण पूछा, उसने कहा कि उसे ऐसा लगा कि सफेद कपड़ों में हजारों लोग हमारे आसपास हैं! उनकी शक्ति से वह पवित्र हो गया।

- ब्यूनस आयर्स में एक महिला, जिसे भारतीय ग्रंथों का ज्ञान नहीं था, ने प.पू.श्रीमाताजी के सम्मुख आंनद मग्न होकर बैकुण्ठ लोक में श्री लक्ष्मी का वर्णन करना शुरू कर दिया।

- मार्च १९७६ में प.पू.श्री माताजी काठमांडू में मेरे बगीचे में बैठकर आकाश की ओर देख रही हैं। मैं उनके समीप बैठा हूँ। मैं उनकी ओर देख रहा हूँ। अचानक प.पू.श्रीमाताजी के आसपास बगीचे की सीमायें विलीन होने

लगी। मैं महसूस करता हूँ कि सभी सीमायें खत्म हो रही हैं और केवल एक उपस्थित शेष रह गई, जो मेरे चित्त में अंकित हो गई, विलीन होते बगीचे को छोडकर मेरी निगाहें प.पू.श्रीमाताजी की ओर जाती हैं। तथा मैं देखता हूँ कि एक पुरुष या कहना चाहिये की परमात्मा का चेहरा सामने है, एक चेहरा जिससे बढ़कर कुछ नहीं हो सकता, जिसका रंग हल्का नीला है, सौंदर्य तथा ज्ञान से प्रदीप्त होता हुआ जिसके लिये कोई शब्द नहीं हैं। मैं विस्मित, श्रद्धामय तथा वशीभूत हो गया हूँ। याद आया...हाँ, यह आप ही हैं, मैंने आपको पहले भी देखा है, इस ईश्वरमुख की याद मुझे है....तथा फिर मैं धरती की ओर झुकता हूँ क्योंकि मुझे लगता है मेरी आँखे इतनी शुद्ध नहीं हैं कि मैं उन्हें देख सकूं। जब मैं परम पूज्य श्रीमाताजी को पुन: देखता हूँ तो पाता हूँ कि हर चीज़ ठीक हो गई है। मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या हुआ था। सहजता से वे कहती हैं: ''ये श्रीकृष्ण थे।''

- ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जब प.पू.श्री माताजी ने लोगों के सामने प्रकृति की शक्तियों जैसे वायुमंडलीय दशाओं, समुद्र आदि को नियंत्रित किया है। वे कहती हैं कि कैन्सर का इलाज केवल सहजयोग ही कर सकता है। भारत के कई भागों में प.पू.श्रीमाताजी ने असंख्य कैन्सर रोगियों को ठीक किया है। ये रिकार्ड प्रतिष्ठित डाक्टरों की मेडिकल रिपोर्ट द्वारा प्रमाणित हैं। मुंबई, दिल्ली आदि नगरों में सहजयोगियों ने ही कई प्रकार की बीमारियों को ठीक किया हुआ है।

- झूठे गुरूओं के शिष्य जब उनके सामने आते हैं तो वे हिलने तथा काँपने लगते हैं। यही हाल पागल खाने से आए मरीजों का होता है। फिर भी श्रीमाताजी में वह शक्ति है जो उन्हें करुणा और प्रेम से शांत कर देती हैं।

- सिर्फ उनकी ओर देखने मात्र से लोगों ने अपनी आँखों की ज्योति ठीक की है। उनका आज्ञा चक्र छूने से हमने निर्विचार चेतना का अनुभव किया है; उनकी पीठ पर (कोट के उपर) सिर्फ चक्रों को छूने से हमने अपनी अंगुलियों में सरसराहट अनुभव की है, उनकी ओर हाथ फैलाने से हमें ठंडी हवा का अनुभव होता है, उनकी वाणी सुनने से हमें अपनी रीढ़ में से कुछ

उपर उठता लगता है, उनकी ओर देखने से हमें ठंडापन अनुभव होता है।

- उनके चरणों में साष्टांग दण्डवत करते हुये लोगों की झुकी पीठ पर कुण्डलिनी की धड़कन सैकड़ों लोगों ने देखी है। उन्होंने इस धड़कन को त्रिकोणात्मक हड्डी व विभिन्न चक्रों पर देखा है। यह सिर्फ तब होता है जब साधक प.पू.श्रीमाताजी के चरणों में या उनके सामने होता है। हमने यह देखा है और सुना भी है जब प.पू.श्रीमाताजी मंत्रोच्चार करती हैं तो प्रतिक्रिया स्वरूप संबंधित चक्र में धड़कन शुरू होती है तथा यह रीढ़ की हड्डी के मार्ग से आगे बढ़ती है। जब वह अपना हाथ किसी के सिर पर रखती हैं, तो साधक की पुतलियाँ फैल जाती हैं तथा हम अपने हाथों से उसके सिर के उपर धड़कन महसूस कर सकते हैं। कुछ देर बाद हम उसके तालू के उपर की झिल्ली (सहस्रार) से ठण्डी या गर्म हवा का झोंका बाहर आता महसूस कर सकते हैं।

-प.पू.श्री माताजी के सामने देवी दुर्गा की स्तुति या माता मेरी की धार्मिक प्रार्थना करने से, कभी-कभी चैतन्य लहरियाँ इतनी बढ़ जाती हैं कि हमारे हाथ बर्फ के समान ठंडे हो जाते हैं। इन अवसरों पर हम बहुत गहरे ध्यान में चले जाते हैं।

यह सब क्या है? प.पू.श्री माताजी कौन हैं?

प.पू.श्री माताजी निर्मला देवी का जन्म बसंत ऋतु में, २१ मार्च १९२३ को दोपहर के १२ बजे, भारत के ठीक मध्य में स्थित प्रांत छिंदवाड़ा में हुआ था। उन्होंने अपने जन्म के लिए एक भारतीय ईसाई परिवार को चुना। उनके पूर्वज राहुरी, नंदगांव के महान सम्राट, 'शालिवाहन' थे। प.पू.श्रीमाताजी के पिता बहुत उँची साक्षात्कारी आत्मा थे। वह उनके गुरू थे, जिन्होंने प.पू.श्रीमाताजी को आधुनिक मनुष्य के कार्यों की जानकारी दी। वह महान चरित्र व सम्मान के व्यक्ति थे तथा सुसंस्कृत मानव व्यवहार के महान आदर्श थे। उनकी उदारता तथा समग्रता का सब जगह सम्मान होता था तथा वह स्वतंत्रता आंदोलन के महत्वपूर्ण अंग बन गए थे। वह केन्द्रीय विधान परिषद के एकमात्र ईसाई सदस्य थे। यह महान बुद्धिजीवी बहुत सी भाषायें जानते थे तथा ग्यारह भाषाओं पर पूर्ण अधिकार रखते थे। उन्हें पूरी भगवद् गीता

कंठस्थ थी, तथा कुरान का उन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया था। उन्हें कला, साहित्य, भाषा व विज्ञान के करीब-करीब सभी क्षेत्रों की जानकारी थी। इसके बावजूद वे अत्यंत सरल व संकोची थे।

प.पू.श्रीमाताजी की माता एक सुसंस्कृत महिला थीं, वे गणित में आनर्स थीं, तथा उन्होने निजी व सामाजिक धर्म के मूल्यों का दृढ़ता से पालन किया। यह कहा जाता है कि उन्होने जीवन में कभी भी झूठ नहीं बोला तथा वे कभी भी झूठ से समझौता सहन नहीं करती थीं। उन्होने अपने बच्चों को शिक्षा दृढ़ता व प्रेम से दी व घरेलू व्यवस्थाऐं शाही गरिमा के साथ कीं। उन्होने इस धनी किंतु त्यागी परिवार के प्रत्येक आश्रित की देखभाल बड़ी सहृदयता से की। वह युवा व वृद्ध सबकी एक समान माता थी।

उनकी माँ जब गर्भवती थीं तो उन्हें खुले जंगल में शेर या चीता देखने की तीव्र इच्छा हुई। कोई भी उनका ध्यान इस इच्छा से हटा न सका। एक दिन पडोसी राज्य के राजा ने उनके पति को आमंत्रण दिया कि वे एक नरभक्षी चीते के शिकार पर साथ चलें। अतः उन्होंने अनमने मन से अपनी पत्नी को साथ ले जाना स्वीकार किया। अगले दिन वे चीते के आने को लेकर एक विचित्र भावना के साथ मचान पर बैठ गये। रात्रि हो गई और पूरा इलाका पूर्णिमा के चांद की रोशनी में नहा उठा। थोडी देर बाद जंगल में एक गहरी शांति छा गई, तभी एक विशाल चीता जंगल से प्रकट हुआ और इस दृश्य से माँ खुशी और आनंद से भर गई। उन्होंने अपने पति को इस जंगली जानवर को मारने से मना किया। वे मान गये और उन्होंने मुस्कुराते हुए पूछा, 'क्या देवी दुर्गा तुमसे जन्म लेने वाली हैं?' उस शाम के बाद वह चीता अचानक जंगल से गायब हो गया।

जब प.पू.श्री माताजी का जन्म हुआ, तब वह इतनी स्वच्छ थीं जैसे सुगंधित पानी में नहाई हुयी हों। प्रसन्नता से मुस्कराती व जगमगाती बच्ची को देखकर उनकी दादी ने खुशी के मारे कहा, 'यह निष्कलंक है।' उनकी माता को यह प्रसव बिना किसी कष्ट के हुआ था तथा वे शीघ्र ही घर की जिम्मेदारी फिर से देखने लगीं। चूँकि निष्कलंक एक बालक का नाम होता है, अतः

प.पू.श्रीमाताजी का नाम 'निर्मला' रखा गया।

ईस्टर के सोमवार को आनंद के साथ इस चमत्कारी बच्चे का,'बाप्तिस्मा' किया गया। बग्घी से घर वापस लौटते समय, अचानक घोड़े किसी बात से डर गये व हिंसक हो गये तथा पूरी बग्घी उलट गई। जहाँ हर कोई छोटी बच्ची के जीवन के लिए चिंतित था वहीं पास में खड़ी महिलाओं को इस बग्घी के मलबे से प.पू.श्रीमाताजी हमेशा की तरह मुस्कराती हुई मिलीं।

बालिका निर्मला का बचपन बड़ी खुशी से बीता। वह सबकी प्रिय थी। यहाँ तक कि आज भी लोग याद करते हैं कि वह कितनी प्यारी व सुंदर बच्ची थी। सभी पशु व पक्षी उसके मित्र थे। कभी-कभी ऐसा होता था कि साँप भी उनके हाथों से दुलार प्राप्त करने के लिये चला आता था और यह दृश्य घर में काम करने वाली महिलाओं में भय उत्पन्न कर देता था। कई बार वह घर की एकांत जगह में गहरे ध्यान में बैठती हुई मिलती थी। उनका चेहरा अन्दर के आनंद से प्रफुल्लित रहता था। किन्तु ज्यादातर समय वे ऊर्जा से भरी हुई रहती थीं और अपने साथियों को नाटक, गीत एवं नृत्य के लिये प्रेरित करती रहती थीं। जब वह सात वर्ष की थीं तो उन्होंने एक नाटक में श्रीकृष्ण की भूमिका की। उनकी नाटक की भूमिका की मधुरता व सजीवता से भीड़ सम्मोहित हो गई। उनके अभिनय की भव्यता से देवताओं की स्वाभाविकता व एकरूपता की भावना प्रकट हो रही थी। उन्होंने शीघ्र कला, संगीत व सौंदर्य की अन्य विधाओं में अपनी रुचि दिखाई। उन्हें प्रत्येक स्वाभाविक व मौलिक चीज़ से प्रेम था। वे अपने स्कूल चप्पलों को हाथ में लेकर जाती थी ताकि भूमि-स्पर्श हो सके। उनके पिता ने अपने नये ड्रायवर से हंसते हुए कहा, जिसे उन्हें लेने जाना था, 'मेरी बेटी को पहचानना बहुत सरल है। वही एक लड़की है, जिसके हाथ में चप्पल रहती हैं।'

छुट्टियों में छोटी निर्मला अक्सर गांधीजी के आश्रम में जाती थीं। महात्मा गांधी उनके नाक नक्श-आधे मंगोल, आधे भारतीय होने के कारण उन्हे 'नेपाली' कहकर पुकारते थे। वे आश्रम की हर गतिविधि में हिस्सा लेती

थीं। कोई भी समझ सकता है कि उनकी तेजोमय उपस्थिति ने गांधीजी को शांतिपूर्ण ढंग से कितनी प्रेरणा दी होगी। गांधी जी के अधिकतर सिद्धांत: संतुलित उत्पादन, समाज, धर्म, सरलता, सभी धर्मों की समग्रता आदि 'सहज संस्कृति' की पूर्व सजावट थे।

जब विश्वविद्यालय जाने का समय आया, तो निर्मला ने चिकित्साशास्त्र की पढ़ाई चुनी: वह जानना चाहती थीं कि मानव ज्ञान कहाँ तक पहुँच पाया है। कुछ सप्ताह पूर्व मैं लंदन में व्यक्तिगत रूप से, उनके चिकित्साशास्त्र के वृद्ध प्रोफेसर से मिला। उन्हें निर्मला बहुत अच्छी तरह से याद थी। उन्होंने गौरव से उन्हे याद किया कि वे उनकी बहुत ही आज्ञाकारी तथा प्रतिभाशाली विद्यार्थी थीं। सौभाग्य से मैं उनके विद्यालय तथा कालेज के सहपाठियों से मिला। मैं उन लोगों के निर्मला के प्रति अत्यंत सम्मान व प्रेम से बहुत प्रभावित हुआ।

स्वतंत्रता संग्राम के बाद इस युवा महिला ने चंद्रिका प्रसाद श्रीवास्तव से विवाह किया, जिन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा का महत्वपूर्ण सदस्य बनना था। बाद में वे संयुक्त राष्ट्र प्रशासन की एक महत्वपूर्ण शाखा के प्रधान चुने गये। उनके ससुराल वालों ने कहा कि, 'वास्तव में वे गृहलक्ष्मी हैं', जब से वह परिवार में आई है तब से श्रीवास्तव परिवार में धन-सम्पत्ति व कृपा की वर्षा हो रही है। उनके सभी संबंधी उनकी प्रशंसा करते हैं। यह बताना असंभव है कि वह अपने परिवार की कितनी चिंता करती हैं या उनका परिवार उनकी कितनी प्रशंसा करता है।

एक प्रतिष्ठित आध्यात्मिक अगुआ होने के बावजूद, जिनकी विश्व भर के लाखों लोगों द्वारा अराधना की जाती है, प.पू.श्रीमाताजी अपने पति की अत्यंत आज्ञाकारी हैं व उनका बहुत सम्मान करती हैं। वे उनके सरकारी कार्यों में मदद के लिए तत्पर रहती हैं तथा जरूरत पडने पर अपने सम्मान में आयोजित कार्यक्रमों को भी छोड़ देती हैं। उनके पति के बहुत से मित्रों ने कहा है कि उन्होंने अपने जीवन में कभी ऐसी आदर्श पत्नी नहीं देखी है, न ही सुनी है। मुझे उनकी विनम्रता पर आश्चर्य होता है जिसके सहारे वे अपनी वैवाहिक

जीवन की मुश्किलों का सामना करती हैं। वाकई में, उनके पति इतने व्यस्त रहते हैं कि वे कई बार अकेली रह जाती हैं। किन्तु वे किसी भी चीज़ के लिये शिकायत नहीं करती हैं तथा अपने परिवार की खुशी-खुशी देखभाल करती हैं। उन्होने एक बार कहा, 'यह आवश्यक नहीं है कि लम्बा समय साथ बिताया जाये, इसकी बजाये, साथ के थोडे क्षण ही गहराई के साथ बिताये जायें'। यह उनका एक तरीका है। आदर्श पारिवारिक संबंधों को बनाये रखने के लिये वे बहुत ध्यान रखती हैं। उनकी आध्यात्मिक शिक्षाओं में परिवार का महत्व सर्वश्रेष्ठ है तथा उनका जीवन भी इसी कहानी को बयाँ करता है। प.पू.श्री माताजी निर्मला देवी एक पत्नी हैं, माँ हैं व नानी हैं, फिर भी वे अपना समय पारिवारिक जीवन, सामाजिक उत्तरदायित्व व सहजयोग के लिये पूर्ण रूप व गहनता से देती हैं-ईश्वर ही जानता है कि वे ये सब कैसे करती हैं। प.पू.श्री माताजी की दोनो बेटियाँ हजारों साधकों के साथ अपनी माँ का प्यार बाँटती हैं, जो भिन्न रूप में किन्तु वास्तविक रूप में उन पर निर्भर हैं। प.पू.श्री माताजी ने उनकी कुण्डलिनी जागृत की है व उन्हे समग्र चेतना का दूसरा जन्म दिया है। फिर भी वे अपना परिवार, बच्चों व नातियों का ध्यान रखना कभी नहीं छोड़तीं। वास्तव में वे उनके साथ, खेलना बहुत पसन्द करती हैं। वह प्रत्येक व्यक्ति को, जिसकी वह देखभाल करती हैं, एक समान माता का प्रेम देती हैं। जब उनके पति भारतीय जहाजरानी निगम के अध्यक्ष थे, निगम के कर्मचारी कहते थे, ''श्रीमाताजी हमारे लिये बहुमूल्य हैं तथा वे हमारे लिये माँ के बराबर हैं। उन्ही के कारण हमें हमेशा लगा कि हम सब एक ही परिवार के सदस्य हैं।''

जो लोग उन्हें बचपन से जानते हैं वे उन्हें अच्छी तरह से याद रखते हैं तथा उन्हे बहुत प्रेम करते हैं। उनके पति की ओर से तथा उनके पिता की ओर से जब भी लोगों को उनके कार्यक्रम के बारे में पता चलता है तो वे दूर-दूर से उस कार्यक्रम में आते हैं। उन्होंने हमें प.पू.श्रीमाताजी के माधुर्य, प्रेम, गरिमा एवं उदारता के विषय में बहुत सी कहानियाँ सुनाई हैं। उन सभी को यह विश्वास है कि वे परमेश्वरी हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्होने उनके इस रूप

को उनकी छोटी आयु में ही पहचान लिया था।

प.पू.श्रीमाताजी के पति, जो एक बहुत ही बुद्धिमान व नेक इन्सान हैं, बौद्धिक रूप से इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि एक दैवीय व्यक्तित्व के ज्ञान को यूं ही नहीं लिया जाना चाहिये। यद्यपि वह यह जानते हैं कि उनकी पत्नी असाधारण महिला हैं, किंतु आज तक उन्हे यह मालूम नहीं है कि वे वास्तव में कौन हैं? यह उदाहरण उन सहजयोगियों को धैर्य की शिक्षा देता है कि जो तुरंत ही परमात्मा की महिमा को एक बार में जान लेने की चाह रखते हैं। कुछ वर्ष पूर्व सहजयोगियों के एक समूह ने श्रीमान सर चंद्रिका प्रसाद श्रीवास्तव का साक्षात्कार लिया। उन्होने अपनी पत्नी के बारे में बड़ी प्रशंसा करते हुये कहा:

'जब से हम साथ रह रहे हैं निर्मला एक समर्पित पत्नी रही हैं। हर किसी के जीवन में आने वाली, कठिनाईयों एवं विपत्तियों के समय में वे चट्टान की तरह अडिग हो जाती हैं। उनकी अनेक विशेषताएं हैं, किन्तु कुछ एक का ही जिक्र करना चाहूँगा। सबसे पहले व सबसे अधिक उनकी खासियत है-निष्कपटता:उनकी अबोधिता। वे कभी-कभी लोगों को यातना देने के तौर-तरीकों को समझ नहीं पाती हैं। उनका हृदय गरीबों व जरूरतमंदों के लिए प्रेम से भरा हुआ है। वे गरीब बच्चों की भूख नहीं देख सकतीं। उनको देखकर उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है। वह बहुत उदार हैं तथा वह अपनी चीज़ें दूसरों को बड़ी खुशी से दे देती हैं। उन्हें भौतिक वस्तुओं से बिल्कुल प्रेम नहीं है। उनकी निजी आवश्यकताऐं बहुत कम हैं तथा उनका निजी खर्च लगभग शून्य है।

अपनी निजी आदतों में भी वह बहुत अनूठी हैं। वह किसी भी वातावरण में बिना तकलीफ के आराम से रह सकती हैं। उनके भोजन में कुछ भी दिया जाये, वे बड़े आनंद से खाती हैं, चाहे भोजन कैसा भी बना हो। यह प.पू.श्रीमाताजी का बड़ा उदार तरीका रहा है कि उन्होंने अपने पति को सहजयोग करने के लिये कभी नहीं कहा। उनकी पुत्रियों ने हमें बताया कि उन्होंने कभी कोई भी प्रतिबंध उन पर नहीं लगाया तथा उन्हें पूरी स्वतंत्रता में

शिक्षा दी। किन्तु वे प्रत्येक से उम्मीद रखती हैं कि वह एक सदाचारी जीवन व्यतीत करें-उनके घर में शराब, जुआ आदि नहीं होता।

हमने प.पू.श्रीमाताजी को कभी कोई कटु वचन कहते नहीं सुना। उनकी संगति में रहते हुये व्यक्ति भूल जाता है कि परमात्मा का एक विनाशकारी रूप भी होता है। क्योंकि वह इतनी मधुर एवं सरल हैं कि कोई अविवेकी व्यक्ति आसानी से धृष्टता कर बैठता है। यहाँ तक कि जब हममें से कुछ लोग नर्क के रास्ते में आधे से अधिक जा चुके थे, फिर भी वे कहतीं, ''यदि आप गंदे हो, तो भी आप गंदगी नहीं हो। दैवी आपको स्वच्छ कर सकती हैं तथा करेंगी।' तथा 'पाप से घृणा करो पापी से नहीं।'' वे चर्चा के लिये हमेशा तैयार रहती हैं, हमारे मूर्ख तर्कों को वे धैर्य से सुनती हैं तथा कई बार कहती भी हैं, 'मुझे इन्सान के तौर-तरीके नहीं मालूम। बेहतर होगा तुम मुझे इनके बारे में बताओ। हांलाकि सच्ची बात यह है कि वे हमारे बारे में हमसे कहीं अधिक जानती हैं। श्रीमाताजी का वर्णन करें तो सबसे प्रमुख शब्द होगा 'धैर्य'। कभी-कभी हम समझ नहीं पाते कि वे कुछ लोगों की अशिष्टता तथा घमंड को किस सीमा तक सहन कर लेती हैं।

हर प्रकार की समस्याओं का धैर्यपूर्वक हल करने का उनका तरीका एक समग्र, संतुलित तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण से अभिव्यक्त प्रेम की क्षमता प्रदर्शित करता है। एक कहानी उल्लेखनीय है। एक दम्पति प.पू.श्री माताजी के पास सलाह के लिए आये। उन्होंने कहा कि वे साथ रहकर दुखी हैं। सबसे पहले प.पू.श्री माताजी ने पत्नी से बात की और कहा, 'पत्नी को सहन करना पड़ता है क्योंकि वह 'धरा (पृथ्वी)' है- जो वह सहन करती है।' पति ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा, 'यह सही है, मैं अपनी पत्नी से कहता हूँ मुझे बर्दाश्त किया करो।' इस पर श्री माताजी ने पलटते हुये पति से कहा, 'तुम एक दमघोंटू व्यक्ति के रूप में क्यों प्रसिद्ध होना चाहते हो।' उन्होने मुस्कराते हुये आगे कहा, 'क्या तुम अपनी पत्नी के प्रेमी नहीं बनना चाहते? मुझे लगता है तुम्हारा बचपन बहुत ही कर्कश रहा होगा, इसलिये तुम प्रेम करने की कला नहीं जानते हो।'

निस्संदेह, जब आवश्यकता पड़े, प.पू.श्री माताजी क्रोध दिखाती हैं। यह क्रोध वह उन लोगों की मदद करने के लिए करती हैं जो अपने आध्यात्मिक उत्थान को अपनी मूर्खता के कारण खतरे में डालते हैं। उदाहरण के लिये वर्ष १९७२ में, जब भारतीय साधकों का पहला समूह बोर्डी, उत्तर मुंबई में इकट्ठा हुआ। प.पू.श्रीमाताजी ने उन पर दो वर्षों तक कार्य किया था, किन्तु कोई भी आत्मसाक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सका था। फिर बोर्डी कार्यक्रम में, चंदूभाई, एक गुजराती सज्जन, ने आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया। कुछ साधक आपस में बड़बड़ाने लगे कि, 'माताजी ने एक गुजराती को आत्मसाक्षात्कार क्यों दिया और हम मराठियों को क्यों नहीं?' जब श्रीमाताजी ने इस बात को सुना तो उन्हें उन लोगों की मूर्खता पर आश्चर्य हुआ तथा उन्हे प्रेम से बहुत फटकार लगाई। अगले दिन उनकी सुधारकारी उर्जा से प्रेरित होकर बहुत लोगों ने आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया। वास्तव में, यह लिखा है कि देवी जो भी करती हैं वह साधकों के आत्म-कल्याण के लिये ही करती हैं।

उनका एक विशेष गुण है जिसे सभी मानते हैं, वह है उनके कुलीन एवं धनी परिवार से संबंधित होने तथा एक बड़े अधिकारी की पत्नी होने के बावजूद उनका दयालु, विनम्र तथा भली होना। वे हर सुबह बहुत जल्दी उठती हैं तथा स्वयं घर के कार्य करती हैं। मुझे बताया गया है कि जब लखनऊ में उनका बड़ा घर बन रहा था, तो उन्होंने खुद ही ५० मजदूरों का खाना बनाया था। चूँकि वे अपने साथ अपने सभी रिश्तेदारों को भी साथ ले आये, अतः इस भोज में करीब २०० लोग हो गए। इस भोज में बहुत अधिक खाना बन गया था, अतः वे बहुत सा भोजन अपने साथ घर ले गये! वे इस प्रकार की छोटी-छोटी व्यवहारिक गतिविधियों में अत्यंत दक्ष हैं, जो आमतौर पर एक आध्यात्मिक व्यक्तित्व में नहीं पायी जाती। वे एक खुशमिजाज पत्नी हैं तथा खाने बनाने में लाजवाब हैं। कई बार हमने उनमें अन्नपूर्णा के दर्शन किये। कुछ समय पूर्व लंदन में, हम एक सहजयोग कार्यक्रम में तथा रात्रि भोज हेतु साथ रहने वाली महाराष्ट्रीयन महिलाओं के

एक घर गये। रात्रि भोज के पश्चात उन लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ कि कम लोगों का खाना बना होने के बावजूद भी कैसे इतने लोगों ने भोज किया और खाना बच भी गया। उन लोगों ने प.पू.श्री माताजी से पूछा, ''हमने केवल बारह लोगों के लिये खाना बनाया था। पच्चीस से अधिक लोगों के खाने के बावजूद कैसे खाना बच गया?'' यह सुनकर श्री माताजी हँस दी। वास्तव में, तत्वों पर उनका नियंत्रण स्वाभाविक है। जब वे बाहर जाती हैं तो मौसम की भविष्यवाणी का कोई फर्क नहीं पड़ता। मौसम श्रीमाताजी की इच्छा को व्यक्त करेगा न कि मौसम विज्ञानियों की। मई के महीने में उन्होने लंदन में कुछ दिनों के लिये विश्राम किया-तेज़ धूप ने सभी रिकार्ड तोड़ डाले। किंतु जब उन्होंने धूप स्नान व छुट्टियों के नाम पर पाप पूर्ण व्यवहार पर चिंता प्रकट की तो गर्मी का मौसम गीला व बादलों वाला हो गया। उनके लंदन आने के बाद ब्रिटन के मौसम का पूरा ढाँचा बदल सा गया है। इसकी पुष्टि किसी माली से भी की जा सकती है। ऊपर वर्णित घटनाओं में उनके सूक्ष्म प्रभाव की झलक देखी जा सकती है, जो देखने-सुनने वाले व्यक्ति को चमत्कारपूर्ण लग सकती है तथा इसका अनुभव करने वालों के दिलों को पुलकित करती हैं।

हमने देखा है कि उनमें समय के अनुसार अपने आपको ढालने की प्रवृत्ति अति मानवीय है। वे खुले में, चट्टान पर भी सो सकती हैं; हमने एक बार गौर किया कि वे एक कार्यक्रम में नौ घण्टे तक एक ही जगह विराजित रहीं। वे ताजगी से परिपूर्ण थीं। उनकी तपश्चर्या राजा जनक की भाँति है, जो महलों में रह कर भी संत थे। उन्हें आसपास के वातावरण, आराम की कोई कमी या छोटी समस्याओं के बारे में शिकायत करते हुए कभी भी नहीं सुना। फिर भी वे हमें समझती हैं तथा हमें ढाढ़स व आराम देती हैं। कैसा भी वातावरण हो, यह संतोषी स्वभाव उन्हे एक महारानी की गरिमा प्रदान करता है।

भारत में एक बार वे एक गरीब स्त्री की झोपड़ी में रुकीं और उसने प.पू.श्रीमाताजी को एक साधारण से बर्तन में भोजन दिया। प.पू.श्रीमाताजी ने बड़े आनंद से भोजन किया। बाद में, कुछ लोगों ने उनसे पूछा कि उन्होंने

क्यों इतना समय इस भिखारिन के साथ बिताया? उन्होंने अपनी आवाज में दर्द के साथ कहा, 'मेरे बच्चों, ऐसा मत कहो, वह मेरे एक अत्यंत प्यारे बच्चे की विधवा है।' बाद में गाँव वालों से पता चला कि वह व्यक्ति देवी भक्त था। एक अन्य अवसर पर वे एक संत से मिलने गई और उसकी गुफा में ज़मीन पर बैठ गईं। जब उनके साथ वालों ने विरोध किया तो प.पू.श्रीमाताजी ने मुस्कराते हुये कहा, 'मैं ज़मीन पर क्यों नहीं बैठ सकती क्या। मैं इस समय एक राजा के महल में हूँ।'

लोगों के साथ व्यवहार में प.पू.श्री माताजी बिल्कुल खुली व स्पष्ट हैं। वे बड़े लोगों का वह सम्मान करती हैं, किन्तु छोटे लड़कों व लड़कियों के साथ वे हँसती हैं तथा मजाक करती हैं। वे बड़ी दिलचस्प हैं तथा हास्य व चुटकुलों से भरपूर हैं। हमारा सबसे बड़ा आनंद यही है कि हम उनके साथ घण्टों बैठकर उनके सानिध्य का लाभ लें। जहाँ तक पुरुषों का प्रश्न है: वे उचित, गरिमामय दूरी बनाकर रखती हैं। महिलाओं के साथ स्नेहमय रहती हैं तथा छोटी लड़कियों के साथ बहुत मुक्त बर्ताव करती हैं। कहा जा सकता है कि अपने स्वभाव की इन असंख्य छवियों में वे लज्जा परिशुद्धता का साकार रूप हैं। वे देवताओं की शुभ कामनाओं का उत्तर देती हैं ''जो लज्जा के रूप में हर प्राणी में विद्यमान रहती हैं अर्थात लज्जा-रूपेण संस्थिता।''

जब प.पू.श्रीमाताजी को किसी झूठे पैगम्बर की निन्दा करनी होती है तब वे यह कार्य शक्तिशाली दृढ़ निश्चय एवं राजसी अधिकार के साथ करती हैं। किन्तु गहराई में वे रोती हैं तथा उन्हें दु:ख होता है। ''यदि वे आपका धन लेना चाहते हैं तो मुझे कोई ऐतराज नहीं है, लेकिन वे आपकी कुण्डलिनी को खराब करते हैं तथा आपसे आपका पुनर्जन्म लेने का अधिकार छीन लेते हैं। सृष्टि की परिपूर्णता, परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त करने की इच्छा की पूर्ति को ये मूर्ख चुनौती देते हैं। वे यह नहीं जानते हैं कि उन्हें इसकी कितनी कीमत चुकानी पड़ेगी।''

जब भी आवश्यकता होती है जन कार्यक्रमों में, वे हमेशा अत्यंत स्पष्ट तरीके से बात करती हैं। जीवन के बने बनाये तरीकों, विश्वासों व सिद्धांतो

पर बिना परवाह किये चोट करती हैं-जब उन्हें लगता है कि ये उनके बच्चों की आध्यात्मिक प्रगति में बाधा है: वो कहती हैं, 'मैं यहाँ वोट लेने नहीं आयी हूँ। बल्कि आपको सत्य बताने आई हूँ।' बहुत से लोग उनके स्पष्ट बोलने के साहस व दृढ़ निश्चय का लोहा मानते हैं। किंतु कभी-कभी हम उनकी सुरक्षा को लेकर चिंतित हो जाते हैं। वे मुस्कराहट के साथ जवाब देती हैं : ''दुनिया की सारी घृणा से बढ़कर प्रेम की शक्ति है।'' एक बार उन्होंने बाल-सुलभ मुस्कराहट के साथ कहा, ''चिंता मत करो, इस जन्म मेरा कोई क्रूसारोपण नहीं होगा।'' कुछ विशिष्ट लोगों ने उन्हें आगाह किया कि झूठे गुरू उनकी हत्या करवा सकते हैं। उन्होंने जवाब दिया, ''इस बार नाटक अलग होने वाला है। तुम क्यो डरते हो? क्या तुमने देखा नहीं है कि दुष्ट लोग किस तरह मेरे सामने काँपने लगते हैं?''

आपको यह बताने में इस पुस्तक के सभी खंड भी काफी नहीं होंगे कि कैसे हमने एक सर्वोत्कृष्ट मानव में एक अति मानव के गुण देखे हैं। वह गुण जिसकी उम्मीद हमें सबसे कम थी फिर भी जो सबसे आनंदकारी लक्षण हमने प.पू.श्रीमाताजी में पाया-वह था उनका हास्य प्रधान गुण। हम उनके आस-पास फर्श पर घंटो तक बैठकर हँसते-खिलखिलातें रहते हैं और उनके सूक्ष्म चुटकुलों एवं जिंदादिल हाजिर-जबाबी का आनंद लेते हैं। वह अक्सर कहती हैं कि वो १० मिनट से अधिक गंभीर नहीं रह सकती हैं। प.पू.श्री माताजी की गहराई निसंदेह अथाह है। किन्तु इस गहराई से आनंद के बुलबुले निकलते रहते हैं। उनकी लीला देखना कितना विशिष्ट और आनंददायी है। एक छोटी सी घटना एक विवेक की कहानी, सौंदर्य की कविता बन जाती है। प.पू.श्रीमाताजी हमारे मस्तिष्क की गहराईयों में स्थित प्रश्नों के उत्तर, खेल-खेल अनायास ही देती हैं तथा हमारे हृदय के मूल्यवान छोटे से कोने को खोल देती हैं। जब कुछ भी न हो तो भी उसमें से श्रीमाताजी शुद्ध सुंदर क्षणों की रचना अपनी सुंदर हास्य डोरियों से करती हैं। वे क्षणों, हृदयों, मनों व घटनाओं को व्यवस्थित रूप में एक सुंदर परदे पर अच्छे से सजा लेती हैं। वाह कैसा खेल है!

एक दिन प.पू.श्रीमाताजी ने एक महान संत, के यहाँ जाने की इच्छा प्रकट की जो एक पहाड़ी पर रहते थे तथा वे तत्वों नियंत्रण रखने के लिये प्रसिद्ध थे।

सहजयोगियों ने श्रीमाताजी से पूछा, 'श्री माँ, मात्र इस आदमी से मिलने आप पहाड पर क्यों चढ़ना चाहती हैं?' इस पर श्रीमाताजी ने कहा, ' चैतन्य देखने के लिये।' सहजयोगियों ने महसूस किया कि पहाड़ के शिखर से ठंडी लहरियाँ आ रही थीं। वे समझ गये जरूर यह परमात्मा का बंदा है। जैसे ही श्रीमाताजी ने उपर चढ़ना शुरू किया, जबरदस्त बारिश होना शुरू हो गई तथा वे पूरी तरह से भीग गईं। यह देखकर गुरू ने वर्षा रोकने की बहुत कोशिश की लेकिन बारिश नहीं रूकी। गुरू बहुत क्रोध में था। जब श्रीमाताजी गुरू के स्थल पर पहुंची तो गुरू ने गुस्से में कहा, 'यह दुष्ट वर्षा हमेशा मेरी आज्ञा मानती थी, किन्तु इस बार मैं इसे रोक न सका। माँ, आपने क्यों मेरी शक्तियाँ छीन लीं?' श्रीमाताजी मुस्कुराईं: 'आपने मेरे लिये साड़ी खरीदी है। अब तो मुझे उसे पहनना ही पड़ेगा।' वो यह भी समझ गये थे कि देवी की भीगी साड़ी से टपकता पानी चैतन्य से परिपूर्ण था, जो उनके स्थल को चैतन्यित कर रहा था।

प.पू.श्री माताजी से मिलने से पूर्व मैंने कभी सोचा नहीं था कि एक दैवी-व्यक्तित्व हास्य से इतना परिपूर्ण हो सकता है। उनके नित्य चमत्कारों, लोगों को रोग मुक्त करने, भाषण देने तथा बैठकों में हास्य हमेशा झलकता रहता है। मैं नहीं जानता कि उनमें इस अनुकरणीय आनंद के गुण के साथ किस प्रकार न्याय किया जाये।

अधिकतर लुका-छिपी का खेल एक नाटक ही है। यही वह खेल है जो देवी साधकों के साथ हजारों वर्षो से खेलती आई हैं। ''मैं उस पक्षी-माँ की तरह हूँ जो अपने चूजों को उडना सिखाने के लिये घोसले से बाहर निकालती है। वह उडकर एक पेड़ के पीछे छिप जाती है तथा उन्हें पुकारती है। बच्चे उनकी ओर दौड़ते हैं, किंतु वह एक दूसरे पेड़ की ओर उड जाती है तथा पुनः उन्हे पुकारती है।'

निसंदेह, छुप जाना माया देवी की उत्कृष्ट कला है। एक महिला ने हमें

बताया कि वे श्रीमती सी.पी.श्रीवास्तव को पिछले बीस सालों से जानती हैं। वह उनसे अधिकतर राजनयिक दावतों तथा स्वागत समारोहों में मिलती थी। वह ऐसी महिला को जानती थी जो बहुत शांत तथा गरिमामय थी जो मुश्किल ही कभी कुछ बोलती थीं। एक दिन किसी आध्यात्मिक कार्यक्रम में श्रीमाताजी को एक जबरदस्त मुखर नेता, कुशल वक्ता, भाषण कला पर अधिकार रखने वाली तथा गहरी अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण महिला के रूप में पाकर वह दंग रह गई। वह समझ नहीं पाई कि इतनी प्रतिभा व बुद्धिमत्ता का एक व्यक्तित्व किस प्रकार स्वयं को धैर्य से एक शांत गृहिणी के रूप में छिपा पाया, जिसने हर समय आधे पियक्कड़ लोगों की डींग मारने वाली बातों को बिना परेशान हुये सुना।

यदि इतना धैर्य संभव है तो सिर्फ इसलिये है कि क्योंकि देवी पूर्ण नम्रता का मूर्तरूप हैं। ''हमें अपने गुणों पर घमंड क्यों हों?'' उन्होंने सार्वजनिक रूप से कभी नहीं कहा कि वे आदिशक्ति हैं। ईसा मसीह ने कहा था कि, 'मैं मार्ग हूँ, मैं सत्य हूँ, मैं जीवन हूँ' और लोगों ने उन्हें इसके लिये क्रूस पर चढ़ा दिया। अब यह समय है, जब उन्हें अपने लिये खोजना होगा। किन्तु हम आपको विश्वास दिलातें हैं: जो इसे खोजना चाहते हैं उन्हे बहुत मदद मिलेगी।

जो भी प.पू.श्रीमाताजी करती हैं, वे इसे पूर्ण लगाव के साथ, पूर्ण निर्लिप्त होकर करती हैं। ऐसा कोई तरीका नहीं है कि उनका या उनके आचरण का वर्गीकरण किया जा सके। हाँ, हम कुछ बाते कह सकते हैं, वे असीमित प्रेम, अनंत शांति, पूर्ण विवेक, राजसी गरिमा तथा बालक के समान परम अबोधिता हैं। वे वह ज्ञान हैं जो मानवीय ज्ञान से परे है। वे सज्जनता, उदारता, निस्वार्थता, सरलता हैं। तथा फिर भी, जब तक इन शब्दों को शुद्ध चेतना के आंतरिक गुण के माध्यम से पुनः नहीं खोजा जाता, तब तक प.पू.श्रीमाताजी के किसी भी कार्य की पूर्णता के बारे में ये शब्द कुछ नहीं कह पाते। वे हमेशा पूर्ण रूप से निश्चिंत हैं तथा वे जो भी करती हैं वह पूर्ण होता है। जब वे अपने नाती-पोतो-आराधना, सोनालिका, आनंद या

अनुपमा के साथ खेलती हैं, जब वे किसी रचना को देखती हैं, जब वे हमसे मिलती हैं, जब वे किसी बैठक को संबोधित करती हैं, जब वे साक्षात्कार देती हैं, वे अपने कर्म में पूर्ण रूप से समायी होती हैं, फिर भी वे उस कार्य में कभी भी लिप्त नहीं होती: उनकी उपस्थिति, जितनी भी गहन हो, वहाँ होने से कभी भी शिथिल नहीं होती। वे पूर्ण रूप से मानव हैं तथा पूर्ण रूप से अति मानव हैं; बौद्धिक समझ रखने वाले लोगों के लिये प.पू.श्रीमाताजी को समझ पाना एक नितांत असंभव बात है। (मैं जानता हूँ मैं क्या कह रहा हूँ) हम बहुत प्रयत्न करते हैं, उपर-नीचे जाते हैं, दांये-बांये होते हैं तथा हमारे हाथ कुछ भी नहीं लगता। किंतु निर्विचार चेतना की समर्पित शांति में हम कुछ समझ सकते हैं। वह यह कि बूंद सागर में समा जाती है। कबीर कहते हैं: 'जब मस्त हुये फिर क्या बोलें।' नानक कहते हैं, 'हे साधक, बिन आपा खोजे, मिटे न भ्रम की काई।'

भारत के वे लोग जिन्हें प.पू.श्रीमाताजी के संपर्क में आने का मौका मिला, वे श्रीमाताजी के स्वभाव की विभिन्न छवियों से बहुत प्रभावित हुये। जो शब्द उनके भावों को व्यक्त करते हैं वे हैं-अबोधिता, कृपा और सरलता। कुछ लोगों को श्रीमाताजी एक प्रेम व करुणा से परिपूर्ण महिला के रूप में दिखाई देती हैं। किंतु कुछ लोग इन प्रारंभिक प्रभावों से परे नहीं जा पाते हैं। अब सहजयोग के माध्यम से एक नई पहचान स्थापित हो रही है। प.पू.श्रीमाताजी एवं सहजयोगियों के बीच संबंधो को रेखांकित करने वाले इन असाधारण सत्य अनुभवों तथा झाँकियों का अनुस्मरण करने के लिये, वास्तव में, एक पूरी किताब भी कम पडेगी। विश्व के तमाम धर्मों, जातियों तथा मतों के सहजयोगियों ने प.पू.श्रीमाताजी को दैवी रूप की विभिन्न छवियों में देखा है। उन्होंने प.पू.श्रीमाताजी को केवल बैकुण्ठ की स्थिति में ही नहीं, अपितु मानव रूप में उनके पिछले अवतारों-श्री सीता, श्री राधा या माता मेरी के रूप में भी देखा है। उनमें से कई लोगों ने उन्हें चेतना के रूप में भी पहचाना है, जिसमें उनकी कुछ शक्तियाँ प्रकट होती हैं। आज बहुत से जन मानस के लोग पुराने मंत्रों एवं भजनों के अर्थ की पुन: खोज कर पाये हैं।

प.पू.श्रीमाताजी चेतना के कोण को इतनी शक्ति से संचालित करती हैं कि मानव अपने मस्तिष्क में दबाव की गति एवं इससे मुक्ति को तत्काल महसूस कर सकता है। ये सब वे सिर्फ एक उंगली घुमाकर, मंत्र पढकर व अपने ध्यान के द्वारा करती है। सिर हल्का हो जाता है, एवं व्यक्ति सामूहिक (ब्रह्माण्डीय) चेतना के विभिन्न आयामों में कूद पड़ता है।

प.पू.श्रीमाताजी ने हमें मंत्रों के पूर्ण विज्ञान से परिचित करवाया है। जब वे कोई मंत्र बोलती हैं तो वह इस रूप में होता है, 'अहं साक्षात्' (आदिशक्ति, जगदम्बा, आदिगुरु इत्यादि-किसी खास पकड़ की शुद्धि हेतु आवश्यकता अनुसार); इसका अर्थ होता है, 'मैं इस शक्ति का मूर्त रूप हूँ।' (आदिशक्ति, ब्रह्माण्ड की जननी, आदिगुरु इत्यादि)। जबकि, हम मंत्र को कहते हैं तो हम उन्हे इस रूप में कहते हैं, 'त्वमेव साक्षात्.....' जिसका अर्थ होता है कि आप ही यह देवी-देवता हैं। मंत्र शास्त्र का विशद् वर्णन करने के लिये एक दूसरी पुस्तक लिखनी पड़ेगी। मंत्रो के शुद्ध उच्चारण एवं वांछित नम्रता से चक्रों की बाधा दूर होती है।

आत्मसाक्षात्कार के पश्चात वातावरण की सूक्ष्म समझ पर सूक्ष्म नियंत्रण प्रारंभ होता है जो सब प्रकार के प्रश्न एवं अनिश्चिताऐं उत्पन्न करता है। धीरे-धीरे इनके उत्तर मिलते जाते हैं तथा अनुभव के द्वारा विश्वास आता है। कभी-कभी अनुभव बड़े व्यवहारिक होते हैं। अपने आदिशक्ति रूप में प.पू.श्री माताजी इस लीला को ऐसे नियंत्रित करती हैं कि हमें संदेह नहीं रहता। यह हमारे अनुभव का फायदा है। किन्तु कलाकारों को उनकी स्वतंत्रता पर छोड़ दिया जाता है। यह अत्यंत सूक्ष्म संबंध है, जिसमें हमें सीखना होता है कि अपने दैवी माता-पिता पर किस प्रकार निर्भर रहा जाये।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण अपने शिष्य अर्जुन से कहते हैं 'योग क्षेमं वहाम्यहम्'- मैं तुम्हारे योग (साक्षात्कार) एवं क्षेम (भौतिक सुख समृद्धि) को देखूंगा। सहजयोग के द्वारा आत्मसाक्षात्कार के बाद हम सभी लोगों का कल्याण हुआ है। यह हममें से प्रत्येक को इतने सारे चमत्कारिक रूपों में हुआ है कि इसका वर्णन करना असंभव है।

रीजिस, जो भौतिकी में स्नातकोत्तर विद्यार्थी था, उसे लीबिया में नौकरी का प्रस्ताव मिला। उसने रिसर्च पूरी कर ली थी किंतु उसने अपनी 'डाक्टरल थीसिस' की अंतिम रूप से नियमानुसार टाईप एवं उसकी बाईंडिंग नहीं कराई थी। वह अपना पेपर लेकर श्रीमाताजी के पास आया और बोला, 'जो कुछ भी हो मुझे इसकी परवाह नहीं है, मैं नौकरी कर लूँगा, जो मैंने लिखा है केवल उसे आशीष दें!' प.पू.श्रीमाताजी ने कुछ क्षण के लिए अपना हाथ उसके टाइप किये हुये कागजों के ढेर पर रखा और कहा, 'ले जाओ।' अगले दिन रीजिस ने टेलिफोन किया और कहा कि परीक्षकों ने सारी औपचारिकताएं पूरी कर दी हैं तथा उसे डाक्टरेट की उपाधि प्रदान कर दी है।

प.पू.श्रीमाताजी एक माँ हैं। उनकी आँखों की मुस्कुराहट में, उनकी वाणी के दुलार में मातृत्व अपने प्यार की पूर्णता, विनम्रता व मधुरता के साथ झलकता है। वे अपने बच्चों को असीमित उदारता के साथ आशीवार्दित करती हैं। यहाँ तक कि दैनिक जीवन के सांसारिक स्तर पर भी सहजयोगियों का भला हो जाता है। उनके स्वास्थ्य में नाटकीय रूप से सुधार होता है। हिप्पी जो पालखी मारकर समय बर्बाद किया करते थे, विश्वविद्यालय वापस आ गये तथा उन्होंने सबसे ज्यादा अंक प्राप्त किये। किसानों को अधिक पैदावार मिलती है, नौकरी पाने वालों को, अच्छी नौकरी मिलती है। आपको वांछित कार मिलती है, उपलब्ध सबसे अच्छा फ्लैट आपको मिलता है, अच्छा व्यापार साझीदार मिलता है। बाहर जाते हैं तो लगता है बसें हमारा इंतजार कर रही हैं। जब भी किसी मित्र से मिलने की इच्छा होती है तो वह द्वार पर हाजिर हो जाता है। ये सब बताना थोड़ा अटपटा लगता है, किंतु ये सब होता रहता है। मेरे भाई को अपनी लॉ की थीसिस के साथ परीक्षक के समक्ष उपस्थित होना था। उसे यह कठिन परीक्षा, अत्यंत कठिन परिस्थितियों में देनी थी। मैंने उसे बंधन दिया और मेरी दो बहनों ने प.पू.श्रीमाताजी से प्रार्थना की। परिणाम यह रहा कि उसे परीक्षा में आश्चर्यजनक सफलता मिली। अभी हाल ही में मेरे एक दोस्त को ऊँचे वेतन में सऊदी अरब में काम मिला था, उसने प.पू.श्रीमाताजी का आभार प्रकट किया। किंतु उसने कहा

कि वह लंदन में श्रीमाताजी का दर्शन नहीं कर पायेगा। थोडे दिन बाद अनुबंध रद्द हो गया तथा उसे उसी वेतन पर लंदन में एक दूसरा काम मिल गया! ऐसा लगता है मानो सभी देवगण हमें सांसारिक जीवन की झूठ-मूठ की परेशानियों से मुक्त करने में लगे हों ताकि हमारा चित्त वास्तव में वहाँ लग सके जहाँ इसे लगना चाहिये।

किन्तु यह स्पष्ट होना चाहिये कि प.पू.श्री माताजी इस पृथ्वी पर मात्र एक विवाह-सलाहकार अथवा नौकरी दिलाने वाली संस्था चलाने नहीं आई हैं। अपनी उदारता में वे हमें आश्वस्त करती हैं जो भी हम मांगते हैं। माँ दे भी देंगी, यदि यह आपके हित में हो। किंतु वे कहती हैं, विवेकी बनो और परम को माँगों।

जो परम है वह विचारों से परे, इच्छा से परे, पहले से सोच लिये सीमित ख्यालों एवं धारणों से परे है। छोटे बच्चों को इस संबंध में इतनी समस्या नहीं होती। प.पू.श्री माताजी के सभी चारों नाती, जन्म से उच्च आध्यात्मिक साक्षात्कारी आत्मायें हैं। हमने सहजयोग में उनसे कई चीज़े सीखी हैं, हांलाकि उनकी आयु केवल ७,६,४ और २ साल थी। उनकी सबसे बड़ी नातिन आराधना ने हमें बताया कि उसे अपनी नानी के साथ सोना पसंद है, क्योंकि उनकी नाक से बहुत शीतल आनंददायी लहरियाँ बहती हैं। बच्चे आपस में व सहजयोगियों को मारते हैं लेकिन वे अपनी नानी पर कभी हाथ नहीं उठाते। उनका नाती आनंद कहता है, 'देवी को कोई नहीं मारता।' ये बच्चे हर दिन अपना सिर अपनी नानी के पैरों में रखना पसंद करते हैं-ये बहुत छोटी उम्र से बिना सिखाये कर रहे हैं। जब भी सहजयोगी घर पर आते हैं, तुरंत ये बच्चे आत्मसाक्षात्कार देने में प.पू.श्रीमाताजी की मदद के लिये उनके समीप पहुँचकर उनकी कुण्डलिनी उठाते हैं, उनके चक्र साफ करते हैं। जैसे ही उनका काम पूरा हो जाता है वे बिना शोर-शराबा किये खेलते चले जाते हैं। प.पू.श्रीमाताजी के प्रति श्रद्धा प्रकट करने का यह उनका एक सहज तरीका है।

हमने जो कुछ प.पू.श्रीमाताजी के बारे में लिखा है वह अविश्वसनीय तथा काल्पनिक लगता है। किन्तु ये घटनायें उन हजारों लोगों के जीवन में घट चुकी हैं जो उनसे मिले हैं। अंत में इसे स्वीकार करना ही सरल है बजाये इस

पर कि अविश्वास किया जाये। सत्य को पहचानने का दबाव तब तक रहता है, जब तक कि सभी संदेह, प्रेममय आनंददायी स्वीकृति में नहीं घुल जाते। यह प.पू.श्रीमाताजी की चमत्कारिक शक्ति है जो इन सभी चमत्कारों को जन्म देती है। इस शक्ति को समझने एवं इसका आनंद लेने की क्षमता उस व्यक्ति की है जो प.पू.श्रीमाताजी को अद्वितीय, सार्वभौमिक एवं परम मानता हो। यह विश्वास करना, स्वीकार करना व पहचानना हमें कठिन लगता है। किंतु हमें लगता है कि इस सत्य को स्वीकार करने का आनंद बहुत जबरदस्त होता है। जब हम जान लेते हैं कि वे आदि माँ है, जिनकी तमाम शक्तियाँ एक व्यक्तित्व में समग्र हैं-हम जान लेते हैं कि इन तमाम तरीकों से वे अपनी स्वाभाविक लीलायें प्रकट कर रही हैं। इस स्वीकारोक्ति के साथ पहेली के सभी हिस्से सुलझ जाते हैं, रहस्य प्रकट हो जाता है, खोज पूरी हो जाती है तथा हम प्रसन्न हास्य मुख तथा आनंददायी समझ के साथ उँची आवाज में गीत गाते हैं।

प.पू.श्रीमाताजी की आश्चर्यजनक कहानियाँ जो हम आपको शुरू से बताते आये हैं, उन पर अविश्वास करने के स्थान पर आपको चाहिये कि आप उन्हे आदिशक्ति के रूप में मानें। उनके इस अवतार का जो चमत्कार है, उसे आप तभी समझ पायेंगे जब आप इस तथ्य को स्वीकार कर लेंगे।

प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों ने देवी का वर्णन निम्न रूप में किया है, इससे कुछ लोगों को देवी का स्वरूप समझने में मदद मिलेगी :

''उस देवी को बारम्बार प्रणाम, जो सब प्राणियों में चेतना के रूप में रहती है।''

''उस देवी को बारम्बार प्रणाम, जो सब प्राणियों में शुद्ध-बुद्धि के रूप में रहती है।''

''उस देवी को बारम्बार प्रणाम, जो सब प्राणियों में शक्ति के रूप में रहती है।'' - (देवी महात्म्य)

शब्द, जिनका अर्थ पूर्णतया छिपा हुआ था, उनका अर्थ चेतना के

आनंद में प्रकट हो गया।

''वे कुछ लोग सौभाग्यशाली हैं जो आपकी सेवा करते हैं''-

''अमृत के सागर के बीच, रत्नों के छोटे द्वीप में, नीप वृक्षों के आनंदवन से जुड़े हुए ,कल्पवृक्षों से घिरे हुए, चिंतामणि पत्थरों से बने महल में, चैतन्य व मोक्ष के बीच, आपका निवास है, जहाँ परमेश्वर की बिछावन पर, शिव का आसन है।'' (श्रीशंकराचार्य सौंदर्य लहरी:८)

बहुत से उदाहरणों में, प.पू.श्री माताजी से प्रथम भेंट निर्णयात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है। अर्नो, जो स्विटजरलैण्ड में रहता है और कानूनी शिक्षा का छात्र है, लंदन में प.पू.श्रीमाताजी से मिलने आया। अपने घर लौटकर कुछ दिन बाद उसने प.पू.श्रीमाताजी को पत्र लिखा : ''मैं पूर्ण रूप से साक्षात्कारी नहीं हूँ, फिर भी मुझे दिये गये परम आशीष से मैं आपको देख सका, आपसे बात कर सका तथा सबसे महत्वपूर्ण कि मैं एक आत्मसाक्षात्कारी बन सका। मुझे लगता है कि मैंने एक सुहावना सपना देखा तथा जब मैंने उठना शुरू किया तो मुझे लगा यह एक सच्चाई है। मैं अपने संपूर्ण हृदय से, पूरी आत्मा व पूरे मन से जानता हूँ कि आप प्रेम की पराकाष्ठा हैं, आपसे बहती हुई चैतन्य लहरियों से मुझे मिलने वाली खुशियों का ज्ञान आपने मुझे दिया है। यद्यपि, मैं जानता हूँ कि अब यह मेरी जिम्मेदारी है कि मैं ध्यान के द्वारा अपने अन्दर उसी खुशी, शांति तथा आनंद को स्थापित कर सकूं जिसका अनुभव मैंने लंदन में किया था। मैं शनिवार की शाम को जिनेवा में, एक रेस्तराँ में खाना खाने गया। मैं अकेला था और अत्याधिक खुशी के कारण मुस्कुरा रहा था। लोगों ने सोचा या तो मैंने पी रखी है या मैं पागल हूँ। हाँ, मैं आनंद के कारण पिया हुआ व पागल था तथा मैं जानता हूँ कि यह आनंद मुझे आपसे मिला है।''

बाम्बे हाईकोर्ट के अधिवक्ता श्री.बी.जी.प्रधान प.पू.श्रीमाताजी की सन् १९७२ की अमेरिका यात्रा के दौरान उनके साथ थे। उन्होंने उन लोगों के कुछ अनुभव लिख लिये जो प.पू.श्रीमाताजी से मिलने आये थे:

कोर्टलेन्ड की श्रीमती जॉएस ए.वरनन जो ओहियो विश्वविद्यालय में

फूड टेक्नोलोजी डिपार्टमेन्ट में प्रोफेसर थीं, वो कभी भी भारत नहीं आई थीं न ही उन्होंने कभी श्री राम व श्री सीता का नाम सुना था। हिंदू धर्म की कोई पुस्तक भी उन्होंने नहीं पढी थी।

जब उनका आज्ञा चक्र खुला तो उन्होंने हमारी देवी माँ तथा अन्य लोगों को इन शब्दों में यूं बात बताई : 'माताजी, मैं देख रही हूँ कि आप साधारण वस्त्रों में दो युवा पुरूषों के साथ जा रही हैं तथा पूरा नगर आपके पीछे चल रहा है। मैं भी आपके पीछे चलने की कोशिश कर रही हूँ तथा आपके साथ होना चाहती हूँ, लेकिन दो युवा पुरूषों ने मुझे ऐसा करने से मना कर दिया। ओह! यह भयानक दृश्य है। मानो कि आप मुझे अपने से अलग कर रही हों। आपका अनुगमन कर रहा पूरा नगर निराश है। यह भयानक है, यह भयानक है, मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर पा रही।' ऐसा कहकर उसने रोना शुरू कर दिया और वो श्रीमाताजी के गले से लिपट गई। बड़ी मुश्किल से श्रीमाताजी ने उसे शांत किया। हमारी माताजी ने मुझसे कहा, ''प्रधान, आप समझ गये होंगे कि यह राम, सीता और लक्ष्मण का विवरण दे रही है जो अयोध्या छोड़कर वनवास के लिये जा रहे हैं। उसका विवरण पूरी तरह से मिल रहा था। फिर मैंने उसे पूरी घटना इसके सही रूप में समझाई और उसे आश्चर्य हुआ कि हमारी श्रीमाताजी उस समय श्री सीता थीं, जो अब फिर से अवतरित हुई हैं।

श्रीमती जेनिस हूवर ओहायो राज्य के यंगटाउन नगर में रहती हैं। जब उनका आज्ञा चक्र खुला तो उन्होंने निम्न वर्णन किया: 'श्रीमाताजी मैं आपको एक झोपडी में बैठे हुये देखती हूँ। मैं आपको झोपड़ी के दरवाजे से देखती हूँ। मैं देख रही हूँ कि आप खाना नहीं खा रही हैं। इसलिये मैं पीतल की प्लेट में कुछ खाने की चीज़ें लेकर अनुरोध करती हूँ, माताजी कुछ खा लीजिए, किन्तु आपने खाने से मना कर दिया। मैं तीन दिन आपके पास भोजन लाती रही लेकिन आपने मेरी बात नहीं मानी। मैं आपको उदासी के भाव बैठा पाती हूँ तथा एक सफ़ेद दाढ़ी वाले व्यक्ति को भी उसी झोपडी में बैठा देखा।'(उसने श्रीमाताजी को सीता के रूप में, वाल्मीकि आश्रम में रहते हुए देखा)। वो कभी भी भारत नहीं आई थी, न ही उसे रामायण के बारे कुछ पता था।

श्रीमान जोसेफ लार्ड ओहायो राज्य के एक्रान में रहते हैं। वे ऍक्रन में मैकेनिकल इंजीनियर हैं। वे ५५ वर्ष के हैं तथा अब चर्च के मंत्री है।

जब उनका आज्ञा चक्र खुला तो उन्होंने निम्न विवरण दिया :

''श्रीमाताजी, मैं एक छ:-सात साल के चुलबुले बालक को देखता हूँ तथा चार या पाँच साथी उसके साथ हैं मैं भी उनमे से एक हूँ। हमने एक के उपर चढ़कर पिरामिड बनाया तथा वह चुलबुला बालक सबसे उपर था। वह छत से लटकते हुये बर्तन को पकड़े हुये था, जिसे वह नीचे लाया तथा उसमें मक्खन जैसी कोई चीज़ थी, जो हमने खाई। इस बीच एक महिला आई और बहुत क्रोधित हुई तथा एक लम्बे कपड़े से उसने हम सबको एक खम्बे से बाँध दिया। इसके बाद श्रीमाताजी वहाँ आई। उन्होंने सुनहरे कसीदे वाली नीली साडी पहनी हुई थी जिसका बार्डर सुनहरा था तथा कमर में मोती आदि जडी करधनी पहन रखी थी। उस स्त्री से अनुरोध करते हुये श्रीमाताजी ने कहा कि बच्चों को खोल दो क्योंकि ये निर्दोष हैं। उस स्त्री ने आपका कहना माना और हमें खोल दिया।'' (उसने श्रीमाताजी को यशोदा के रूप में देखा)।

ये दृश्य अनुभव चेतना की शक्तिशाली सच्चाई के साथ चलते हैं। इस प्रकार का दृश्य प.पू.श्रीमाताजी को, देवी दुर्गा के रूप में देखने का था, जिसके कारण कुण्डलिनी से आनंद की वर्षा मुझे महसूस हुई। अपने साक्षात्कार के एक महीने बाद एक युवा महिला, जिसके दो साक्षात्कारी बच्चे थे ने मुझे पत्र लिखा :

''उस शाम को जब मैं अपने काम से वापस आई, मैं बहुत थकी हुई थी तथा मेरी पीठ में दर्द हो रहा था। मैं अपने बिस्तर पर लेट गई, मेरा सिर व हाथ, प.पू.श्रीमाताजी की तस्वीर की ओर थे। मुझे अनुभव हुआ कि ठंडी हवा मेरे हाथों में आ रही है। कुछ समय के बाद मेरा दर्द ठीक हो गया व मैं बिल्कुल शांत व स्वस्थ हो गई। मैं कुछ देर लेटी रही, उसके बाद बैठी व चित्र की ओर मुड गई। मैं बिल्कुल निर्विचार व शांत थी। इसके बाद यह सब शुरू हुआ। मैंने देखा कि सफेद व नीले प्रकाश की किरणे चित्र से निकल कर कमरे में फैल रही हैं तथा मेरे शरीर से भी निकल रही हैं। मुझे मेरे सिर पर रेंगती

हुई अनुभूति हुई, सुनहरे हार निकल रहे थे व तस्वीर के आसपास चक्कर लगा रहे थे। मुझे अनुभव हुआ कि जैसे मेरे सिर का ऊपरी भाग, पिघलना शुरू हुआ है व मैंने खुद को कहते हुये सुना, हे मेरे ईश्वर! हे मेरे ईश्वर! मुझ पर, परम सुख बरस रहा है तथा मैं तस्वीर को देख रही थी। मैंने ईसामसीह का पवित्र हृदय देखा व बुद्ध का ध्यान में बैठे हुये चित्र देखा। आनंद के आँसू मेरे गाल पर बह रहे थे। मैं नहीं जानती थी यह क्या था और मैं भावुक हो गई थी। मैं रसोई में कुछ काम करने चली गई। मैं पूर्ण शांत थी। जब मैं कमरे में वापिस आई तथा हाथ फैलाकर चित्र के सामने बैठी-प्रकाश व पूर्ण घटना फिर घटित हुई। उस रात मैं बहुत अच्छे से सोई। सबेरे जब मैं जागी तथा खिडकी के बाहर देखा, हर चीज़ चकाचौंध वाली सफेदी के साथ चमक रही थी। रात में बर्फ गिरी थी और सूर्य चमक रहा था।''

आमतौर पर प.पू.श्रीमाताजी दिखने वाली घटनाओं को महत्व नहीं देती हैं क्योंकि वे कहती हैं कि इनसे चित्त सामूहिक अतिचेतन या सामूहिक अवचेतन की ओर खिंच जाता है जबकि व्यक्ति को चाहिये कि वह वर्तमान में ही रहे। आत्मसाक्षात्कार को आत्मा के सत्य में विलीन होता है। इसके आशीष का स्वाद सुख लेने में तथा आनंद प्राप्त करने में है। जो लोग अतिचेतन की ओर झुके होते हैं अथवा भ्रमकारी ड्रग्स का इतिहास लिये होते हैं, उनके बस में नहीं होता कि वे इन दृश्यों से बच सकें।

ऐसा ही कुछ पेट्रिक के साथ हुआ, जब उसने पहली बार प.पू.श्रीमाताजी को देखा, उसने देखा कि चमकीले रंगो की चिंगारी के रूप में चैतन्य लहरियाँ श्रीमाताजी के सिर से निकल कर लोगों के उपर बरस रही हैं। कुछ वर्ष पूर्व हुये एक अनुभव को वह बताता है: 'प.पू.श्रीमाताजी मेरे चक्रों पर कार्य कर रही हैं। वे मुझसे अपनी सांसे रोकने के लिये कहती हैं। फिर कोई चीज़ प.पू.श्रीमाताजी से प्रकट होती हुई दिखाई देती हैं, ये उनकी शारीरिक आकृति से बाहर आ जाती है तथा मेरे सम्मुख खड़ी हो जाती है। यह कहना मुश्किल है कि यह किस रूप की थी, हालांकि कुछ परिचित सी जान पडी, यह मानवीय आयाम से परे; क्या मैं मेरी माता को देख रहा हूँ?

पूरी जगह रोशनी से भर जाती है श्रीमाताजी प्रकाश में विलीन हो जाती है।'

मुझे याद है एक बार कैक्सटन हॉल, लंदन में जन कार्यक्रम के पश्चात प.पू.श्रीमाताजी एक हिप्पी की कुण्डलिनी जागृत कर रही थीं, जो दृश्यों में खो गया गई। श्रीमाताजी ने उस हिप्पी से कहा, 'इन रूपों की ओर मत देखो। अभी मुझे देखो चूँकि मैं वर्तमान में हूँ।' सहजयोगियों के जीवन में इस प्रकार की अनेक चमत्कारी घटनाऐं होती रहती हैं कि मैं यहाँ भारतीय सहजयोगियों की घटनाओं का भी जिक्र नहीं कर पाया। उनकी घटनाओं का वर्णन करने के लिये अनेक खण्ड लिखने पडेंगे। सहजयोग के द्वारा इलाज की हजारों घटनायें चैतन्य लहरियों की शक्ति को व्यक्त करती हैं।

कुवालालुम्पुर में करीब पाँच सौ लोग प.पू.श्रीमाताजी के पास विभिन्न बीमारियों के इलाज के लिये आए। इतने अधिक लोगों को ठीक करने के लिये उन्हे लगा कि भूमि देवी से सहायता ली जाये। श्रीमाताजी ने सभी लोगों को नंगे पाँव जमीन पर खड़े होने के लिये कहा, उन्हें चैतन्यित करते हुये आदि भूमि माँ से विनती करी कि इन लोगों की बीमारियों को वे अपने अंदर ले लें। पृथ्वी चैतन्य-विरोधी लहरियाँ सोख लेती हैं तथा इससे लोगों को आराम मिलने लगा। कई लोगों को उनके हाथों में शीतल लहरियों का आभास हुआ। मैंने खुद उपचार के कई मामले अपनी आँखों से देखे हैं। मुम्बई में एक व्यक्ति अपने बेटे को प.पू.श्रीमाताजी के पास ले गया। उसका बेटा हशिश का आदी हो चुका था। प.पू.श्रीमाताजी ने उस लडके को चैतन्य लहरियों की चिकित्सा दी। अगले दिन दोनो वापस आये। उन्होंने बताया कि कई सालों के बाद लडके ने चैन की नींद ली है, उसके बाद, हशीश की माँग कभी नहीं की। इसी प्रकार तत्काल लाभ की एक घटना लंदन में हुई, जहाँ एक शराबी को उसकी पत्नी एक कार्यक्रम में लाई। उसने एक दिन में शराब छोड दी। मैंने स्वयं देखा है कि एक आदमी जो गठिये से पीडित था, प.पू.श्रीमाताजी के पास बैसाखी के सहारे आता है व आधा घंटे बाद उछलता हुआ बिना सहारे के चला जाता है। कल एक लड़की ने मुझे बताया कि प.पू.श्रीमाताजी से हाथ मिलाते हुये उसे अनुभव हुआ कि एक जबरदस्त शक्ति उनके हाथों से उसके पूरे शरीर में आ

गई है आदि... इस प्रकार के चमत्कार प्रतिदिन हो रहे हैं।

मानव रूप में प.पू.श्रीमाताजी अत्यंत दयालु एवं कोमल हृदय महिला हैं, जो अपना वात्सल्यपूर्ण माँ का प्रेम उस प्रत्येक व्यक्ति को देती हैं जो संवेदनशील है। अत: एक सहजयोगी और प.पू.श्रीमाताजी के मानवीय रूप के बीच संबंध बहुत घनिष्ठ है तथा यह कोमलता तथा प्रेम की शुद्धता को विविध रूपों में व्यक्त करता है। यह एक बच्चे का माँ के प्रति प्रेम है किन्तु साथ ही यह मानव आत्मा का आध्यात्मिक वास्तविकता, जिसका स्वयं वह एक हिस्सा है, के प्रति भी प्रेम है। अत एव, जहाँ तक मैं अनुभव करता हूँ प.पू.श्रीमाताजी के प्रति मेरा संबंध अद्वितीय होने के साथ ही बहुत मानवीय तथा व्यक्तिगत है जो मेरी खुद की चेतना के प्रति एक गहन, पावन तथा घनिष्ठ संबंध को प्रकट करता है।

ध्यान में गहन उतरते हुये, मैंने पाया है कि वहाँ कोई 'मैं', तथा आप, का बोध नहीं होता है, न ही ब्रह्म या ग्रेगोर के लिये कोई भेद है। निर्विचार में जो बोध मुझे होता है वह है-'अस्तित्व'। मेरे भीतर मौजूद वह मानव है अथवा परमात्मा, इस प्रश्न पर मैं विचार नहीं करता, क्योंकि उस स्तर पर यह अपना महत्त्व खो देता है। यदि 'मैं' मेरा अहंकार तथा प्रति अहंकार है तब मैं कह सकता हूँ कि मेरा अस्तित्व खत्म होने लगता है। यदि 'मैं' मेरी आत्मा हूँ तो मेरा अस्तित्व प्रारंभ होने लगता है। चाहे बात कुछ भी हो, 'मैं कौन हूँ?', 'सहजयोग क्या है?', 'श्रीमाताजी कौन हैं?' ये वे प्रश्न हैं जो एकमात्र ध्यान के शून्य में विलीन होने लगते हैं। वास्तव में, यह कहा जाता है कि वह चित्तकला है, हमारे अन्दर स्थित वह भाग जो हममें है वह ध्यान की कला है। तथा उस ध्यान में हम जान सकते हैं कि उन्हें आनंद कालिका क्यों कहा जाता हैं, जिसका अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति में परम सुख एवं आनन्द की कली के रूप में रहने वाली है।

हे पावनी माँ! आप सबसे बड़ी कलाकार हैं। जब हम आपकी ओर देखते हैं, तो हमारे चेहरे आनंदपूर्ण सौंदर्य के साथ चमकते हैं। आप एक महान कीमियागर हैं। जब आपका प्रेम हमारे लिये स्पंदित होता है, तो हम

अपने हृदय में पत्थर को एक बेदाग हीरे में बदलता हुआ महसूस करते हैं।

मनुष्य के लिये किसी दिव्य अवतरण (असली व नकली में भेद कर पाना) को पहचान न पाने का एक कारण इस तथ्य में निहित है कि परमात्मा के संबंध में मानवीय धारणायें हमेशा से एक पौराणिक धुंध में छिपती आई हैं। सच बात तो यह है कि जब हमारे दैनिक जीवन का साधारण विस्तार परमात्मा के प्रति खुला नहीं होता तो, होता यह है कि हम परमात्मा को पौराणिक कथाओं के दूर-दराज इलाके में निर्वासित कर देते हैं। हमारे लिये धर्म उन कर्मकाण्डी का पृथक बंडल बन जाता है जिन्हें व्यवसाय और पारिवारिक जीवन के बीच सम्पन्न किया जाता है। यदि, फिर भी, परमात्मा अथवा दिव्य नाम की कोई चीज़ है तो क्या इसे हमारे दैनिक जीवन में व्याप्त नहीं हो जाना चाहिये। क्या उसे बहुत ही मानवीय ढंग से एक मानव-जन्म लेकर हमसे जुड़ना नहीं चाहिये? पाप का निराशाजनक तर्क यह है कि जितने गलत आचरण हम करते हैं, उतना ही कम हमें हमारे दिव्य स्वभाव का बोध हो पाता है। साथ ही हम सोच ही नहीं पाते कि परमात्मा हमें अपना बच्चा मानता है तथा वह उसी ढंग से हमें पालने की इच्छा रखता है। परमात्मा हमारा पिता तथा हमारी माता है, क्या इस बार माता ने अवतार लिया है? यदि हाँ तो निश्चय ही यह परम मानवीय है।

''केवल आप, माँ, इस कलियुग में अवतार ले सकती हैं।'' रामकृष्ण यह कहकर खुशी से गदगद हो गये। प्राचीन नल-दमयंती पुराण में कलि नल को कलियुग, जो आज का आधुनिक काल है, का महत्व समझाता है। जब घोर कलियुग पृथ्वी माँ को प्रताडित करेगा, आदिशक्ति पृथ्वी पर अवतार लेंगी तथा उन संत-साधुओं को मुक्ति प्रदान करेंगी जो अभी घने जंगलों, उंची घाटियों तथा दुर्गम पहाडियों में समाज से दूर रहकर, परमात्मा को खोज रहे हैं। ये लोग कलियुग में आम सांसारिक लोगों, साधारण गृहस्थों के रूप में पुनर्जन्म लेंगे। फिर आदिशक्ति एक नई प्रजाति को जन्म देगी। संपूर्ण समग्र रूप में उनका अवतरण, विश्व इतिहास की सबसे बड़ी घटना होगी। एक बार

श्रीमाताजी ने कहा था, बहुत गहन ध्यानावस्था में, ''तुम्हे मोक्ष प्रदान करने के लिए, मेरे बच्चों, मैं अपनी सभी शक्तियों के साथ आई हूँ।'' बाद में उन्होंने कहा कि ये बात उन लोगों को नहीं बतानी जो सहजयोग को शंका की दृष्टि से देखते हैं, तथा लोगों से बात करते हुये इस बात को ध्यान में रखना होगा। यहाँ तक कि जब संदेह करने वाले या विरोधी लोगों द्वारा उनके स्वभाव के बारे में प्रत्यक्ष प्रश्न किया जाता है तो वे चतुरता इसे टाल देती हैं। किन्तु हम इस अवरोध को महसूस नहीं करते। वाह! हम सबको तो आनंद मनाना चाहिये!'

''हे सृष्टि की महारानी, आप सृष्टि की रक्षा करती हैं। सृष्टि के सत्व के रूप में आप सृष्टि को सहारा देती हैं। आप ही सृष्टि के देवताओं के द्वारा पूजा की पात्र हैं। जो आपको समर्पित होकर साष्टांग प्रणाम करते हैं, वे स्वयं सृष्टि को शरण देने वाले हो जाते हैं।''

(देवी-महात्म्य या श्री दुर्गा सप्तशती में देवताओं द्वारा देवी की स्तुति)

बहुत से लोगों को इस बात के संभव होने पर विश्वास नहीं होगा। उन्हे आश्चर्य होगा, ''प.पू.श्रीमाताजी सामूहिक आत्मसाक्षात्कार किस प्रकार दे सकती हैं, जबकि महान संतों को इस स्थिति में पहुँचने में अनेक जन्म लग गए?'' यह प्रश्न उस व्यक्ति के मन में आ सकता है, जिसे 'दैवी माँ' के स्वभाव की जानकारी नहीं है। वे 'पराशक्ति' हैं-सभी शक्तियों से परे हैं। यह बड़े स्पष्ट रूप से 'श्री ललिता सहस्रनाम' में कहा गया है कि वे 'शोभना सुलभागति' हैं - आत्मसाक्षात्कार का सबसे सरल मार्ग। वह 'क्षिप्रप्रसादिनी' हैं - जो अपने भक्तों पर बहुत शीघ्र कृपा करती हैं।

एक सरल व अबोध हृदय के लिये अवतार को पहचान लेना कहीं अधिक आसान है, बजाय के एक वयस्क तथा उसके विचारों से भरे मस्तिष्क के। मुझे याद है, एक बारह वर्षीय बालक, जो लंदन में प.पू.श्री माताजी से मिला। जब उसके चाचा ने उससे पूछा कि क्या वह, प.पू.श्री माताजी को आदिशक्ति के रूप में पहचानता है? उसने कहा 'हाँ'। जब प.पू.श्रीमाताजी ने उससे पूछा, उसने ऐसा उत्तर क्यों दिया? तो उसने कहा 'मुझे देवताओं की मूर्तियों के बजाये आपसे अधिक ठंडी हवा आती है। जब

भी मैं आपके विषय में सोचता हूँ तो मुझे चैतन्य लहरियाँ प्राप्त होती हैं तथा आप सबसे बड़ी इसलिए हैं क्योंकि जब भी मैं आपका नाम लेता हूँ, हर मूर्ति की लहरियाँ और भी बढ़ जाती हैं।'

जब किसी ने इस पर संदेह किया तो बालक ने दृढ़ता से दोहराया, ''जब भी मैं उनका (श्रीमाताजी) नाम लेता हूँ, ठंडी हवा का झरना हथेली के बीच से निकल कर उंगलियों की ओर जाता है'। यह बालक आश्चर्य कर रहा था कि प.पू.श्रीमाताजी किस प्रकार पृथ्वी पर आईं! आप जो इन पंक्तियों को पढ़ रहे हैं, कृपया यह स्वीकार करने का प्रयत्न करें कि आज तक वह चीज़ जो परम महत्व की थी, आपको मालूम नहीं थी, आज वह आपके सम्मुख प्रकट कर दी गई है।

आप जो इन पंक्तियाँ इक्कीसवीं सदीं में पढ़ रहे हैं (समय जो भी हो) कृपा करके मुझे क्षमा करें क्योंकि मैं उनकी स्तुति नहीं कर रहा, किंतु आप देखें कि १९७६ में ये पंक्तियाँ मैंने उन लोगों के लिये लिखी हैं जिन्हे कुछ भी पता नहीं था तथा मैं उन्हे सकते में डाले बिना प.पू.श्रीमाताजी के अवतरण का परिचय देना चाहता था। मैं उन्हे कैसे बताता कि वे कौन हैं? प्रार्थना करें, मुझे क्षमा करें।

कभी-कभी व्यक्ति को आश्चर्य होता है कि प.पू.श्रीमाताजी की उपस्थिति में इतनी स्वतंत्रता का आनंद किस प्रकार मिलता है। एक समय था जब बहुत से सहजयोगी किसी न किसी आध्यात्मिक संप्रदाय से जुड़े हुये थे। वहाँ कोई मुश्किल से ही गुरू को देख पाता था अथवा उससे बात कर पाता था। भक्तों की चापलूसी का दृश्य विचित्र होता था। बेचारे भक्त अपने आपको उनकी सेवा में खपा देते थे तथा उसे अपना समय, धन, सम्पत्ति तथा पत्नी दे देते थे। उनकी समस्याओं का यह जवाब दे दिया जाता था, ''आपको अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा'', अथवा इस प्रकार की कोई अन्य फिज़ूल की बात।

अब आलम यह है कि, जो अपने आप में रोचक है, प.पू.श्रीमाताजी की उपस्थिति में वही साधक बहुधा बहस करना शुरू कर देते हैं। ऐसा लगता है मानो वे अब बहकावे में नहीं रहे तथा स्वयं को एक बार फिर व्यक्त कर सकते हैं। उनमें से कुछ बकवास करते हैं, हर तरह की नुक्ता-चीनी करते हैं

तथा खुले रूप से असभ्य हो जाते हैं। कभी-कभी ये सब हमारे बस के बाहर हो जाता है। किंतु, वे कहती हैं, ''वे मुझसे क्या छीन लेंगे? उन्हें तो बचाना ही होगा। अतः मुझे वास्तव में माँ की तरह उनकी देखभाल करनी है।'' वे कभी अपना आपा नहीं खोतीं, मधुरता से उत्तर देती हैं तथा उन्हे शांत करने का प्रयास करती हैं। बात करते हुये भी हमने देखा है कि प.पू.श्रीमाताजी का चित्त उनकी कुण्डलिनी जागरण पर होता है। लेकिन इस बात की एक सीमा है कि श्रीमाताजी क्या कर सकती हैं। वे दावे के साथ कहती हैं कि आत्मसाक्षात्कार की अपनी मर्यादा (प्रोटोकाल) होती है: ''आपको इसे माँगना होता है। मैं आपके लिए भोजन बना सकती हूँ। किंतु क्या मैं इसे आपके लिये खा सकती हूँ और इसका स्वाद ले सकती हूँ?''

एक बार प.पू.श्रीमाताजी ने एक लड़के से कहा, ''कृपया अपने हाथ मेरी ओर फैलाइये।'' यह सुनकर उस लड़के ने उदंडता से बहस करना शुरू कर दिया। सामूहिक चेतना में हमने महसूस किया कि उसका विशुद्धि चक्र बुरी तरह पकड़ा हुआ था। हालाँकि उसने अपने सामने एक अमेरिकी सज्जन को ठीक होते हुये देखा तथा उसके मित्र ने कहा कि उसे लहरियाँ महसूस हुई हैं, फिर भी यह लड़का बदतमीजी से पेश आता रहा। प.पू.श्रीमाताजी की आखिरी टिप्पणी यह थी: ''कम से कम मैं खुश हूँ कि तुमने मुझसे खुल कर बात तो की क्योंकि इससे पता चलता है कि सहजयोग तुम्हारी स्वतंत्रता का सम्मान करता है।'' हम सबको इस घटना से बहुत बुरा लगा किंतु श्रीमाताजी ने हमें सांत्वना दी।

''मेरे बच्चों आपको पता होना चाहिये कि मैं अपमान व दर्द से परे हूँ। क्या तुम जानते हो कि जब ईसामसीह को सूली पर चढाया जा रहा था तो वे अपने दर्द के प्रति साक्षी थे? उन्हे कभी भी अपमानित नहीं किया जा सकता। लेकिन ये लोग शैतानी शक्तियों के दबाव में हैं। हमें उन्हें बचाना है। क्या आप उन्हें नर्क में जाने देना चाहते हैं?''

मुझे एक और घटना याद है लाओ-त्से का एक अनुयायी, जो एक्यूपंक्चरिस्ट था, बहुत ही अस्वीकृति के साथ आक्रामक हो गया जब

प.पू.श्री माताजी ने अपना हाथ उसके ओरा के आसपास घुमाया। इस पर प.पू.श्रीमाताजी ने शांत व समझाने वाली मुद्रा में कहा -

''एक कटी हुई फोन लाइन से आप कैसे बात कर सकते हैं? आप ताओ के अनुयायी नहीं हो सकते। आपको ताओ बनना होगा। आपको एक साक्षात्कारी बनना होगा अन्यथा सारे आध्यात्मिक कर्मकाण्ड तथा मुद्रायें बचकानी हैं। तुम्हारा सारा एक्यूपंचर सिर्फ अनुकम्पी तंत्र को सक्रिय करेगा। बिना शक्ति केन्द्र से संबंध (परानुकंपी नाड़ी तन्त्र) स्थापित किये यदि तुम अपने यंत्र को चालू करोगे तो तुम अपने यंत्र (सुषुम्ना नाड़ी) को खराब कर लोगे। जब लाओ-त्से जीवित थे तब कितने लोगों ने उन पर विश्वास किया व कितने लोगों ने विरोध किया? तुम लाओ-त्से पर विश्वास क्यों करते हो? क्योंकि वे अब रहे नहीं तथा आप उन्हें हाथ में ले सकते हो, बजाये कि वो आपको अपने हाथ में लें। उनकी मृत्यु हो जाने पर आप उन्हें इस्तेमाल कर रहे हो और बेजान कर्मकाण्ड कर रहे हो। आज, लाओ-त्से दुनिया में नहीं हैं तथा माताजी जीवित हैं। बहुत सारे लोग अपनी उंगलियों में दिव्य लहरियाँ महसूस करते हैं। मेरे बच्चे, कब तक तुम खुद को धोखा देते रहोगे? क्यों न तुम अपनी शक्ति को जान लो?''

हो सकता है कि एक दैवी अवतरण को पहचान पाना एक आसान कार्य न हो, विशेष रूप से इस वर्तमान अवतरण को जो कि 'महामाया' स्वरूप में आया हुआ है। किंतु सभी शास्त्रों में इस कठिनाई का जिक्र है। श्रीकृष्ण तथा ईसा मसीह दोनो के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ है कि उन्होंने पापियों को और अधिक पाप में डूबने से बचाने का अवसर प्रदान किया:लोगों ने उन्हें पहचानने की बजाये उनसे बुरा बर्ताव किया। प.पू.श्रीमाताजी कभी भी कठोरता से कार्य नहीं करती हैं और न ही गलत भाषा का उपयोग करती हैं। वे सहन करती रहती हैं। किन्तु, अंत में, यह होता है कि उनका चित्त उस व्यक्ति से हट जाता है जो अपना व्यवहार नहीं सुधारता। इसलिये मैं उन लोगों को सुझाव देता हूँ जो दैवी माँ को सहजयोग के माध्यम से पहचानने की संभावना से इन्कार करते हैं। जब तक आप यह नहीं जानते कि प.पू.श्रीमाताजी कौन

हैं-बौद्धिक निष्पक्षता द्वारा अपेक्षित यह दृढ़ रूझान बनाये रखें कि ''मैं क्या नहीं जानता वह मैं नहीं जानता हूँ।'' सहजयोग के चैतन्य बोध द्वारा प्रस्तुत प्रायोगिक आंकडों को जाने बिना, दैवी-माँ को पहचान पाना मुश्किल है। सहजयोगी जन स्वयं माया (भ्रम, भ्रांति तथा अज्ञान) को देख सकते हैं किंतु जहाँ तक प.पू.श्रीमाताजी के वास्तविक स्वभाव का प्रश्न है, इस पवित्र रहस्य को कोई भी तुरंत नहीं जान सकता।

फिर भी, हमारे लिये सत्य को जानने के अवसर, किसी भी पूर्व जन्मों से बेहतर हैं। प्रथम, हम अपने मस्तिष्क का उपयोग एक बदलाव हेतु, अर्थपूर्ण ढंग से कर सकें। यदि यह सत्य है कि मानव जाति की खोज, एक उच्चतर चेतना की खोज रही है; यदि यह सत्य है कि इस नई चेतना में परिवर्तन मानव जाति के जीवन का प्रश्न है; यदि यह सत्य है कि इस प्रकार की उत्क्रांति के निर्णय के लिये समय अब परिपक्व है, तो मनुष्य की चेतना की स्थिति में परिपूर्णता लाने वाला दैवी अवतरण का ऐतिहासिक घटनाक्रम, एक तर्कपूर्ण आवश्यकता प्रतीत होती है।

इस बात को ध्यान में रखकर कि सामूहिक रूप से कुण्डलिनी जागरण द्वारा सृष्टि में विशाल रूप में परिवर्तित होंगे, क्या हमें आश्चर्य करना चाहिये कि परमात्मा का परम प्रकट रूप स्वयं ही इस रूपान्तरण का सूत्रपात कर रहा है? क्या हमें आश्चर्य करना चाहिये कि इतना शक्तिशाली अवतार अपने वास्तविक रूप को एक बहुत ही साधारण मानव रूप में छिपा रहा है? आज कौन ऐसा है जो प्रत्यक्ष ज्ञान के दिव्य प्रकाश को झेल सके? जब विभिन्न धर्मग्रन्थों में घोषित किया गया हुआ है कि महत्वपूर्ण घटनायें, बुराई तथा संकट के समय में ही घटित होती हैं, तो हमें क्यों इस बात पर आश्चर्य करना चाहिये। क्या पश्चिमी जगत, माँ को पिता व बच्चे के साथ स्वीकार नहीं करेगा? आखिर में जब क्षेत्रीय सभ्यतायें, सांस्कृतिक क्षेत्रवाद पर विजय प्राप्त कर लेंगी तो अधिक से अधिक लोग, विभिन्न धार्मिक परम्पराओं की जीवंत एकता का अनुभव करेंगे। वे यह भी अनुभव करेंगे कि धार्मिक संदेशों का ढाँचा व अर्थ, जब समकालीन समाज व विचारों की स्थिति के संदर्भ में

लाया जाये और समाज उस सूचना के अनुकूल हो, तो मेरी जानकारी के हिसाब से, जो मैं आपके साथ बाँट रहा हूँ, पूरी दुनिया में लाखों लोग कुण्डलिनी जागरण से आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर चुके हैं। सामूहिक साक्षात्कार के अलावा यह जागरण (कुण्डलिनी) अपने आप में प्रमाण है कि दैवी माँ आ चुकी हैं। वास्तव में जैसा हमने कहा है कि प्राधिकृत ग्रंथ, मुक्ति व इससे प्राप्त परम आनंद की प्रक्रिया का जो वर्णन करते हैं, वह और कुछ नहीं, किंतु उनकी (कुण्डलिनी) चैतन्यता की मनोदशाऐं हैं।

मुझे विश्वास है कि हमारी बुद्धि, हमें सत्य के सागर के किनारों तक ले चलेगी। यह दिव्य चैतन्य लहरियों का सागर है, तथा आज हम हमारी **दैवी-माँ की कृपा से इसमें विलीन हो सकते हैं। दूसरे अन्य अवतारों के समय में 'श्री-चक्र' पृथ्वी पर नहीं उतरा था। दूसरे शब्दों में, दिव्य चैतन्य लहरियों को आम लोगों द्वारा सामूहिक रूप से अनुभव करना संभव नहीं था। यह सिर्फ प.पू.श्रीमाताजी के जन्म के बाद हुआ है कि सर्वव्यापी शक्ति पृथ्वी पर 'श्री चक्र' द्वारा सक्रिय हुई है। पूरा ग्रह दिव्य द्वारा चैतन्य लहरियों से भरा हुआ है। इसका यह अर्थ है कि इस संसार में ईश्वर का साम्राज्य शुरू हुआ है। काफी अधिक संख्या में लोगों ने आध्यात्मिक खोज की धार्मिक यात्रा में प्रवेश किया है।** पूरे विश्व में बहुत से लोगों ने पवित्र आत्मा की श्वास का अनुभव किया होगा। फिर भी उन लोगों ने नहीं समझा होगा कि ये चैतन्य लहरियाँ क्या हैं, इन्हें किस प्रकार सुरक्षित रखें व चेतना की गहराई से इनको कैसे जोड़ें। वे यह नहीं जान सकते हैं कि दिव्य प्रकाश का स्रोत क्या और कौन हैं। वास्तव में यहाँ कुछ जन्म-साक्षात्कारी हैं, जो अपनी शक्तियों को नहीं जानते हैं। अब उन्हें व आम जनता को कोई, किस प्रकार कह सकता है कि समस्या कहाँ है? यदि प.पू.श्री माताजी ने कहा होता कि वे ही स्रोत हैं, तो किसी ने विश्वास नहीं किया होता। उन्होंने सिर्फ इसका मजाक बनाया होता। इसलिये पहले उन्होंने बारह लोगों को अपने शिष्य के रूप में लिया। उन्होंने उनके चक्रों पर, एक के बाद एक कार्य किया, उन सबको कुण्डलिनी जागरण के विभिन्न कदम बताये। दो वर्ष बाद उन्हें

आत्मसाक्षात्कार दिया। इसके बाद धीरे-धीरे उन्होंने अधिक लोगों को चुना। जब यह संख्या इक्यावन तक पहुँची तब उन्होंने सामूहिक आत्मसाक्षात्कार कार्यक्रम शुरू किया। ये इक्यावन लोग अनुभव व ज्ञान के द्वारा समझा सके कि प.पू.श्रीमाताजी का वास्तविक स्वभाव वास्तव में क्या है? अधिक लोगों ने चैतन्य लहरियों द्वारा प.पू.श्रीमाताजी के सर्वोच्च ब्रह्मांड वाले व्यक्तित्व की सच्चाई की जाँच करना शुरू की। प्रयोगों एवं दृश्यों ने सच्चाई स्थापित की। जिन लोगों ने प.पू.श्रीमाताजी को आदिशक्ति के अवतार के रूप में स्वीकार किया, उन्हे गहरे चिंतन की गहनता व निर्विकल्प समाधि का आशीष प्राप्त हुआ। कुछ सहजयोगी आश्चर्यजनक कार्य कर रहे हैं, लोगों का इलाज व उन्हें आत्मसाक्षात्कार दे रहे हैं। इन सब बातों को पुस्तक में लिखना संभव नहीं है। बहुत सी पुस्तकें भारत में प्रकाशित हो चुकी हैं व आने वाली हैं।

आज लोग खुली आँखों से, कुण्डलिनी की धड़कन व इसका उपर उठना देख सकते हैं। वे देखते हैं आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के पश्चात् लोग ठीक हो जाते हैं व उनका पूर्ण रूप से रूपान्तरण हो जाता है। 'स्व' की शक्ति सामूहिक चेतना की शक्ति के रूप में प्रकट होती है। यदि इस सबके बाद भी लोग आदिशक्ति को स्वीकार नहीं करते हैं तो उनकी मूर्खता कैसे क्षमा की जा सकती है? ईसा मसीह ने कडे रूप में स्पष्ट किया कि आदिशक्ति की निंदा किसी भी प्रकार क्षमा नहीं की जायेगी।

अब हम अच्छी तरह गहन रूप में ईसा मसीह के अवतरण को पवित्र त्रिमूर्ति (पिता, माँ एवं पुत्र) के संदर्भ में पहचान सकते हैं। प.पू.श्रीमाताजी की शिक्षाओं के अनुसार ईश्वर का पिता रूप भगवान श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुआ था, जिन्होंने अपने अवतार के द्वारा विराट का पाँचवा चक्र जागृत किया। इस अवतार का वर्णन महाभारत में किया गया है। गेलिली में अपने अवतार के द्वारा प्रभु ईसा मसीह ने विराट का छठा चक्र जागृत किया। गोलगोथा की सूली पर प्रभु ईसा मसीह ने विराट के अहंकार व प्रतिअहंकार पर अपने आपको सूली पर चढवा लिया और अपने पुनरुत्थान से मानव जाति के लिये दिव्य-चैतन्य में पुनर्जीवित होने की ब्रह्माण्डीय संभावना को

खोल दिया। बुद्ध होने अथवा ईसा पन का अर्थ है बुद्धि की गति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होना। प्रभु ईसा मसीह बुद्धि के सर्वोच्च स्वामी हैं, जिनकी सृष्टि में स्थिति विराट के आज्ञा-चक्र में है। हममें से प्रत्येक के भीतर आज्ञा चक्र के स्वामी प्रभु ईसा मसीह हैं। आज्ञा चक्र वह संकरा द्वार है जिसे हर व्यक्ति को सहस्रार के स्वर्गीय साम्राज्य में पहुँचने से पहले पार करना होता है। जैसा पहले कहा गया है वह चैतन्य लहरियाँ द्वारा प्रकट किया गया है। मैं जानता हूँ कि यदि मेरा आज्ञा चक्र पूरी तरह नहीं खुला अथवा स्वच्छ नहीं हुआ तो, मैं निर्विचार ध्यान की स्थिति में नहीं स्थापित हो सकता। शरीर के इस बिन्दु पर, जो प्रकाश नसों के क्रास करने से संबंधित है, इड़ा व पिंगला नाड़ी एक दूसरे को पार करती हैं। आज्ञा चक्र में ईसा मसीह पीनियल और पिट्यूटरी ग्रंथियों पर नियंत्रण करते हैं तथा मस्तिष्क पर इड़ा व पिंगला नाड़ियों (अहंकार व प्रतिअहंकार) के प्रभाव को संतुलित कर सकते हैं। इस प्रकार, सृष्टि एवं व्यक्तिगत उत्थान के स्तर पर बेटे के अवतार ने माँ आदिशक्ति के अवतार का रास्ता खोल दिया। यह वाकई में अच्छा है कि हम दैवी माँ को समर्पित अध्याय में पिता और पुत्र का जिक्र कर रहे हैं। क्योंकि कोई भी दूसरा पावन त्रिमूर्ति में तीसरे का पृथ्वी पर अवतार संभव नहीं कर पाता। यह अवतार ज्ञान, बोध तथा समग्रता प्रकट करता है तथा पुराने गुरूओं के संदेशों को भी पूरी तरह स्पष्ट करता है। प्रभु ईसा मसीह ने कहा था: ''जब प्रतिनिधि आयेगा, जिसे मैं पिता की ओर से भेजूँगा, पिता से निकलने वाली सत्य की आत्मा मेरी साक्षी होगी।'' (जॉन १५-१६)। प.पू.श्रीमाताजी से निकलने वाली चैतन्य लहरियाँ, जिन्हें हम सहजयोग बोध द्वारा महसूस करते हैं, वास्तव में वह संज्ञानात्मक उपकरण है जो दिखाता है कि प्रभु ईसा मसीह ने आत्मा का पुनरुत्थानमय जीवन प्रकट किया, जो तीन गुणों (तथा शरीर में तीन नाड़ी) से उत्पन्न होता है, वह ॐ है। ये सुंदर आशीर्वाद आदिशक्ति के प्रकाशमय प्रेम द्वारा हम पर बरस रहे हैं।

अब तक हम जो कुछ आध्यात्मवादी ढंग से कह रहे हैं, पवित्र त्रिमूर्ति के तीन व्यक्तियों के स्वभाव के विषय में, संक्षिप्त विवरण, निम्नानुसार दे सकते हैं -

१. पिता - सर्वशक्तिमान अल्लाह का कोई एक मूर्त रूप नहीं है। वह हमारी पहुँच से अत्यंत परे है, किन्तु माँ से परे नहीं। वे आदिबिन्दु मूल अस्तित्व के रूप में व्यक्त हैं, आदि अस्तित्व जो अपनी शक्ति की लीला को साक्षी भाव से देख रहे हैं। परमात्मा-पिता, को संस्कृत में 'सदाशिव' कहा गया है। वह परम साक्षी है, जिसने मानव जाति के लिये, अपना पिता आयाम श्री विष्णु के कृष्णावतार के रूप में प्रकट किया। श्री कृष्ण के अवतार के समय से मनुष्य परमात्मा की महानता का अनुभव करने लगा। वह परमात्मा जो हर चीज़ में व्याप्त है -(श्री कृष्ण की विराट छवि)।

२. माँ - आदिशक्ति, सर्वशक्तिमान ईश्वर की शक्ति है। ईसाई परम्परा में उसे 'पवित्र आत्मा' कहते हैं, जिसके द्वारा अप्रकट आदि-सत्य प्रकट रूप लेता है। वह 'आदि-वलय' बनाती हैं अर्थात ब्रह्मांड की ऊर्जा को वलय गति देती हैं, जो ओम की रचना तथा असंख्य ब्रह्माण्डों का निर्माण करती है। वह दिव्य प्रेम की सर्वोच्च शक्ति है, जो अपने बच्चों को पुनः अपने पिता के पास लाती है।

३. पुत्र - पुत्र, 'ओम' का प्रकट शरीर रुप है, जीवन की सांस है, दिव्य अस्तित्व व दिव्य ऊर्जा के संसर्ग का प्रकट स्वरूप है, जिसके द्वारा सृष्टि आदिशक्ति से उत्क्रांतित हुई व जिसके द्वारा इसे आदिशक्ति तक वापिस जाना है। शक्ति व मनन के सर्वोच्च मेल ने अपने आपको ईसा मसीह, श्री विष्णु के नवें अवतार, महाविष्णु के रूप में प्रकट किया। प्रभु ईसा मसीह के अवतरण के बाद, मनुष्य जाति को अपने निम्नतर स्वभाव (अहंकार व प्रति अहंकार) को आत्मा के लिये बलिदान करने की आवश्यकता का बेहतर बोध हुआ।

आदि बिंदु, आदि वलय तथा ओम की पवित्र त्रिमूर्ति, ईश्वर-प्रकटन के आंशिक रूप का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकट रूप का अगला विस्तार विराट का आयाम है-महान आदि प्राणी, जो परमात्मा के मुख्य पहलुओं को पवित्र आत्मा के द्वारा प्रकट करता है। यदि हम प.पू.श्रीमाताजी को 'दिव्य रचना प्रकट होने' की प्रथम स्थिति के संदर्भ में देखें तो क्या वे आदिशक्ति हो सकती हैं, परमात्मा की शक्ति हो सकती हैं? यदि हम उन्हें विराट की बैकुण्ठ स्थिति में देखें तो क्या वे विराटंगना, विराट की शक्ति हो सकती हैं? यदि हम

उन्हें प्राचीन अवतरणों में देखें, क्या वह शक्ति के रूप में राधा, सीता या माता मेरी आदि हो सकती हैं? यदि हम उन्हें प.पू.श्रीमाताजी के रूप में देखें, हम जानते हैं कि वह सहजयोग की माता हैं और यदि हम उन्हें श्रीमती सी.पी.श्रीवास्तव के संदर्भ में देखें तो वह एक महिला हैं जो विशिष्ट हैं, सबको प्यार करती हैं, जैसी भी वह हों, वह हमारा अधिक ध्यान आकर्षित नहीं कर पायेंगी। तो इस पहेली को किस प्रकार हल करें?

शास्त्रीय यूनानी नाटकों में 'प्रोसोपोन (PROSOPON)' शब्द का अर्थ होता है-मुखौटा, जो स्टेज पर काम करने वाले कलाकार का चेहरा छिपाता है। लेटिन-शब्द 'PERSONA', ग्रीक शब्दकोष से आता है। इसी प्रकार शब्द 'PERSON' आता है। मैं कहना चाहता हूँ कि वह 'परसन' (हिंदी में व्यक्ति), जिसने हमसे सहजयोग का परिचय करवाया, क्या अपने इस जीवन काल में अपना दैवी-प्रेम हममें से बहुतों को देंगी। वह युगों से चली आ रही सत्यता की खोज से साधकों को परिपूर्ण करने आई हैं।

आप में से जो लोग पुस्तक के इस नाजुक व प्रामाणिक बिन्दु तक पहुँच गये हैं, उन्हें बहुत परेशान होने की जरूरत नहीं है। एक बुद्धिजीवी को जानकारी होगी कि वह यह नहीं जान सकता है कि मैं यही रास्ता दिखा रहा हूँ या नहीं, कि मैं बोध के विषय में बता रहा हूँ या आत्म-सुझाव के विषय में, कि मैं वास्तविकता से चिपका हुआ हूँ या घमंडी बातें कर रहा हूँ। 'क्या वह वास्तव में ऐतिहासिक प्रक्रिया का विनम्र आरंभ देख रहा है?' क्या वह इच्छाजनित धारणाऐं व अपेक्षाऐं दिखा रहा है? बहुत से लोग अर्थों के नमूने खोज रहे हैं, जिनका घटनाओं से कोई संबंध नहीं है, आप क्या कहेंगे?

आप कैसे जान सकते हैं कि मैं सच बोलता हूँ या नहीं? उन्होंने कहा, 'लो, यहाँ परमात्मा हैं', किन्तु ये तो उनका विरोधी था। बहुत से लोगों ने घोषणा कर दी 'सुनो! पत्थर गा रहे हैं।' किन्तु वह सिर्फ हवा थी। ईसाइयों के धर्म युद्ध में, मध्य यूरोप के हजारो बच्चें समुद्र तट की ओर दौड़े, वे ये सोचकर समुद्र में भी गये कि समुद्र उन्हें रास्ता देगा और यरूशेलम पहुँचा देगा। किन्तु

समुद्र नहीं खुला, बेचारे बच्चे! अपने घरों को लौट गये। उन दिनों यदि मैं होता तो एक जहाज किराये पर ले लेता अथवा घर पर ही पड़ा रहता।

मैं आपको एक खेल के लिये निमंत्रण देता हूँ, यह एक प्रकार का पास्कल खेल है जिसे १७ वी शताब्दी में ब्लेज पास्कल ने प्रस्तावित किया। खेल का नाम है, 'चलो, मानते हैं कि परमात्मा हैं।' मेरा प्रस्ताव यह है, 'चलो, मानते हैं कि प.पू.श्रीमाताजी निर्मलादेवी आदिशक्ति का अवतार हैं।' तो क्या?

मैं इसे कुछ अलग ढंग से रखूँगा। या तो प.पू.श्रीमाताजी 'वह' हैं या फिर वे नहीं हैं। यदि वे नहीं हैं, तो बेहतर है आप सहजयोग भूल जाइये। यदि वे हैं, तो आपको सहजयोग के निकट आने का प्रयत्न करना चाहिये।

- नकारात्मक परिकल्पना का अर्थ है कि इस पुस्तक का लेखक उन उपदेशकों में से एक है जो आजकल बहुत हैं...अर्थात, या तो कोई आपको मूर्ख बनाने का प्रयत्न कर रहा है या वह व्यक्ति जिसे उसके गुरू ने मूर्ख बनाया हो। इस विलक्षण घटना के ज्ञान से परिचित होने के लिये, आपको कुछ जोखिम उठाना पडेगा, महज इसके बारे में सोचने से काम नहीं चलेगा।

- सकारात्मक परिकल्पना का अर्थ है जो सबसे महान है वह आया है तथा हमारे उद्धार के लिये कार्य कर रहा है। इसका अर्थ है कि बीसवीं सदी की चेतना के परिवर्तन अविष्कार को इस पुस्तक ने सही रूप में पहचाना है। इसका अर्थ है-सत्ययुग, स्वर्णयुग का आगमन। सकारात्मक परिकल्पना का अर्थ है कि हमारी जन्म-जन्मान्तर की खोजों का अंत हो गया है तथा हमारा वास्तविक उत्थान शुरू हो गया है।

मैं जानता हूँ कि आप मुश्किल से मानेंगे कि ऐसा होना संभव है। किन्तु ईश्वर हमारी अपेक्षाओं के अनुरूप कब निकला? स्थापित पुजारियों और डॉक्टरों ने दैवी अवतार को कब स्वीकार किया? हमें इस बार थोड़ा अधिक चतुर होना होगा। अवतार को सूली पर चढ़ाने तथा उसके जाने के बाद उसकी पूजा करने के बजाये, अभी ही उसकी पूजा करें। मुझे आशा है कि आप में से बहुत से लोग अपनी बुद्धि तथा चित्त को इस संभावना की ओर खोलेंगे कि

एक बार फिर एक दैवी अवतार ने मानव शरीर धारण किया है। इस अवतरण का समय निर्धारित था किंतु उनका रूप निर्धारित नहीं था। तथा सर्वोपरि, मैं उम्मीद करता हूँ कि सत्य का अनुभव आप स्वयं कर सकेंगे। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ, जो गौरवशाली है, प्राचीन देवताओं के इन शब्दों के द्वारा :

''सभी रूपों में विद्यमान रहनेवाली, हे सबकी महारानी! आप सर्वशक्तिमान हैं, हमें भ्रम से बचाईये।''

मैं इस बात को समझता हूँ कि इस अध्याय को पढ़ना कितना चौंकाने वाला होगा। परम्परावादी चर्च के अनुयायी लोग, मुझे ईश्वर की निन्दा करने वाला मानकर शाप देंगे। सदाचारी विवेकशील लोग मुझे पागल आदमी कहेंगे। फिर भी मैं अपनी इच्छा से, उनके लिए व सबके लिए लिख रहा हूँ। मुझे यह निर्णय नहीं लेना है किसके कान हैं व कौन सुन सकता है। सत्य अपनी शक्ति से चलता है तथा योग्य साधकों के दिल तक पहुँच जायेगा। इस अध्याय में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो सत्य नहीं हो।

कोई इस सत्य पर कैसे विश्वास करेगा कि प.पू.श्रीमाताजी डिपार्टमेंटल स्टोर से स्वेटर खरीद सकती हैं व उसी समय बैकुंठ की स्थिति में भी रह सकती हैं? हमारी बुद्धि को यह समझने में कठिनाई होती है क्योंकि इसे भेद-भाव के तर्क में शिक्षित किया गया है, समग्रता के तर्क में नहीं। हमारे हृदय दिव्य के लिए आसानी से नहीं खुलते हैं क्योंकि वे कलियुग के दोष के कारण चोट खाये हुए हैं। इस समय में हम दिव्य के नजदीक केवल उस मार्ग से पहुँच सकते हैं, जिसे दिव्य ने इस कार्य के लिये बनाया है तथा आज यह मार्ग है, सुषुम्ना का सहजयोग के द्वारा खुलना। निश्चय ही हम कोई भी मार्ग चुनने के लिये स्वतंत्र हैं, किंतु व्यवहारिक बुद्धि यही कहेगी कि केवल बुद्धि के द्वारा प्रयत्न करने से हम अधिक दूर तक नहीं जा सकेंगे।

मैंने यहाँ पाठकों को नहीं बताया है कि प.पू.श्रीमाताजी से हमारा क्या संबंध है, क्योंकि मैं नहीं जानता कि अपनी भावनाओं को शब्दों में कैसे व्यक्त करूँ। खैर, यह पुस्तक समझाने का प्रयत्न है, एक भजन नहीं है। यदि मुझे

कोई बात प.पू.श्रीमाताजी के विषय में कहनी होती तो मैं कोई कविता लिखने या इसे गाने का प्रयास करता, अथवा सबसे अच्छा होता मैं शान्त रहता। शांति कहीं अधिक व्यक्त होती है। मूल रूप में, मैं उस बच्चे के रूप में, खुद को महसूस करता हूँ जिसे अत्यंत प्यार करने वाली माँ मिल गई है, जो बहुत शक्तिशाली है। मैंने यह भी कहा है कि मैनें प.पू.श्रीमाताजी में सामान्य मानव व्यक्ति से बहुत कुछ अधिक देखा है। अनुभव किये आयाम में, अपने आप दूसरा आयाम खुलता है, एक आयाम में दूसरा आयाम, आयामों में अन्तहीन आयाम का खुलना, अनन्त तक। अनन्त अपने आप में खेल रहा है। फिर भी प.पू.श्रीमाताजी मेरे बोध से परे हैं।

मुझे लगता है मानो प.पू.श्रीमाताजी एक महामाया के रूप में आई हैं। सृष्टि की सर्वशक्तिमान पवित्र माँ इस संसार में आई हैं, जो उनकी अपनी रचना है, किन्तु संसार उन्हें नहीं जानता है। माया और भ्रम, आखिरकार पहचान के महान खेल के आवश्यक तत्व हैं। खेल के नियम समझने में कुछ समय लगता है, किन्तु इसे खेलना अति सुन्दर है।

इस खेल को जीतने का एक ही मुख्य सिद्धांत है, एक सिद्धांत जिसे श्रीकृष्ण, ईसा मसीह, पैगम्बर मोहम्मद एवं अन्य महान संत घोषित कर चुके हैं, एक सिद्धांत जो प.पू.श्रीमाताजी ने स्वचालित स्नायु तंत्र के स्वाभाविक कार्य करने के संबंध में स्पष्ट रूप से समझाया है। यह सिद्धांत है 'समर्पण'। यह शब्द हमारे अहंकार व कुसंस्कारों को चुनौती देता है। किन्तु उन्हें हमें अपनी सुबद्धि को समर्पित कर देना चाहिये। विशिष्ट रूप में हम इसे कह सकते हैं-यह अपने 'स्व' को समर्पित करना, अर्थात ईश्वर को समर्पित करना है। यह अपने मन को समाप्त करना है, जिससे हमारा चित्त उस संतुलन में आ जाता है, जो परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र के कार्य करने के लिये उपयुक्त है। समर्पण का अर्थ है कि व्यक्ति ने प्रयत्न करना छोड़ दिया, जिससे मन की ऊर्जा, अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र (इड़ा व पिंगला) में जाने से बच जाती है। इस समर्पण में प्रकाशित चेतन निर्णय लेता है, क्योंकि ईश्वर की सृष्टि योजना में समर्पण की स्वतंत्रता मनुष्य पर छोड़ी गई है। हम आदिशक्ति को बताने के

लिये स्वतंत्र हैं कि 'हम वह चाहते हैं, जो ईश्वर की मर्जी है'। समर्पण के द्वारा हम अपने आपको, सृष्टीय अचेतन से उस प्रकार जोड़ देते हैं, जिस प्रकार तैरने वाला, लहर पर तैरने के लिये, उसके सामने समर्पण कर देता है। साक्षात्कार के बाद यह समर्पण ही है जो चित्त को बोध के मध्य मार्ग पर रखता है। हम समझ सकते हैं कि, अहंकार व प्रति अहंकार सत्य तक नहीं पहुँचते हैं, तब हम स्वीकार करते हैं कि, 'मैं नहीं जानता हूँ, किन्तु मुझे जानने दो।' ईश्वर को समर्पण करने का अर्थ यह नहीं है कि हम उन्हें कुछ देते हैं। 'मैं' की एक बूँद दिव्य प्रेम के महासागर को क्या दे सकती है? हमें सिर्फ बूँद की सीमाओं को महासागर में घुलने देना है। हम एक सीमित व्यक्तित्व को खोकर महान बनते हैं। इसलिये सभी महान धर्म, हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि अलग-अलग शब्दों में, एक ही बात, 'समर्पण की आवश्यकता' पर जोर देते हैं।

बहुत सी धार्मिक परम्पराओं में समर्पण का द्वार बनाने हेतु दो खंभो का वर्णन है, ये हैं विश्वास एवं त्याग।

मुझे जरूर कहना चाहिये कि मेरी पीढ़ी के अधिकांश लोग उपरोक्त आदर्श शब्दों को नापसंद करते थे। चर्च के पुरोहितों के मुँह से 'विश्वास' अधिकतर इस प्रकार निकलता था, 'मुझे नहीं मालूम क्या हो रहा है, किन्तु हमें उम्मीद है कि 'अंत भला तो सब भला।' अन्य लोगों के विचार भी उपरोक्त शब्दों के लिए सम्मानजनक नहीं पाये गए। जिस ज्ञान को डरावना मानकर डर रहे थे, उसे अंधे विकल्प के रूप में इसका उपयोग करते थे। 'हमें उम्मीद करनी चाहिये कि सत्य अच्छा होगा, यदि यह नहीं है तो अच्छा होता कि हम इसे नहीं जानते।' हमने यह भी अनुभव किया, 'मानवीय ज्ञान का कोई मूल्य नहीं है, यदि यह परमात्मा तक नहीं पहुँच सकता; विश्वास ही रास्ता है, न कि ज्ञान।'

अब तक मैंने जान लिया है कि विश्वास वह नहीं है, जिसका आम उपयोग में अर्थ लिया जाता है। बिलकुल नहीं! हमारे हृदय में आत्मा का निवास है। यहीं ईश्वर, परमात्मा का निवास है, उनकी जय हो! ईश्वर के प्रति विश्वास, हमारा उनसे जुड़ने का एक तरीका है, उन्हे स्वीकार करने का एक तरीका है-हमारे दैनिक जीवन में 'आप हैं', हालांकि हमारा उन पर विश्वास अभी

भी माया के घूँघट में है। फूल को सूर्य की किरण पाने के लिये सूर्य की ओर मुड़ना होता है। इसी को विश्वास कहते हैं। जब सही रूप में दिशा दी जाये, विश्वास ही वह शक्ति है, जो ज्ञान को इसके उद्देश्य-सत्य से मिलवाती है।

सहजयोग को धन्यवाद है कि मैं यह भी महसूस कर सका कि यह सोचना कितना व्यर्थ था कि हम परमात्मा तक पहुँच सकते हैं। प्रयत्न मात्र करने से कभी नहीं, क्योंकि प्रयत्न स्वयं अनुकम्पी की ऊर्जा का उपयोग करता है। परानुकंपी तंत्रिका तंत्र (सुषुम्ना नाड़ी) की ऊर्जा जाग्रत करके ही हम ईश्वर तक पहुँच सकते हैं। हम कह सकते हैं कि परमात्मा के साम्राज्य का प्रमुख दरबारी होना शायद सबके बस के बात नहीं। स्वयं परम को ही अपना परिचय देने सामने आना होता है। सागर को ही पानी की बूँद को अपने में ग्रहण करना होता है। इसलिये महान अवतार ही कुण्डलिनी के गुरू के रूप में आया है।

मुझे इस तथ्य पर हमेशा आश्चर्य हुआ है कि जब भी इस पृथ्वी पर अवतार आये, उन्हें कभी भी पहचाना नहीं गया। न केवल उन्हें नकारा गया अपितु उन्हें अपमानित किया गया, देश-निकाला दिया गया, पत्थर मारे गये, सूली पर चढाया या उन्हें जहर पिलाया गया। हाँ उनकी मृत्यु के बाद उनकी प्रशंसा-स्तुति की गई! क्या उनकी मृत्यु के बाद उन्हें पहचाना गया? सवाल ही नहीं पैदा होता! उनकी मृत्यु के बाद उनकी पूजा इसलिये की गई क्योंकि पुराने अवतार को मानव अहंकार द्वारा बड़ी कुशलता से उपयोग किया जा सकता है। उनके नाम से धन इकट्ठा किया जा सकता है व शक्ति का दुरूपयोग किया जा सकता है। ईसा मसीह पूरी तरह गरीबी में रहे व श्रीकृष्ण साधारण ग्वाले बालक के रूप में, जबकि उनके भक्त, उनके नाम से संपत्ति व जायदाद इकट्ठी करके, मजे से जीते हैं। इसलिये हो सकता है, प.पू.माताजी श्री निर्मलादेवी के अवतार में 'कुछ' ऐसा होना था, जिससे हम लोग उपरोक्त गलतियाँ दोहराने से बचें। यह 'कुछ' व्यवहारिक साधन का वह ज्ञान होना है, जिसके द्वारा अवतार को उनके जीवन काल में हम पहचान सकें। पहचान का यह उपकरण, बेशक 'चैतन्य का बोध' या दूसरे शब्दों में आदिशक्ति की दिव्य सांस है।

चैतन्य लहरियों के माध्यम से हम विभिन्न चक्रों के देवताओं के संपर्क में रह सकते हैं। यह हमने विभिन्न अवसरों पर अनुभव किया है।

हम गहरे ध्यान में जाकर, पूरे चित्त से विभिन्न चक्रों से प्रश्न पूछते हैं। उदाहरण के लिये हम दाहिने हृदय चक्र में श्री सीता-राम से पूछते हैं, 'क्या आप प.पू.श्रीमाताजी के रूप में आयें हैं?' उत्तर, 'हाँ'। तत्काल हाथों में, ठंडी चैतन्य लहरियों की बढ़ोतरी के रूप में आता है। यदि हम हृदय के मरीज का इलाज कर रहे हैं, तो भी इस प्रकार के प्रश्न श्री शिव या श्री दुर्गा से पूछे जाते हैं, जिससे कई बार मरीजों को आराम मिलता है। इसका अनुभव हम सामूहिक चेतना में करते हैं। हमनें चक्र के देवताओं से पूछा है, 'क्या प.पू.श्रीमाताजी आदिशक्ति हैं?' हमने आदि गुरू से भवसागर क्षेत्र में पूछा है, 'क्या आप प.पू.श्रीमाताजी में स्थित हैं?' हमने विशुद्धि चक्र में श्रीकृष्ण से पूछा है, 'क्या श्रीमाताजी विराट हैं?' हमने सहस्रार में पूछा है, 'क्या प.पू.श्रीमाताजी सामूहिक अवतार हैं?' इसका उत्तर बढ़ी हुई चैतन्य लहरियों एवं ध्यान में बढ़ी हुई गहराई के रूप में मिला है। **जब आदिशक्ति मान कर उनकी स्तुति की जाती है तब भक्तों को चैतन्य लहरियों का जबरदस्त अहसास होता है। यह एक सच्चाई है! यह वैज्ञानिक ढंग से स्थापित सत्य है, क्योंकि इसका अनुभव किया जा सकता है तथा यह अनुभव दूसरों को भी प्रदान किया जा सकता है।** यह प्रक्रिया इतनी सूक्ष्म है तथा स्वतः होने वाली है। जैसा प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं, हमारा व्यक्तिगत उपकरण कम्प्यूटर बन गया है व सृष्टि के कार्यक्रम से जुड़ गया है।

प.पू.श्रीमाताजी, जिन्होंने हमें सहजयोग दिया है, का स्वभाव, इन अनुभवों के माध्यम से जाना जाना जा सकता है, जब योगी सहस्रार के स्तर पर पहुँच गया हो। किन्तु गैर-सहजयोगी साधकों को भी आश्चर्यजनक अनुभव मिले हैं। आन्ध्रप्रदेश के एक छोटे से कस्बे में हम एक स्कूल में गये। वहाँ आठ-सौ लड़के-लड़कियाँ थे, जिन्होंने प्रसन्नता से गाने गाकर हमारा स्वागत किया। प.पू.श्रीमाताजी ने एक छोटा सा भाषण दिया व उसके अंत में उन्होंने प्रत्येक से उनके हाथ अपनी ओर करने के लिये कहा। उन्होंने वैसा

किया। कुछ मिनट बाद प.पू.श्रीमाताजी ने पूछा, ''जिनके हाथ में से ठंडी हवा आ रही है, वे अपने हाथ उँचे करें।'' आठसौ लोगों ने तत्काल अपने हाथ उँचे किए। हर कोई प्रसन्नता से मुस्कुरा रहा था। यह घटना सैकड़ों गैर-साक्षात्कारी लोगों, स्थानीय डाक्टरों, वकीलों, अभिभावकों ने देखी। जब हमने अपने हाथ उनकी ओर किये हमें तीव्र चैतन्य लहरियों की अनुभूति हुई, जिसने तत्काल हमें ध्यान में पहुँचा दिया।

इस प्रकार सहजयोगियों का जीवंत विश्वास प.पू.श्रीमाताजी में विकसित हुआ है। यह विश्वास अनुभव व परीक्षण के द्वारा प्रकाशित हुआ है। हम इससे पूर्ण रूप से सहमत हो गये हैं।

समर्पण का दूसरा पहलू 'त्याग' हमें बिलकुल भी आकर्षित नहीं कर सका। त्याग से क्या लाभ है? हमारे आसपास सुंदर संसार आनन्द लेने के लिये है।

खैर, मैं अभी भी इससे सहमत हूँ तथा परम प्रशंसनीय विरोधाभास है कि सिर्फ त्याग ही इसे (आनन्द को) सम्भव करता है। त्याग का अर्थ है वास्तविकता का आनन्द लेने के लिये दिखावे का त्याग; असली के लिये नकली चीज़ों का त्याग। यह प्रकाशित सुबुद्धि की क्षमता है जो समझ सके कि लालसा तथा संग्रह से प्रसन्नता नहीं मिलती है। यह वह है जो श्री कृष्ण ने हमसे भगवद् गीता में कहा, जिसकी शिक्षा ईसामसीह ने दी, यह मोहम्मद, बुद्ध व महावीर का मार्ग है। प.पू.श्रीमाताजी की कृपा से आज का साधारण मनुष्य, आखिरकार, उनकी सुबुद्धि (कृष्ण, ईसा) को अपना सकता है।

समझने के लिये बात बहुत छोटी है। मेरे पास चित्त की केवल एक क्षमता है और यदि मैं इसे सत्य में निवेश करना चाहता हूँ तो मुझे इसे दिखावे से हटाना होगा। चित्त ज्यादातर दिखावे में निवेश कर दिया जाता है जैसे भौतिक वस्तुऐं इकट्ठी करने में, स्वामित्व में, अहंकार के कार्यों में इत्यादि। इससे सामाजिक पारस्परिक प्रक्रियाऐं होती हैं, जिन्हें हम बहुत अच्छी तरह जानते हैं। ऐसा इसलिये है कि क्योंकि ये संतोष के स्रोत माने जाते हैं। लेकिन, निसंदेह इसमें एक समस्या है। यदि मेरे पास कोई संकेत नहीं हैं कि सत्य में दिखावे से ज्यादा आनन्द आता है, तो सत्य के लिये मैं कोई प्रयत्न नहीं करने

वाला हूँ। अवतारों के चक्रों द्वारा हमें अस्तित्व के उच्च आयामों तथा उच्च संतोषों की प्रेरणा मिलती है। हमें निर्विचार चेतना के (प्रेम की सुंदरता का आनन्द लेने के लिये) क्षण मिलते हैं, बीच-बीच में अन्तः प्रेरणा की चमक, जो हमें प्रकाशित करती है। हमें विभिन्न प्रकार के आंतरिक अनुभव मिलते हैं, जो हमें आनन्द का सर्वोच्च अनुभव करने वाली स्थिति का मार्ग दिखाते हैं। यह इस प्रकार है, जैसे माया का पर्दा हटते ही हमारे अन्दर का दिव्य हमें दिखाई देता है।

जब निर्विचार बोध के द्वारा हमें अपने अस्तित्व के कार्य का बोध होता है, तब अस्तित्व स्वयं हमारे लिये परम संतोष व आनन्द लाता है, तब फल, फूल, पेड़, नदियाँ, बादल, हँसी, मित्रों आदि का पूरा आनन्द मिलता है। हर चीज़ हमारी प्रसन्नता में शामिल हो जाती है, विश्व हमारे आसपास धड़कने लगता है। इसे खोजने में, देखने में अनुभव होता है कि यह धड़कन हमारे अपने आनन्द के लिये गा रही है। हम अपने हाथ फैलाकर कह सकते हैं, 'माँ.. !' और हम महसूस करते हैं, दिव्य कृपा हमारे अन्दर बरसने लगती है। यह वह साम्राज्य है जो स्वयं को अपने के भीतर प.पू.श्रीमाताजी निर्मला देवी के पावनतम अवतार की अनुकंपा से खोलता है। फिर भी इस अवतार के बारे में मेरा ज्ञान अभी तक सीमित ही है। जब यह आयाम अपने आप खुलना शुरू हो जाता है, तब आपको उन वस्तुओं में चित्त ले जाने में दिलचस्पी नहीं रहती, जिनसे संतोष व आनन्द मिलता था, वे अपने आप बिना ध्यान में आये ही छूट जाती हैं।

आखिरकार, संतोष से हमारा क्या तात्पर्य है? हम क्या ढूँढ रहे हैं? पुनर्जन्म के चक्रव्यूह से हम क्या खोज रहे हैं? उत्तर सरल है, गहराई। यह गहराई है जिसके पीछे हम दौड़ रहे हैं, क्योंकि यह किसी भी सच्चे संतोष का सार है। हम लगातार अपनी अनुभव करने की सामान्य क्षमता को सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं, ताकि हम गहराई के लगातार बढ़ते स्तर को, अपने अन्दर सोख सकें। गहराई बच्चे की हँसी के समान स्वच्छ, शारीरिक संसर्ग के समान समीप, रात्रि में तारों के प्रकाश के समान कम्पन करने वाली, प्रेम की शांति

के समान है, मुझे नहीं मालूम गहराई क्या है। मैं सोचता हूँ यह वह रास्ता है, जिससे हम पवित्र आत्मा की उत्पत्ति को समझते है, साथ ही यह निश्चित रूप से माया की, मनुष्य को भ्रमित व छलने के लिये, खेल की एक वस्तु भी है, जिसे मनुष्य युद्ध के नगाड़ों में, तीव्र वासना आदि में ढूँढ रहा है। 'त्याग', वह मानसिक दृष्टिकोण है जिसके द्वारा हम निम्नस्तर चीज़ों के लगाव से मुक्त होकर उच्च स्थिति पाने को उन्मुख होते हैं। यदि हम अपना चित्त आदिशक्ति के चरणों की तरफ करें तथा यदि हम प.पू.श्रीमाताजी के ब्रह्माण्डीय व्यक्तित्व को थोड़ा भी जानें तो हम पाते हैं कि हमें, अपनी मानसिक ऊर्जा को, सहस्रार की तरफ भेजने का रास्ता मिल गया है।

इसलिये विश्वास और त्याग, समर्पण के लिये अति आवश्यक पहलू हैं। समर्पण का अर्थ और कुछ नहीं है, सिर्फ यह है कि हम स्वयं अपनी दिव्यता को स्वीकार करें व पहचानें। शायद हमें इसके लिये नये शब्द बनाने होंगे।

समर्पण तथा आध्यात्मिक उत्थान का संबंध चैतन्य बोध के उपकरण द्वारा बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। हम जानते हैं कि कोई चक्र तब तक पूर्ण रूप से नहीं खुलता जब तक कि साधक उस चक्र के देवता को समर्पण नहीं करता। सातवां चक्र, जो अंतिम चक्र है, आदिशक्ति व कलकी का निवास है। आदिशक्ति को समर्पण किये बिना यह चक्र प्रकाशित नहीं हो सकता है व कलकी इसमें स्थापित नहीं होंगे। इस प्रकार का समर्पण, कोई गुप्त योग के कठोर संयम पर आधारित नहीं है, बल्कि आंतरिक अनुभव को देखकर व पहचान कर किया जाता है। प.पू.श्रीमाताजी को उन अनुभवों (कठोर संयम आदि) के आधार पर नहीं पहचाना जा सकता है। हर कदम पर अत्यंत विनम्र हृदय के आधार पर प.पू.श्रीमाताजी को पहचानने की कठिनाई दूर होती है। हर कदम पर अत्यंत विनम्र हृदय, इस महान अवतार तक पहुँचने के लिये बहुत आवश्यक है, क्योंकि यह अपने आपको, अपने ही द्वारा उत्पन्न माया के घूँघट में छिपाये हुये है। सबको प्यार करने वाली माँ इतनी मायावी क्यों हैं? उन तक पहुँचने का मार्ग इतना फिसलने वाला तथा आज्ञा चक्र का द्वार इतना संकरा क्यों है?

यह सत्य है कि प.पू.श्रीमाताजी अपने सहस्रार से जितने अधिक लोगों को हो सके अपनी पूरी शक्ति से आत्मिक जन्म देने का प्रयत्न करेंगी। किन्तु यह शक्ति उन खेल नियमों के अनुसार, जो स्वयं आदिशक्ति ने समय के शुरु होने से पहले बनाये थे, एक प्रकार से काफ़ी-सीमित है। जहाँ तक मनुष्य का संबंध है, खेल का नियम है-स्वतंत्रता। सिर्फ स्वतंत्र तथा विवेकशील मनुष्य ही चेतना के उच्चतर योग में भाग ले सकते हैं। उसने स्वतंत्र निर्णय लेकर कठिन निर्णयों का सामना करके इस उत्क्रांति के लिये अपने आपको योग्य बनाया है, तीन गुणों में लिप्त रहकर फिर भी उनसे न हारकर अपने आपको योग्य सिद्ध किया है। उनके मानसिक जीवन की स्थिति, यद्यपि विरोधाभासों के लिये खुली हुई है, फिर भी इन विरोधाभासों के स्तंभों (अहंकार व प्रति अहंकार) द्वारा नहीं जीती जा सकी है। प.पू.श्रीमाताजी का नाजुक कार्य जो वे अपने जीवन काल में कर रही हैं, उसे निम्नानुसार बताया जा सकता है:

प.पू.श्रीमाताजी स्वतंत्र लोगों को उच्चतर उत्क्रांति का मार्ग स्वतंत्रतापूर्वक चुनने के लिए आमंत्रित करती हैं। यदि उनको (प.पू.श्रीमाताजी) अपनी पराशक्ति दिखाकर ऐसा करने के लिये प्रभावित करना होता अथवा साधक के अन्दर अतिचेतन को तुरंत प्रेरित करना होता, तो साधक इस अनुभव से पराजित होकर इसे अस्वीकार करने की अपनी स्वतंत्रता खो देता और स्वतंत्रता मनुष्य के लिये सार है, मनुष्य का धर्म है जिसका सम्मान ईश्वर करता है; उत्क्रांति की प्रक्रिया के अंतिम कदम में- प.पू.श्रीमाताजी कहती हैं:- ''प्रकट होने का उद्देश्य मानव चेतना में ईश्वर के साम्राज्य का परिचय देना है। हर व्यक्ति की यह जिम्मेदारी है कि वह उन्हे अपनी पूरी स्वतंत्रता में स्वीकार करे। सहजयोग का उद्देश्य पूर्ण स्वतंत्रता है। इसलिये आदिशक्ति द्वारा कुछ भी कार्य मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता। सिर्फ एक चीज़ में कर सकती हूँ; वह है आपको रास्ता दिखाना तथा आपकी दिव्यता को पूरी स्वतंत्रता से जागृत करना।''

पौधों को चयन करने की कोई स्वतंत्रता नहीं है; देवदूत परमात्मा को जानते हैं, किन्तु हम मनुष्यों को उन्हे खोजने का विशेष अधिकार है। यदि

सृष्टि का उद्देश्य मानव चेतना के क्षेत्र के माध्यम से, सृष्टि में परमात्मा को स्वयं का परिचय देना है, तो यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है, जब अपनी स्वतंत्रता के परीक्षण और उपलब्धि के माध्यम से मनुष्य की चेतना इसके लिये तैयार हो जाये। अगर परमात्मा चाहता, तो वह एक पत्थर को भी दैवी चेतना प्रदान कर सकता था, किंतु इसमें पत्थर की भागीदारी शून्य होती तथा उत्क्रांति-मूलक उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पाता। स्वतंत्रता मनुष्य को भागीदारी करने का एक मौका देती है, कि हाँ, करना है या ना, सृष्टि को दिये गये पहचान के ब्रह्मांडीय नाटक में रचना को काम दिया गया है। यह सब कुछ एक नाटक ही तो है, क्या आपको नहीं लगता?

यह आनन्द का ब्रह्मांडीय नाटक है। वास्तव में यह अनुभव एवं महसूस किया जा सकता है कि प.पू.श्रीमाताजी 'ब्रह्मात्मऐक्य रूपिणी' हैं, अर्थात् वे ब्रह्म और व्यक्तिगत आत्मा में भी हैं। इस एकरूप में सामूहिक चैतन्य व्यक्त होता है। इस प्रकार जब प.पू.श्रीमाताजी अपना दाहिना हाथ अपने बायें हाथ की हथेली पर घुमाती हैं तो इस गति को हम लोग सहस्रार पर अनुभव कर सकते हैं। जब भारत में एक सहजयोगी ने प.पू.श्रीमाताजी को सुंदर गुलाब भेंट किये तो उसी क्षण लंदन में सहजयोगियों ने गुलाब की तीव्र सुगंध अनुभव की। ब्रह्माण्ड की एकता का पूरा कार्यान्वयन परमानन्द है, जिस पर सातवाँ चक्र जागृत होने पर समग्र चेतना द्वारा पहुँचा जा सकता है।

सद्‌गुरुओं की पवित्र वंश परंपरा व प्राचीन दिव्य अवतारों की वजह से हमारी चेतना (बोध) उस अवस्था तक आ गई है, जिसमें वचन दिया गया पुनर्जन्म हो सकता है। हमारी सामूहिक इच्छा की महान परिपूर्णता के माध्यम से स्वयं दैवी हमारा पथ-प्रदर्शन कर रही हैं।

एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य का ध्यान रखा जाना चाहिये; प.पू.श्रीमाताजी एक माँ हैं और एक गुरु हैं। इस कारण उनका कार्य बहुत नाजुक है, जिसका उल्लेख वे कभी-कभी करती भी हैं; माँ अपने बच्चे को दण्ड नहीं देती है इसलिये बच्चा उनसे मनचाहा बर्ताव करता है जबकि गुरु को शिष्य को कभी-कभी दण्ड देना पड़ता है इसलिये शिष्य गुरु को अत्यंत

आदर देता है। प.पू.श्रीमाताजी का अद्वितीय व्यक्तित्व सुंदरता से दोनों छवियों को एकरूप कर देता है। सहजयोगी जन अपने आपको उनका आशीर्वाद प्राप्त बच्चा अनुभव करते हैं, साथ-साथ वे यह भी समझते हैं कि गुरु के आशीर्वाद को प्राप्त करने के लिये उन्हें पूरा सम्मान देना होगा। गुरु के महत्व को ग्रंथों में बड़े स्पष्ट रूप से कहा गया है ;

सद्गुरु व सच्चे शिक्षक की कृपा से,
शिष्य मुक्ति प्राप्त करते हैं,
पत्नी व बच्चों के साथ,
गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी।

हम श्री गोड़ेशपादाचार्य के 'शुभाग्योदयम' का उदाहरण निम्नानुसार दे सकते हैं;

''केवल गुरु की कृपा से कुण्डलिनी, जो कि सौभाग्य का स्रोत है, जागृत की जा सकती है। तब तुम अपने गुरु की सेवा में रहोगे तो वह इस मार्ग को हमेशा के लिये खोल देगा। सहस्रार में चंद्रमा है, जो अमृत को बूँद-बूँद टपकाता है। योगी उस अमृत का आनन्द लेता है, जो उसे परिपूर्ण कर देता है। पृथ्वी पर वह अपना जीवन सहज में, संतुलित रूप में, जीता है। तथा वह किसी बात से परेशान नहीं होता है, सिद्धियों से भी नहीं। जिस प्रकार आकाश में सूर्य व चंद्र स्वतंत्र हैं, उसी प्रकार वह पृथ्वी पर अपने अस्तित्व को रखता है, तथा प्रत्येक का भला करता है।''

मैं, एक साधक, जिसने बहुत सी गलतियाँ की हैं, स्पष्ट रूप से अपूर्ण सहजयोगी हूँ। मैंने अमृत-वर्षा अनुभव की है। मैंने दिव्य सांस भी महसूस की है। हम कुण्डलिनी उठाते हैं। हम आत्मसाक्षात्कार देते हैं। यह कैसे संभव है?

प.पू.श्रीमाताजी पूर्ण रूप से, आप और मेरे जैसा मानवीय व्यवहार करती हैं। फिर भी वे असंतोष से परे, शिकायत, अपेक्षा, क्रोध, ईर्षा, उदासीनता, संकीर्णता, संग्रहवृत्ति, लालच, छिपाव, धन आदि दुर्गुणों से परे हैं। वह कपट, झूठ, तनाव, लिप्तता आदि से ऊपर हैं। इन सबसे अधिक वे उन मनो-दशाओं एवं खेलों से ऊपर हैं, जिनमें हम लगे रहते हैं। उन्हें किसी

प्रकार, संदेह व भय नहीं होता है। वे हमसे कोई चीज़ नहीं लेती हैं, हमें देती रहती हैं। वह शांति देती हैं, आनंद, बोध व दिव्य सांस देती हैं जो आनन्द की धारा में पिघल जाती है। वह ज्ञान, सर्वशक्तिमान-ईश्वर का ज्ञान, दिव्य अवतारों व कुण्डलिनी का ज्ञान देने वाली हैं। उनका सब मंत्रों पर अधिकार है। हमें मालूम है कि सब मंत्रों से अधिक शक्तिशाली मंत्र, सिर्फ उनका नाम लेना है: ॐ श्री माताजी निर्मला माँ। चित्र के सामने ध्यान करते समय पूर्ण आदर के साथ आप स्वयं इसे परख सकते हैं।

वह दान, धन, समृद्धि व सफलता देने वाली हैं। वह दृढ़ता, विश्वास व सुरक्षा का आशीष देती हैं। वह हमारी नाड़ियों और चक्रों को शुद्ध करती हैं, बंधनमुक्त करती हैं, हमारे पापों को धोकर सच्ची स्वतंत्रता देती हैं। वह मधुरता का सत्व, महान उदार हृदय वाली हैं। एक साधारण दृष्टि, साधारण स्पर्श, ईश्वर के राज्य में पहुँचा देता है। ऐसा होता है। हम सबने इस प्रकार के असंख्य चमत्कार घटते हुए देखे हैं।

वह अपने साधकों को अपने बच्चों के समान प्यार करती हैं। वह हमारा ध्यान इतना अधिक करती हैं, बिना लालच, बिना तकलीफ दिये, बिना स्वार्थ, बिना व्याकुलता के, अपने असीम प्यार में, वह हमारी मुक्ति के लिए, दिन- रात काम करती हैं । सिर्फ हमारे लिए उन्होंने सहज तथा प्रयत्नहीन, उपाय विकसित किये हैं, जो एक ही समय में आंतरिक योग व सामूहिक योग हैं। हमारे आधुनिक जीवन की निकृष्ट समस्याओं के बीच शुद्धता, विनम्रता, व निर्दोष बुद्धि के साथ वे हमारे लिए खड़ी हैं व विश्व को बचा रही हैं।

जब सभी दिव्य शक्तियाँ दुष्टता को समाप्त करनेके लिए असहाय थीं, वे दिव्य उद्देश्य के लिए 'सहज-योग' को प्रकटित करने के लिए अवतारित हुई। वे स्वतंत्रता देने वाली हैं। हम उनके अवतरण का किस प्रकार जबाब दे रहे हैं? हम क्या करेंगे?

क्या हम अपने अज्ञान व अभद्रता से चिपके रहना चाहते हैं? क्या हम उनकी जानकारी लेना, विश्लेषण करना या निर्णय करने का प्रयत्न कर रहे हैं? क्या हम उनके अवतरण को अनदेखा कर सकते हैं? क्या हम उनको नकार रहे

हैं ? अंत में, क्या हम अपनी सुबुद्धि के सामने समर्पण कर रहे हैं, ताकि हम अपने पिता (ईश्वर) के राज्य में प्रवेश कर सकें, जहाँ वह हमें आनन्द मनाते देखना चाहती हैं।

हे प्रिय, पवित्र माँ, घुटनों पर बैठकर, जोड़े हुए हाथों से, झुके सिर से, मैं प्रार्थना करता हूँ। हमें क्षमा करो, हम मूर्ख हैं, अज्ञानी हैं, खाली ज्ञान के शोर से भरे हुए हैं। हम आपके बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं, जो तीव्र उत्सुकता से प्राचीन ऋषियों के ज्ञान द्वारा ढूंढ़ी जा रही थी: क्या हम, कम से कम उनके कहे को, फिर से दोहरा सकते हैं ?

''एक चीज़ स्वाभाविक व प्राकृतिक है ,
जो पृथ्वी व स्वर्ग से पहले भी थी,
गतिहीन व अत्यंत गहरी,
यह अकेली है व कभी नहीं बदलती है,
यह हर जगह है व कभी खत्म नहीं होती,
इसे सृष्टि की माँ कह सकते हैं,
मुझे इसका नाम नहीं मालूम,
यदि मुझसे मजबूरन इसे नाम देने को कहा जाता है,
मैं इसे ताओ कहता हूँ,
तथा इसे नाम देता हूँ सर्वोच्च ।।''
– ताओ ते चिंग

आपको नाम देने का समय आ गया है :

ॐ जय, श्री महाराज्ञी, श्री महापूज्या ,श्री महादेवी !

वास्तव में, आप सब शक्तियों से परे शक्ति हो, सर्वशक्तिमान ईश्वर की शक्ति, हे सर्वोच्च ! आप ही महान अ़वतार हो। इसे घोषित होने दो। क्योंकि आपने हमें जो ज्ञान दिया है, उसके द्वारा हम ये पवित्र शब्द कह सकते हैं। समय जो शुरु हुआ है, वह आपके दिव्यज्ञान का समय है। सर्वशक्तिमान पवित्र माँ, मैं आपके चरणों में साष्टांग प्रणाम करता हूँ। इन चरणों से, ब्रह्माण्ड किरणें फैलाईये, जिनसे पूरी सृष्टि उत्पन्न हुई है। यह सब से महान समय है क्योंकि हम

आपको, मानव शरीर में देख सकते हैं। आपका गौरव है। ॐ। आमेन ।

सब सच्चे पैगम्बरों के नाम से,
संतों के नाम से,
सदाशिव के नाम से,
भगवान राम के नाम से,
भगवान कृष्ण के नाम से,
लार्ड जीजस के नाम से,
दयालु, प्यार करनेवाले अल्लाह के नाम से,
पाँच महाद्वीपों से,
हम सहजयोगी,
इस सत्य के साक्षी हैं,
इस सत्य के ,
कि परम पूज्य माताजी निर्मला देवी ही, आदिशक्ति का अवतार हैं।
ॐ शान्ति ,शान्ति ,शान्ति !

इन पंक्तियो को लिखना बड़ा कठिन है, क्योंकि आपमें से बहुत से लोग, शुरू से सत्य का सामना करना पसंद नहीं करेंगे। वह सत्य जो हमारी सृष्टि के इतिहास में सबसे महान व बहुत महत्वपूर्ण है। आपमें से कुछ, इन काल्पनिक बातों को पढ़कर सोच सकते हैं कि इन पर विश्वास करना कुछ अधिक है, कि यह वर्णन किसी अन्य मोहित करने वाली आत्मा का है, जिसने सब समस्याओं का हल खोज लिया, किन्तु इस प्रक्रिया के बीच, उसकी बुद्धिमत्ता खो गई। मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ, यदि आप मेरे साथ सत्य का सामना नहीं करना चाहते हैं तथा मेरे अनुभव पर विश्वास नहीं करना चाहते हैं। मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि यह निष्कपट और प्रामाणिक अनुभव है और विश्वास करने की कठिनाई के बावजूद भी, मुझे इस पर दृढ़ विश्वास है। कुछ लोग इससे पूर्ण सहमत हैं। कुछ को, यह पुस्तक पढ़ना कभी भी आवश्यक नहीं होगा-उनके लिए स्वीकार करना सरल है, क्योंकि सत्य स्वतः-प्रमाण है।

लेकिन हम लोगों के लिए ऐसा लगता है कि समय कम है। ये समय बहुत ही निर्णायक आपातकाल का है। हमारी सबसे बड़ी चिंता यह है कि यदि इस

स्वतः विनाशक आधुनिक समय में हमनें अवतार को नहीं पहचाना, तो हम ही महानतम भूल के लिए जिम्मेदार होंगे। आत्मसाक्षात्कार को बनाए रखने के लिए, प्रत्येक को प.पू.श्रीमाताजी निर्मला देवी को पहचानना है, जो सब देवताओं का मूर्त रूप हैं।

बिना आत्मसाक्षात्कार के हम पूर्ण नहीं हैं, न ही हम सनातन सत्यों को समझते हैं :-

- कि सर्वशक्तिमान ईश्वर, कर्त्ता व भोक्ता है।

- कि सर्वव्यापी प्रेम की दिव्य शक्ति वह सब प्रकट करती है, जो उसकी इच्छा होती है तथा वही सब कार्य करती है, जिन्हें हम अज्ञान में (अहंकार) समझते हैं कि हम कर रहे हैं।

- कि मनुष्य जाति को बचाना है, ताकि सृष्टि को बचाया जा सके।

- कि आत्म साक्षात्कार, हमारी उत्क्रांति की परिपूर्णता है, इस प्रकार ईश्वर अपना प्रेम अपनी सृष्टि को दे कर अपना आनन्द अनुभव करता है।

पश्चिमी लोगों के लिए इस प्रथम परिचय में, हम समझते हैं, उन्हें अवतार घोषित करना शायद व्यवहारिक न हो, किन्तु कोई दूसरा रास्ता नहीं है। अब यह समय सतयुग (सत्य के) आने का है।

सर्वाधिकार सुरक्षित

बिना पूर्व आज्ञा के इस पुस्तक के किसी भी भाग की प्रतिलिपि या किसी भी रूप में प्रसारण वर्जित है। कोई भी व्यक्ति अनधिकृत रूप से यदि इसका प्रकाशन करता है तो उस पर हानिपूर्ति का दावा किया जाएगा।

यह पुस्तक विचारों, भावनाओं अथवा प्रवृत्ति से परे बोध (चैतन्यमयी चेतना) की एक नई श्रेणी प्रस्तुत करती है तथा इसका वर्णन करती है। इस बोध के माध्यम से हर प्रकार के परम प्रश्न का उत्तर पाया जा सकता है। यह चेतना स्वयं सोचती है, आयोजन करती है तथा प्रेम करती है। यह मानवीय समस्याओं को सुलझाती है, इन्हे बेअसर करती है तथा इन्हे ठीक करती है। यह मानव को परम से जोडती है। विभिन्न शास्त्रों में इसे दैवी श्वास अथवा आशीष–गंगा के रूप में वर्णित किया गया है। विश्व के विभिन्न धर्मों के महान पैगम्बरों एवं संस्थापकों ने मानव को ऐसी जीवन प्रणाली की शिक्षा दी, जो उसके 'आत्मसाक्षात्कार' प्राप्त करने के लिये सबसे अनुकूल थी। इसी 'आत्मसाक्षात्कार' को 'दूसरा जन्म', 'मुक्ति' भी कहा जाता है। मानव उत्क्रान्ति के विभिन्न चरणों पर परमात्मा के विभिन्न अवतार हुये। इन विभिन्न अवतारों ने 'आत्मसाक्षात्कार' को एक व्यापक स्तर पर स्थापित करने के लिये 'सामूहिक चेतना' की घटना के रूप में इसके प्रादुर्भाव की पूर्व तैयारी कर दी थी।

इस नई चेतना की सच्चाई तथा वैधता को जाँचने के लिये प्रत्येक पाठक सादर आमंत्रित है; बहुत से पाठक यह पहले ही कर चुके हैं।

स्पष्ट रूप से, एक अनूठे व्यक्तित्व ने इस महत्वपूर्ण खोज का परिचय करवाया है, वह खोज जो मानव को उसकी उत्क्रान्तिमूलक परिपक्वता तक ले जाती है। परम पूज्य श्रीमाताजी निर्मला देवी का जन्म २१ मार्च १९२३ को मध्य भारत के एक छोटे पहाडी स्थान छिंदवाडा में हुआ था। हजारों शिष्य उनकी बताई ध्यान–विधि 'सहजयोग' का अभ्यास करते हैं, जिससे उनकी जिंदगी बदल गई है। व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से वे परिपूर्ण है तथा अपने दैनिक जीवन में चैतन्यमयी चेतना के अमल से वे गतिमान, करुणामय तथा विवेकी बन गये हैं। वे साधारण गृहस्थ हैं तथा नागरिक हैं। उनका आदर्श तथा गुरू उनकी दैवी माँ–परम पूज्य श्रीमाताजी हैं, जो प्रेम और करुणा का मूर्त रूप हैं। यह पुस्तक उनके आगमन तथा उनके संदेश के बारे में है।

NITL

visit us at www.sahajayoga.org to know more about Sahaja Yoga.